प्राप्ति-स्थल

१. पू. आचार्य देव श्रीमद् विजयभुवन
सूरीश्वरजी जैन क्रिया भवन,
मु. पो. देवालो-उदयपुर (राजस्थान)

● ●

२. शा मोतीचन्द रमेशकुमार
२१३-न्यू क्लोथ मार्केट
मु. अहमदाबाद-२

● ●

३. शा. चम्पकलाल जे. शाह
परमार बिल्डींग, नं. २-रूम नं. २१.
हनुमान रोड, वीलेपारले-पूर्व
मुंबई-५७-A. S.

● ●

४. शा. भगवानदास त्रीभोवनदास
महेन्द्र स्टोर मार्ट
मु. धंधूका, वाया अहमदाबाद

● ●

५. शा. सूरमलजी मीश्रीमलजी
नवा माधुपुरा, कपड़े के व्यापारी
मु. अहमदाबाद

● ●

६. भीखालाल वाडीलाल कुवाडीया
चमनपुर हा. कोलोनी १७/१२८
मु. अहमदाबाद-१६

श्री वासुपूज्य स्वामि प्रासाद

मु. सरत – (अमरसर) (राजस्थान)

इस ग्रन्थ के प्रवचनकार

प्रवचन प्रभावक, शासन दिपक, पूज्य आचार्य भगवन्त
श्रीमद् विजयभुवनसूरीश्वरजी महाराजा साहब
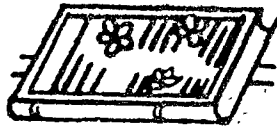
卐 समर्पण 卐

जिन महापुरूषने मुझे संसार समुद्र में से वाहर काढने को महान् कृपा करके मोक्ष मार्ग का यात्री वनाया है, उन परमपूज्य परम उपकारी प्रातः स्मरणीय, प्रातः वंदनीय प्रशान्त तपोमूर्ति शासनदीपक प्रवचनप्रभावक गुरूदेव
श्री आचार्य देव श्री १००८
श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज
के पवित्र करकलमों में
सादर समर्पण।

भवदीय चरण सेवक
जिनचन्द्र के
कोटि कोटि वंदन

हमारे लोकभोग्य प्रकाशन

१. श्री जिनेंद्र भक्ति-प्याला (गूजराती)

किंमत ०-५०

२. चौद नियम धारवानी बुक (गूजराती)

किंमत ०-५०

३. प्रेरणामृत (गूजराती)

किंमत ०-५०

४. प्रवचनसार कर्णिका (गूजराती)

किंमत ५-००

५. प्रवचन-गंगा याने प्रवचनसार कर्णिका (हिन्दी)

किंमत ५-००

प्रकाशक :

पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज

जैन ज्ञानमन्दिर

मु. अहमदाबाद (गूजरात)

卐 द्रव्य दाताओं की शुभ नामावली 卐

पूज्य विद्वान मुनिराज
श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज साहेब के

सद्उपदेश से

रकम	नाम	गाम
५००१)	श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छिय संघ के ज्ञानखाता में से,	मु. सरत (अमरसर)
१५१)	कान्तिलाल अेन्ड ब्रदर्स, हस्ते छोगालाल,	सिरोही (बेंगलोर)
१०१)	शा० मगनलाल अकेचन्दजी,	सिरोही
१०१)	शा० फुलचन्दजी नां धर्मपत्नि मोहनबेन	सरत
१०१)	पौषध मंडल, हस्ते कपूरचंदजी जेठाजी और भूरमलजी परतापजी, मुनिराज श्री प्रसन्नचन्द्र विजयजी म० की प्रेरणा से	तरवतगढ़
१०१)	शा० फुसाजी वनाजी, पू. बाल मुनिराज श्री शरद्चन्द्र विजयजी म० की प्रेरणासे,	सरत
५१)	शा. सुकराज सागरमलजी	सरत
५१)	शा. हस्तिमल थानमलजी	सरत
५१)	भंवरलालजी मुथा ना धर्मपत्नी वादीबेन,	सरत
५१)	जुहारमल चंदनमल	सरत
५१)	पीरचन्द अम्बाजी सदाजी	सरत

५१)	छगनलाल मुलतानमलजी दुर्गानी	सरत
५१)	भंवरलाल मुलतानमलजी दुर्गानी	सरत
५१)	हस्तिमल पूनमचन्दजी	सरत
५१)	जेठमल हांसाजी	सरत
५१)	दिपचन्द मुकनचन्दजी	पाली
५१)	सोहनराज पृथ्वीराजजी	घोलवड
५१)	सरेमल सोनमलजी	गोदन
५१)	आगमल रामाजी	उड
५१)	मुलचन्दभाइ रामचन्दभाइ	अमदावाद-७
५१)	दलीचन्द पुनमचन्दजी हस्ते हिराचन्दजी	सरत (बेंगलोर)

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सूरीश्वरेभ्यो नमः ।

प्रकाशकीय निवेदन

दुर्लभ मानव जीवनको सफल बनाने के लिये धर्मतत्व की पहचान करनी पडेगी । जैन धर्म की पहचान जैनागम के सिवाय नहीं हो सकती । उन जैनागम का श्रवण करने से मौलिक तत्वों की पहचान होती है ।

कठिन में कठिन तत्व को सरल रीत से समझाने की कला जिन ने हस्तगत की है, वे परम उपकारी समकित धर्मदाता प्रातः वंदनीय पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय भुवन सूरीश्वरजी महाराज का व्याख्यान सुनना वह मानव जीवन का एक ल्हावा (लाभ) है ।

तत्वों के बीच बीच में बोधदायक कथानक इस तरह से रखते हैं कि जन हृदय का आकर्षण हुये बिना नहीं रहेगा ।

नास्तिकों को समझाने के लिये सचोट दलीलें करते हैं । वैराग्य रस और हास्य रस ऊपर पूज्य श्री एसी देशना देते हैं कि देशना सुनने के लिये चालू दिवसों में भी मानो पर्यूषण पर्व की सभा देखलो ।

पूज्य श्री जहां जहां चातुर्मास करते हैं, वहां के आबाल वृद्ध एसा बोलते सुने गये हैं कि पूज्य श्री का शक्तिशाली प्रभाव होने से धार्मिक कार्य बडे प्रमाण में होते हैं ।

पूज्य श्री की देशना से आकर्षा के जैनेतर विद्वान भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं । पूज्य श्री के जाहिर प्रवचन उपाश्रय में, पंचायती

मोहरा में और टाउनहाल आदि स्थानों में गोठवाते हैं। जिन्हें सुनने के लिये भाई वहन समय से आधा घन्टा पहले आकर के जगह प्राप्त करलेते हैं। जो दस मिनट देर से आते हैं उन्हें जगह भी नहीं मिलती है। एसी है इनकी अद्भुत व्याख्यान शक्ति।

धन्य हो पूज्य गुरुदेव श्री को कि जिनकी अजोड़ देशना के प्रताप से अनेक गांवो में महा मंगलकारी श्री उपधान तप जैसे विशाल कार्य हुये हैं।

पू. आ. दे. श्री के व्याख्यानों का उतारा उनके प्रिय शिष्य रत्न पूज्य विद्वान मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजय जी महाराज श्री करते थे। तेओ श्री को विनती की कि "साहब" इन प्रवचनों का पुस्तक छप जाय तो हजारों आत्माओं को लाभ मिले।

पूज्य महाराज श्री ने दीर्घ दृष्टि से विचार कर के पूज्य आचार्य देव श्री के प्रवचनों को सुन्दर रीत से लिख के तैयार किये हैं।

पूज्य महाराज श्री की लेखन शक्ति इतनी मनमोहक है कि वांचने बैठें फिर उठने का दिल ही नहीं होता है।

पूज्य महाराज श्री ने आजतक दो हजार पाना का लखाण अपनी आगवी और रोचक शैली से तैयार किया है। वो वांचने के बाद मेरे दिल में पूज्य महाराज श्री के प्रति अपार मान उद्भवा था।

पूज्य आचार्य देव श्री को व्याख्यान सिवाय कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। तेओ श्री का सब काम पूज्य जिनचन्द्रजी विजयजी महाराज सम्हाल लेते हैं।

पूज्य आचार्य देव श्री के तात्विक प्रवचन और पूज्य महाराज श्री की लोकनाड को परख के दी जाती शुभ प्रेरणा इन दोनों का समागम होने के बाद धर्म के कार्यों में क्या कमी रहे।

इन गुरु शिष्य की जोड़ी जहां जाती है वहां धर्म महोत्सव का ठाट जमता है। मानो शासन प्रभावना का दिया आया।

पूज्य जिनचन्द्र विजयजी महाराज श्री की संसारी माताजी सेवाभावी तपस्वी साध्वीजी श्री प्रशप्रभा श्री जी महाराज हैं। उन के

अनेकशः धन्यवाद में कि जिन्होंने अपने एक के एक पुत्र को शासन के लिये सोंप दिया है ।

क्रिया धर्म के हार्द को पहचान के करो । देव गुरु और धर्म को पहचानना सीखो । बाह्य क्रियाकांड में ही रहोगे तो आत्म धर्म भुला दिया जायगा । केवल वेष के पुजारी न बनो । लेकिन गुण के पुजारी बनो ।

गुणों का अन्वेषण करो । मानव संयमी न बन सके तो चले, देश विरतिधर न बने तो चले लेकिन समकिती नहीं बने तो किस तरह चले ?

उपरोक्त शब्द पूज्य आचार्य श्री के व्याख्यानों में हमने वारम्वार सुने हैं । उनको सुनने के बाद हमने तय किया कि इस भव में गुरु तो इन को ही मानना ।

सदा के लिये पुज्य आचार्य देव श्री का सानिध्य मिले ऐसी भावना दिल में जन्मती हीं रहती है।

इस ग्रन्थ में कुछ जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो, पुज्य आचार्य देवश्री के विरुद्ध लिखा गया हो अथवा प्रेस दोष हुआ तो मैं उसके बदले क्षमा मांगता हें । हमारी अत्यन्त विनति से पूज्य जैन रत्न स्व० आचार्य देवश्री मद्‌विजय लब्धिसूरीश्वरजी महाराज के पट्टालंकार धर्म दिवाकर पूज्य आचार्य दवश्री मदविजय भुवनतिलक सूरीश्वरजी महाराजा ने गुजराती में प्राक कथन लिख दिया था उसको साभार उधृत करके इसमें दिया है ।

इस ग्रन्थ के प्रेस मेटर सुधारने का कार्य हमारी विनंति से यह संस्था के प्रेरक, व्यवहार कुशल पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज श्री ने अथाग परीश्रम लेकर किया है, उनका उपकार हम कभी भूल नहीं सकते ।

पूज्य बाल मुनिराज श्री शरदचन्द्र विजयजी महाराजने यह ग्रन्थ छपवाने में खूब रस लिया है, इसलीए हम उनका आभार मानते है ।

नव प्रभात प्रिंटींग प्रेस के मालीक सेठ श्री मणीलाल छगनलाल शाह ने शीघ्र छाप दीया है उनका आभार मानते हैं।

और श्रीयुत भीखालाल वाडीलाल कुवाडीया ने यह ग्रन्थ छपते समय अनेक विध निःस्वार्थ सेवा दी हैं उनका भी हम आभार मानते है।

इस ग्रन्थ प्रकाशन में पूज्य महाराज श्री की प्रेरणा से जिन्होंने उद्धार दिल से द्रव्य सहायता की है, उनको धन्यवाद ।

विश्व में आज कदम कदम पर बीभत्स साहित्य बढ़ रहा है। उससे प्रजामानस के चिन्त में जो खराब भावना प्रवेश करती है, उसके सामने आज शिष्ट, सुन्दर और धार्मिकता के सुसंस्कारों की खेती करने वाले साहित्य की बहुत जरूरत है।

इस प्रसंग में यह ग्रन्थ खूब उपयोगी सिद्ध होगा यही हृदय की भावना है। गत साल में "श्री प्रवचनसार कर्णिका नामका ग्रन्थ गुजराती भाषा में छपते ही चपोचप सब नकल उपड़ने लगी।

राजस्थान के अनेक धर्म प्रेमी भाईयों की मांगनी से यह ग्रन्थ हिन्दी भाषामें पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज ने एवं कवि श्री बाबूलाल शास्त्री ने खूब परीश्रम लेकर सुवाच्य शैली में लिख कर तैयार किया है।

गुजराती ग्रन्थ के लिये शताधीक अभिप्रायः हमारे उपर आये है, उसमें से राजस्थान सरकार के प्रधानों के अभिप्रायः इसमें छपाये हैं।

यह प्रवचन **गंगा** याने **प्रवचनसार कर्णिका** नाम का ग्रन्थ हिन्दी में छपा रहे है यह ग्रन्थ समाज को खूब खूब उपकार होगा।

ली

वि. सं. २०२५
महा सुद—१२

पूज्य आचार्य विजयभुवन सूरीश्वरजी
जैन ज्ञान मन्दिर ट्रस्टनां ट्रस्टीओ
मु. अहमदावाद M. Ahmedabad.

प्राक्कथन

आर्य देश आर्यों के वसवाट से आर्य कहा जाता है । धर्मों में भी जैन धर्म सर्व श्रेष्ठ और सर्वज्ञ कथित सिद्ध हुआ है ।

विश्व के तमाम धर्मों में जो कुछ ग्रन्थ है वह जैन धर्म में से उनमें गया है । जैन शासन सागर है ।

जबकिं अन्य धर्म आंशिक सत्यता धराते हैं सब जैन शासन में से चला गया है ऐसा महा विद्वान और अनुभवी महापुरुष बताते हैं । जैन दर्शन का आधारस्तम्भ जैनागम है ।

और उसमें दर्शाये हुए द्रव्यानुयोग के, गणितानुयोग के चरण करणानुयोग के और कथानुयोग के विषय...... ये अद्‌भूत, गहन और तत्व बोधक हैं । श्री तीर्थंकर देवों ने अर्थ स्वरूप देशना में से निपुण गणधर भगवंतों ने सूत्र रूप और तत्वों को प्रासादिक और आकर्षक भाषा में गूंथी वही वाणीं मुनिगण ऋषभों ने स्वक्षयो पशमानुसार स्मृति में जड़ के परम्परा से आज तक पंचम विषमकाल में अपने सम्मुख लाई गई है ।

आज जो कोई सुविहित और गीतार्थ श्रमण बोल रहे हैं वे सब जिन कथित तत्वों की ही रसपूर्ण मीठी ल्याण हैं । अनादिकाल से संसार में डूबते प्राणीयों को तिराने का पवित्र साधन हैं तो ये जिनागम ही हैं और उनके तत्व हैं । अन्य अनर्थ है । सार तो जिन वचन हैं । अन्य सर्व असार हैं । और इन वचनों का अमल यहीं मंगल मोक्ष मार्ग चारित्र हैं ।

यही चरित्र कि जो आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट करता है। यही श्रद्धालु वर्ग का परम पुनीत ध्येय होता है।

ज्ञानी पुरुष बताते हैं कि "सोच्चा जानइ कल्याणं" श्रवण करने से कल्याण मार्ग मालूम होता है। कल्याण मार्ग जाने सिवाय अकल्याण मार्ग का परिहार नहीं होता है। और कल्याण मार्ग में प्रवास नहीं हो सकता है।

जैन दर्शन का यह क्रम है। पहले श्रवण फिर उसका आचरण और फिर आचरण का फल अपवर्ग मोक्ष की प्राप्ति।

जैन दर्शन के आगम सूक्ष्माति सूक्ष्म दृष्टि से सर्व विषयो को चर्चते हैं। वर्णन करते हैं। उनमें कितने विषय ज्ञेय होते हैं। कितने हेय होते हैं। और कितने ही उपादेय होते हैं।

हेय छोड़ना, ज्ञेय जानना और उपादेय ग्रहण करना। ये भेद समझने से ही जीवन उज्वल और उर्ध्विकरणशील बनता है!

ऐसे गहन तत्वों को जैन श्रमण विधिपूर्वक गीतार्थ गुरुओं की पवित्र निश्रा में सविनय पढ़ते हैं। और गीतार्थ गुरु अपेक्षा से प्रत्येक तत्व को तीक्ष्ण तर्क युक्तियों से अध्ययन करने वालों पढ़ते हैं। परम्परा से गुरुनिश्रा में जो अभ्यास करते हैं वेही शास्त्रों के अत्यार्थों को जान सकते हैं समझा सकते हैं।

गुरुनिश्रा के शिवाय जो स्वगम से आगम पढ़ते हैं वे अर्थ का अनर्थ करके निरपेक्ष शासन के प्रत्यनींक बनते हैं। ये प्रत्यनीक शासन को बड़ा धक्का लगाते है। और आग्रह वश स्वका ही सच है ये सिद्ध करने धमपजाड़ (कूदाकूद) करते है।

इस प्रवचन सार कर्णिक की मैं प्रस्तावना लिख रहा हूं। यह ग्रन्थ आचार्य श्री विजय भुवन सूरजी के व्याख्यान का सार है। और विश्वास है कि एक आचार्य के द्वारा परोपकार दृष्टि से दिये

गये व्याख्यान और उनमें से भावुकजन अवतरण करके यह ग्रन्थ छपाने का श्रम उठाया है ये फलग्राही होगा ही ।

आजकी जहरीली हवा से नास्तिक वाद की छाया में धर्म विमुख वने वर्ग को इन व्याख्यानों का वांचन अवश्य धर्म श्रद्धालु और धर्म स्थिर वनायेगा ही । किंसी भी जैन श्रमण के व्याख्यान त्याग प्रधान तथा संसार की वासना और विकारों से नफरत पैदा कराने वाले होते हैं ।

आज समझते हैं कि जनता के हृदय पर आधुनिक युग साधना ने पाप पोषण के घर जमा दिये हैं । विलास के सुख साधन विपुल प्रमाण में उत्पन्न हो रहे है । पाप व्यापार मनुष्यों को प्रलोभन देकर आकर्षते हैं । ऐसे प्रसंग में इन विद्वान आचार्य श्री के व्याख्यानों का अध्ययन, मनन, निदीध्यासन अवश्य पथ दर्शक होगा ।

ये व्याख्यानकार एक सरल और तपस्वी सादे जीवन में जीते है । किसी पुण्य प्रकृति से जहां चातुर्मास करते है वहां व्याख्यानों की अनुपम कला से जनता को धर्म में तर वोल कर देते हैं । और श्रद्धावल में सुदृढ़ वनाते हैं । शासन प्रभावक परम कारूणिक जैनाचार्य श्री मद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज के ये व्याख्यानकार प्रथम शिष्य हैं । और उनकी निश्रामें विनयपूर्वक आगमा दिज्ञान की प्राप्ति की है ।

इस प्रवचनसार कर्णिका में कितने ही व्याख्यान रसिक और एकधारी रस धारा वर्षाती वोधक कथाओं से भरपूर है । कितने ही व्याख्यानों में सैद्धान्तिक मर्म स्पर्शक गहन वातों का दर्शन दिया है । कितने ही व्याख्यानों में द्रव्यानुयोग का विषय भी सुवाच्य और सरल शब्दों में सर्जा हुआ नजर आता है । संक्षेप में ये व्याख्यान् वाल जीवों को वांचने पर अवश्य अंपूर्व लाभ देने के साथ धार्मिक जीवन को जीवता सिखा देगा ।

यह प्रस्तावना लिखने का आचार्य श्री का अत्यन्त आग्रह हुआ। और मुझे भी प्रशस्त प्रवृत्ति करने की मंगलाभिलाषा जन्मी। जिस के परिणाम से संक्षेपमें भी लिखने को मैं गौरवशाली वना हूं। संक्षेप में सिंहावलोकन रूप लिख के मैं विरमता हूं।

इस सरल राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में ग्रंथ वांच के जनता इस के सार को स्वीकार के स्वजीवन को उज्वल और ज्योतिर्मय वनावे यही शुभेच्छा।

पुस्तक के अन्त में संपादक मुनिश्री ने अपने गुरुदेव का काव्यमय जीवन वृत्तान्त छपा के जो गुरुभक्ति दिखाई है वह अनुमोदनीय है। तथा तेजोश्री के द्वारा संचित "वोधक सुवाक्य" भी सद्बोध प्रेरक होने से प्रशंसनीय हैं।

सिरोही
श्री विजय हीरसूरीश्वरजी
जैन उपाश्रय
श्रावणशुक्ला पंचमी
वि. सं. २०२४

ली.
कविकुल किरीट स्वर्गस्थ
प. पू. आचार्यदेव श्री विजय
लब्धि सूरीश्वरजी पट्टालंकार आ.
विजय भुवन तिलक सूरिजी

नोट :– प्रवचन सार कर्णिका, गुजराती में से साभार उधृत किया है।

हिन्दी–रुपान्तर

में महावीर जयन्ती के साहित्य निर्माण के अनुसन्धानमे झांसी से हजारो माइलों का प्रवास करता हुआ तथा सन्तों की वाणी श्रवण करता हुआ, पूज्य गुरुदेव परम तपस्वी कुशल प्रवचनकार आचार्य देव श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब, और उनके विनयी शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज और उन के परिवार का दर्शन कर के अति प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

मेने उनकी साहित्यक रचना "प्रवचन सार कर्णिका, गुजराती भाषा में देखी, वह पढकर के मुझे वहुत ही आतमानंद हुआ। प्रवचनसार कर्णिका, एक व्यवहार और निश्चय के विषय को तलस्पर्शी ज्ञान देने वाला साहित्य होने के साथ साथ आतमा और परमात्मा के तत्व को सरल पद्धति, छटादार शव्दावली, तथा रोचक कथाओं से भरपूर होने से वालक, वृद्ध, और आधुनिक युवक युवतियों को पवित्र आचार, और चारीत्र के संगठन में अत्यन्त उपयोगी है। और उच्च दरज्जे का ग्रन्थ है।

पूज्य गुरुदेव श्री ने हिन्दी अनुवाद करने का कार्य मुझे सोंपा, और आशीर्वाद दिया। कइ दिनो की साधना के वाद अथाग परीश्रम कर के यह हिन्दि अनुवाद तैयार कर के अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

और विद्वानरत्न पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज श्रीने पढकर यौग्य रिति से तैयार कर दिया। उससे मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूं।

मु झे आशा है कि जनता को यह ग्रन्थ खूव खूव उपयोगो सिद्ध होगा।

भवदीय

कवि वावूलाल शास्त्री,

महावीर जयन्ति कथा के रचयिता:

मु० पो० वारचौन, (झांसी)

जैनाचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज की राजस्थान में पधरामणी और अनेकविध शासन प्रभाव के कार्यों द्वारा

जैनशासन की जयपताका

व्याख्यान वाचस्पति, पूज्य, आचार्य देव श्री मद्विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा के प्रथम पट्टालंकार प्रवचन प्रभावक जैनाचार्य श्रीमद् विजयभुवन सूरीश्वरजी महाराज साहब अपने विद्वान शिष्य रत्न पूज्य मुनिराज श्री आनंदघन विजयजी म. तथा पू. मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज आदि शिष्य प्रशिष्यादि परिवार के साथ गुजरात से विहार कर के मांडाणी संघ की विक्रम संवत २०२३—की चैत्री ओली के लिये आग्रह पूर्ण विनती का स्वीकार कर के चैत सुदी पंचमी के सुबह मांडाणी पधारने पर संघने उमलका भरा भारी सामैया स्वागत किया।

आज से दशान्हि का महोत्सव का मंगल प्रारंभ हुआ। चैत सुदी ६ की ओली की आराधना में ५० भाविक जुडे। नित्य सुबह नव पद ऊपर पू. आ. म. श्री का व्याख्यान, दोपहर को बड़ी पूजा, आंगी भावना चालू हुई।

साथ में श्री गणेशमलजी की तरफ से अट्ठाई महोत्सव अपने पुत्र उत्तमकुमार के स्मरणार्थ हुआ था।

चैत सुदी १३ को भगवान महावीर की जयन्ती बहुत उत्साह से मनाइ गई।

चैत सुदी १४ आज के दिवस की राह अनेक गाँव के संघ धार धार के देख रहे थे। क्योंकि सबको एसा होता था की आचार्य श्री के चातुर्मास का लाभ हमको मिलेगा।

मांडाणी, पाडीव, उड, सिरोही, जालोर तथा उदयपुर आदि अनेक गाँवों के संघो की २०२३-कें चातुर्मास के लिये विनती चालू थी। सभी गाँवों के संघ आज हाजिर हुये थें।

लाभा लाभ की दृष्टि से विचारकर के मांडाणी संघ की विनती को स्वीकार करते ही जय जयकार के शब्दों से वातावरण गूंज उठा था। दूसरे दो गाँवों के संघों को पर्युषण में साधु आवेंगे एसा कहा तव वे भी आनन्दित हो गये थे। अनेक गाँवों के संघ विनती करने को आये थे। उसके अनुसार उड की विनती को स्वीकार कर के चैतवदी २ सुवह यहां से विहार कर के उड पधारते ही सामैया स्वागत किया गया था।

यहां के संघमें वर्षों से कुसंप (लड़ाई अनैक्य) था। उस कुसंप को दूर करने के लिये आ. म. ने अपील की। दोनो पक्ष के भाइयोंने उसी समय लिखित देके कवूल की। और कवूल किया कि आप श्री जो फैंसला देंगे वह हम्हें मंजूर होगा।

दोपहर को विजय मुहूर्त में संघ समक्ष पू. आ. म. श्री ने फैंसला सुनाते ही दोनो पक्ष में अपूर्व आनन्द हो गया। आज से कुसंप दूर हो गया। उसकी उजवणी के निमित्त आचार्य श्री की निश्रामें यहां से अन्दोर तीर्थ का पगपाला यात्रा (पदयात्रा) संघ काढने का निर्णय लिया गया। चैत वदी ३ को १०० भाविकों का यात्रा संघ अन्दोर आया।

मांडाणी में उपाश्रय के काम के लिये पू. मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी को वहां रोका था। ऊनके साथ १०० भाविकों का यात्रा-- संघ भी उको अन्दोर आया था।

शिवगंज, पालडी और जालोर से संघके वहुत से भाविक व्यक्ति वंदन करनें आये थे। इस तरह आज पांच गाँव के संघ एकत्रित हुये थे। सवका स्वामिवात्सल्य हुआ था। दोपहर को वड़ी पूजा ठाठ से पढाई थी।

चैत वदी ६ के सुबह पोलडी पधारने पर भव्य स्वागत हुआ था। मुनि श्री आनन्दघन विजयजी म. की ये जन्मभूमि होने से गाँव में उत्साह अमाप था।

श्रीयुत रीखवचन्दजी भाई की तरफसे यहां से कोलर तीर्थ का यात्रा संघ काढने का निर्णय होने से संघ में आनन्द की लहर दौड़ गई थी। चैत वदी ८ सुबह १०० भाविकों का यात्रासंघ आचार्य श्री के साथ कोलर आया। पूजा स्वामिवात्सल्य आदि हुआ था। यहां सिरोही शिवगंज तथा जालोर से भाविक वंदन करने आये थे।

सुबह विहार आगे चला चैत्य वदी ११ सुबह वामनवाडा तीर्थ में पधारने पर भव्य स्वागत किया गया। मांडाणीं उड आदि से भाविक वंदन करने आये थे।

यहां से छोटी पंचतीर्थी की यात्रा कर के आबू देलवाडा हो के अचलगढ तीर्थ में पधारे।

अचलगढ तीर्थ की पेढी के उपाध्यक्ष श्री पुखराज जी भंडारी, मंत्री श्री भगनलाल जी मैनेजर श्री भगवतीलाल जी आदिसंघ संमुख आये। और भव्य सामैया स्वागत पूर्वक आचार्य श्री का प्रवेश हुआ था।

वैशाख सुदी ६ का दिन खूब ही महत्व का था। क्यों कि आज से सूरिमन्त्र की आराधना होने वाली थी।

पूज्य आचार्य श्री ने सूरिमन्त्र की प्रथम पीठ की २१ दिन की आराधना शुरु की। मुनि श्री आनन्दघन विजयजी ने ऋषिमंडल की आराधना शुरु की। मुनि श्री जिनचन्द्र विजयजी ने चिन्तामणी पार्श्वनाथ की आराधना शुरु की। इस आराधना में लाभ लेने के लिये संख्यावन्द भाईओ यहां पहुंच गये थे।

आराधना के दिवस पसार होने लगे थे।

भक्त मंडल के दिल में आराधना की पूर्णाहुति के निमित्त महोत्सव उज्जवने की भावना जागृत हुई। इस से आचार्य श्री की सूरिमन्त्र की

आराधना के निमित्त अष्टान्हि का महोत्सव, अष्टोतरी स्नात्र समेत, पार्श्वनाथ पूजन आदि के कार्यक्रम से उजवने का निर्णय किया। महोत्सवदर्शक आमन्त्रण पत्रिका देश विदेश में रवाना हुई। संख्याबन्द भाविक भक्त आने लगे।

वैशाख सुदी ११ के सुवह कुम्भस्थापन, दीपकस्थापन, जवारा-रोपण भारे उमंग से हुआ। दोपहर को बड़ी पूजा पढाई गई।

वैशाख वदी १२ आज आचार्य श्री को तथा मुनि श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज को २१ दिन की आराधना का पारणा होने से यहां के मेनेजर श्रीयुत भगवतीलाल जी ने अपने गृहांगण में पगलां करा के सब ने गुरुपूजम ज्ञानपूजन आदि का लाभ लिया। इस के वाद शान्ति से पारणा हुआ।

मुनि श्री जिनचन्द्र विजयजी ने की हुई पार्श्वनाथ भगवान की आराधना की मंगल समाप्ति निमित्त धोलका निवासी श्रीयुत मनुभाई वेलाणी की तरफ से पार्श्वनाथ पूजन रक्खी गई थी।

पूजन की उछामणी में सैंकड़ो मन की उपज हुई थी।

१२॥ वजे पूजन का प्रारंभ हुआ। यह पूजन भारत भरमें तीसरी वार होने से देखने के लिये सैंकड़ों भाविक आ गये थे। पूजन देखने वाले सब मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे कि एसा प्रभावशाली पूजन कहीं भी नहीं देखा था।

यहां के ज़िनालय में यक्ष यक्षिणी का अभाव होने से उन्हें पधराने का निर्णय होते ही उसके अनुसार वैशाख वदी १४ सुवह गौमुख यक्ष चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा को अभिषेक पूर्वक संवर्धन किया था।

वैशाख वदी अमावस सुवह ४ देवी देवताओं का अभिषेक हुआ था।

जेठ सुदी १ दोपहर को नवग्रह दश दिक्पाल तथा अष्टमंगल पूजन शुद्ध विधि विधान मुजब हुआ था।

जेठ सुदी २ दोपहर को मूलनायक के देरासर (मन्दिर) में सब भगवान को अठारह अभिषेक की क्रिया शुद्ध विधि विधान से हुई थी। उसके वाद सामको ४ वजे जलयात्रा का वरघोड़ा (जुलूस) भारे दब दबापूर्वक निकल था।

जेठ सुदी ३ विजय मूहूर्त में गौमुख यक्ष, चक्रेश्वरी देवी द्वारपाल तथा सरस्वतीदेवी की इस प्रकार चार प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भिन्न भिन्न पुण्यशालीयों ने हजारों की उछामणी करके प्रतिष्ठित की।

उसके वाद तुरंत ही अष्टोतरी स्नात्र का का प्रारंभ हुआ। सामको ५ वजे तमाम सार्धमिक का स्वामी वात्सल्य हुआ था।

यहां ३० वर्ष के वाद अष्टोतरी होने से तमाम भाविकों का उत्साह अमाप था।

महोत्सव में रोहिडा, वांकली मांडाणी, आवूरोड, जयपुर अजमेर सिरोही जावाल इन्दोर सिटी, वम्बई अहमदावाद धंधुका धोलका आदि अनेक गाँवों से भाविक यहां आये थे।

महोत्सव योजक पुखराजजी भंडारी तथा मगनलालजी कोठारी अपने भरपूर कुटुम्ब के साथ यहां आके आठ दिन रुके थे।

उनने भक्ति का लाभ इतना अच्छा लिया था कि सब उनकी प्रशंसा करते थे।

यहां के मेनेजर भगवतीलालजी नें रातदिन देखे विना तन मन धनसे जो सेवाकी है उसके वदले उनको खूब धन्यवाद घटता है। पूजा भावना के लिये वडगाँव से प्रसिद्ध संगीतकार मंडली के साथ आये थे।

आचार्य श्री अपने परिवार के साथ यहां से जेठ सुद ८ को मांडाणी तरफ विहार करते समय तमाम भाविक विदा देने आये थे।

जेठ वदी ६ कों मांडाणी प्रवेश करने की भावनाथी। इस तरह पूज्य आचार्य श्री सपरिवार गुजरात से राजस्थान में पधारने पर अनेक विध शासन प्रभावना के कार्य होनें लगे हैं।

मांडाणी ननर में विविध अनुष्ठानों से भरपूर चातुर्मास
और
पर्वाधिराज की
अद्वितिय आराधना

प्रवचन प्रभावक आचार्य श्री विजय भुवनसूरीश्वरजी म० सा० अपने विद्वान शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज जिनचन्द्रविजयजी, पू० रसिक विजयजी, पू० प्रसन्नचन्द्र विजयजी, पू० बालमुनि शरद्चन्द्र विजयजी, विश्वचन्द्र विजयजी आदि शिष्य प्रशिष्यादि परिवार समेत जेठ वदी छ के मंगल प्रभातमें मांडाणी (राजस्थान) संघकी वर्षो की आग्रहभरी विनती को मान देकर यहां पधारने पर बेन्ड, देशी वाद्य मंडली आदि से भव्य स्वागत-स्वारी निकली । पूरा गाँव सन्मुख आया था । जगह जगह से पू० श्रीको वधा लिया था । सामैया से उपाश्रय में उतरते हुए "धर्मामृत की विशेषता" इस विषयपर प्रवचन हुआ था ॥ अंतमें प्रभावना हुई थी ।

सूत्र वांचना :—

अषाढ़ सुदी २ से व्याख्यान में धर्मबिन्दु प्रकरण तथा मलया सुंदरी चरित्र चालु होनेसे गृहांगणमें ले जानेका चढावा श्री शंकरलालजीने लिया था ।

वाजते गाजते गृहागन में पधरा के रात्रिजागरण किया था । प्रभात में वरघोड़ा (जुलुस) काढ के ले आये थे ।

सूत्र वहोराने का, पांच ज्ञान पूजा और मुलपूजन आदिका चढावा अच्छे प्रमाण में हुआ था । तदनुसार सूत्रकी क्रिया समाप्त होने के पश्चात् पू. आचार्यश्री ने अपनी मधुर शैलीसे सूत्रका प्रारंभ किया था । अंतमें प्रभावना हुई थी ।

चौमासी की आराधना :—

अपाढ सुदी १४ को चौमासी चौदश के दिन विपुल प्रमाण में पोषध हुये थे । व्याख्यान में पू. आचार्यश्री नें चौमासी व्याख्यान देने पर अनेक लोगोंने विविध प्रकार के नियम लिये थे । अंतमें प्रभावना हुई थी । नमिऊण पूजन —

यह पूजन भारतमें कहीं भी नहीं होनेसे लोगोंका उत्साह बढ़ता जाता था । परम प्रभावशाली श्री नमिऊण पूजाके सुबह व्याख्यान में चडावा बोलनें से हजारो की उछामणी हुई थी । उपाश्रय के विशाल होलमें पार्श्वनाथ भगवान के सान्निध्य में दोपहर को विजय मुहूर्त में नमिऊण पूजन का प्रारंभ हुआ था । शुद्ध मंत्रोच्चार बोलते थे तब लोग ऐसा कहते थे कि ऐसा अद्‌भुत पूजन हमने कहीं भी नहीं देखा । सामको ५ बजे पूजन समाप्त होते ही प्रभावना हुई थी ।

लक्ष नवकार का जप :—

श्रावण सुदी १० को सामुदायिक लक्ष नवकार महामंत्रके जापमें विपुल भाई-बहन जुड़ गए थे । प्रातः स्नात्र महोत्सव प्रवचन होने के बाद जापका प्रारंभ हुआ था । १२॥ बजे खीरके एकासना श्री धर्मचन्द्रजी की तरफसे हुए थे । आज पू० प्रसन्नचन्द्र विजयजी का उत्तराध्ययन सूत्रका जोगका पारणा शान्ति से हुआ था ।

राह देखी जा रही थी उस दिनकी :—

श्रावण सुदी १३ को व्याख्यान में पूज्य आचार्यश्री के सचोट उपदेश से और पू० मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजीकी प्रेरणा से यहां विशालकाय आलीशान नूतन उपाश्रय के लिये टीपमें देखते देखते २५ हजार रुपये हो गए थे। यहां नूतन उपाश्रयका काम: पू० आचार्यश्री के उपदेश से हुआ । तभीसे लोगों के मनमें संदेह था कि इस खर्च के लिये क्या होगा? उस संदेह को दूर करने के लिये पू० श्रीने जोरदार अपील की और संघने वधा करके टीप चालू की, सबके संदेह चले गए।

अट्ठम की आराधना :—

श्रावण वदी ३–४–५ को शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवानके सामुदायिक अट्ठम में संख्याबंध भाई–बहन जुड़ गए थे । तपस्वियोंके पारणा और उत्तरवारणा का लाभ दो पुण्यशालियोंने लिया था ।

जोगकी मंगल समाप्ति :—

पू० मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराजने गाँवके सद्भाग्य से महानिसीथ सूत्रके बड़े जोगकी जेठ वदी १० से शुरूआत की। जिस जोगका पारणा श्रावण वदी ४ को आता होने से बहुतसे भाईयों को गृहांगण पगला कराने का मनोरथ जगा था । उसके अनुसंधान में उछामणी बोलने पर १००१) रु. बोलके श्री केसरीमलजीने पू० आचार्य श्री आदि मुनिवरोंको संघके साथ गाजते–वाजते स्वगृहमें पगला कराके अनेरा लाभ लिया था ।

इस मासमें बहुतसे भाई–बहेनोंने तपश्चर्या की थी । उन सबने पू० गुरुदेव श्रीको गाजते–वाजते स्वगृहमें पगलां कराके पारणा किये थे।

श्रावण वदी ९ के सुबह उडके संघकी आगे से स्वीकारी हुई विनती के अनुसार पर्यूषण पर्व कराने के लिये पू० म० श्रीको लेने के लिये उडसे भाई कहां पधारे थे ।

पू० आ० श्रीकी आज्ञा से मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी म० आदि ठाणा उड पधारते ही संघके भाई–बहन सन्मुख आये थे। भव्य स्वागतपूर्वक उपाश्रय में पधारे थे ।

श्रावण वदी १० को मुनिराज श्री रसिकविजयजी आदि पू० श्री की आज्ञासे पर्यूषणा कराने के लिये नारादरां पधारते ही भाई–बहन सन्मुख आये थे ।

पर्वाधिराज की पधरामणी :—

आवती कालसे पर्यूषण पर्वका आरम्भ होनेसे आज सामको गाँव

का स्वामिवात्सल्य हुआ था। पूरे गाँवको ध्वजापताका से शृङ्गारा गया था। मानो इन्द्रपुरी देख लो!

श्रावण वदी ११, १२, १३ को अष्टान्हिका व्याख्यान पू० श्रीने रोचक शैलीसे सुनाया। वदी १३ सासको चढावा बोलकर श्री गणेशमलजी कल्पसूत्र को अपने घर पर ले गये थे। रात्रि जागरण आदि के द्वारा श्रुतज्ञान की भक्ति की थी। सुबहको वरघोड़ा चढ़ाके उपाश्रय ले आके श्री गणेशमलजीने पू० आ० श्रीको कल्पसूत्र वहोराया था।

पांच ज्ञानपूजा, गुरुपूजन आदिका चढावा अच्छे प्रमाणमें हुआ था।

श्रावण वदी अमावस, आज दोपहको स्वप्न दर्शन की क्रियायें चालू होनेपर हजारों रुपियों का चढावा बोलना शुरू हुआ। पारणा गृहांगण ले जानेका चढावा ३५१ मन घी बोलके श्री खुशालचंदजी ने लिया था। इसके बाद पू० आचार्यश्रीने मधुर भाषामें परमात्मा का जन्मवांचन सुनाया था। लोगोंमें आनंद आनंद व्याप्त हो गया था।

भा० सु० ३-४ आज क्षमापना का महा पर्व संवत्सरी दिवस होनेसे बारसासूत्र वहोराने का चित्रदर्शन का, पांच पूजाका, गुरुपूजाका वगैरह चढावा अच्छे प्रमाणमें हुआ था।

८॥ बजे बारसा सूत्रको वांचनेकी शुरूआत हुई थी। बारसासूत्र पूर्ण होनेके बाद बाजते-गाजते चैत्यपरिपाटी निकली थी।

भा० सु० ५ आज सुबह तमाम तपस्वियों के पारणा तथा सार्धमिक वात्सल्य शाह हंसराजजी की तरफ से हुआ था। पू० आ० देव श्रीकी पुण्य कृपासे इस प्रकार पर्यूषण पर्व सुन्दर रीतसे उजवे गये।

१ मासक्षमण, ५-११ उपवास, ५-९ उपवास, २० अठ्ठाई, ५० अठ्ठम, २० चौसठ प्रहरी पौषध वगैरह तपश्चर्या और ३ स्वामी वात्सल्य रथयात्रा आदि अनुष्ठान हुए थे। देवद्रव्य में रुपया तीन हजार, ज्ञान द्रव्यमें सोलह हजार और उपाश्रय के लिये पैंतीस हजार हुये थे।

भव्य उद्यापन महोत्सव की उजवणी :

शेठ श्री गणेशमलजी वनाजी की तरफसे १२ छोडका भव्य उद्यापन महोत्सव, वृहत् शान्ति स्नात्र युक्त नमिऊण पूजन समेत दशान्हि का महोत्सव पूर्वक भादों वदी ६ से भादों वदी १४ तक खूब शानदार रीत से उजवाया गया था। जिसकी नोंध (समाचार) प्रवचनसार कर्णिका गुजराती में दी है।

विशाल पाया पर महामंगलकारी की उपधान तप की अद्‌भुत आराधना और मालारोपण महोत्सव की उजवणी :

पूज्य गुरुदेव श्री के उपदेश से महा मंगलकारी श्री उपधान तप कराने का पुन्य मनोरथ हमको जागृत हुआ हमने हमारा मनोरथ पूज्य श्री के समक्ष उपस्थित किया। और आग्रह पूर्ण विनती की। उस विनतीं का पूज्य गुरुदेव श्री ने स्वीकार किया। इस से संघ में अपूर्व आनन्द की लहर पैदा हो गई। उसके लिये जोरदार तैयारियां होने लगीं। उसके लिये विशाल आमन्त्रण पत्रिका तैयार करके देश परदेश में रवाना कीं। और जैन पत्र में भी उसकी जाहेरात की गई। आमन्त्रण मिलते ही गाँव गाँव से भाविक आने लगे गाँव में अपूर्व आनन्द की लहर दौड़ गई।

प्रथम प्रवेश :—

आसो वदी २ का दिन ज्यों ज्यों नजदीक आता गया त्यों त्यों जन संख्या वढने लगी। उस मंगल प्रभात में १५० भाविकोंने उपधान तप में प्रवेश किया।

द्वितीय प्रवेश :—

आसो वदी ५ के मंगल प्रभात में ५० भाविकों ने प्रवेश किया। २०० भाविकों से वातावरण आराधनामय वन गया था। नित्य

सुबह पूज्य आचार्य देव श्री के और दोपहर को पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज के प्रवचन और ऋषिमंडल स्तोत्र के पाठ से वातावरण उल्हास प्रधान और उर्मिल हो गया था ।

दोनो टाइम की क्रिया एवं १०० खमासणा की क्रिया पू. आचार्य देव एवं पूज्य जिनचन्द्र विजयजी महाराज कराते थे । किसी भी आराधक को कोई भी तकलीफ नहो इसकी पूरी सावधानीं पू. महाराज श्री रखते थे ।

२०० आराधकों में ३० पुरुष थें कुल ८५ प्रथम उपधान वाले थे ।

भिन्न भिन्न पुण्यशालियों की तरफ से जिनमन्दिर में बडी पूजा और भव्य अंग रचना (आंगी) की जाती थी ।

ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों आराधकों का हर्ष बढता गया । सभी को माला परिधान की तमन्ना जगी थी । उस समय उसके निमित्त शान्तिस्नात्र युक्त अष्टान्हिका महोत्सव करने का उपधान समितिने निर्णय किया । उसके अनुसार मगसर सुदी ३ से जिनमन्दिर में अष्टान्हिका महोत्सव का प्रारंभ हुआ । उसी दिन कुम्भ स्थापन, दीप स्थापन और जवारा रोपण की क्रिया बडे उत्साह से हुई ।

मगसर सुदी ९ को नवग्रह पूजन, दश दिक्पाल पूजन अष्ट मंगल पूजन अच्छी तरह से हुआ ।

मगसर सुदी १०, आजका दिन सबके लिये खूब आनन्द का था क्यों कि आज माला का वरघोडा एवं मालाकी उछामणी का कार्य होने वाला था । सुबह ९ से १०॥ तक प्रभावशाली प्रवचन हुआ । दोपहर को तीन बजे वरघोडा चडाया गया उसमें सब से आगे निशान डंका, देशी वाद्य मंडली चलती थी । उस के बाद माला पहनने वाले भाई बहन अपनी माला को लेकर के भिन्न भिन्न वाहनों में बैठे हुये दृष्टिगोचर होते थे । उस में १० मोटर कार १० घोडागाडी एवं जोधपुर

महाराजा का विशालाय गजराज मदभरी चाल से चल रहा था। उस के बाद वीजापुर का प्रख्यात बेन्ड था। तदनन्तर पूज्य आचार्य देव स्वशिष्य मंडली के साथ चल रहे थे। उसके पीछे विशाल मानव समूह था। तदनन्तर चाँदी की इन्द्रध्वजा एवं विशाल रथमें प्रभुजी विराजमान थे।

तदनन्तर हजारों की संख्यामें नारियां मंगलगीत गाती हुई दृष्टि गोचर होतीं थीं। इस तरह वरघोड़ा की व्यवस्था अति सुन्दर थी। ऐसा वरघोड़ा यहां पहले नहीं निकला होगा।

रातको ९ वजे व्याख्यान पीठपर पूज्य गुरुदेव श्री के पधारने से जय जयकार से मंडप गूंज उठा था।

मालाकी उछामनी का प्रारंभ करते ही उत्साह का उदधि चरम सीमा पर पहुंच चुका था। रुपया चालीस हजार की उपज एक घंटे में हो गई थी। उसमें प्रथम मालाका आदेश देलंदर निवासी समी वहनने लिया था।

मागसर सुदी ११ आज प्रातः से ही लोगों में अधिक चहल पहल मालूम हो रहीं थी। भाई–वहन पूजा करके सुन्दर वस्त्रों में सज्ज हो के मंडपमें आने लगे थे।

८॥ वजे पूज्य आचार्यश्री देवश्री अपने परिवार के साथ व्याख्यान पीठ पर पधारते ही वातावरण उर्मिल हो गया था।

नन्दी की पवित्र क्रिया शुरू हुई। ९॥ वजे प्रथम माला परिधान की क्रिया शुरू हुई।

अनुक्रम से ८५ मालाकी विधि समाप्त हुई। अंतमें प्रभावना हुई।

दोपहर को १२॥ वजे शान्ति स्नात्र का प्रारम्भ हुआ था। इस तरह से माला महोत्सव भारे उमंग से पूरा हुआ। विधि विधान के लिये मांडवला से मंडली आई थी। पूजा भावना के लिये सियाना

सुबह पूज्य आचार्य देव श्री के और दोपहर को पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज के प्रवचन और ऋषिमंडल स्तोत्र के पाठ से वातावरण उल्हास प्रधान और उर्मिल हो गया था।

दोनो टाइम की क्रिया एवं १०० खमासणा की क्रिया पू. आचार्य देव एवं पूज्य जिनचन्द्र विजयजी महाराज कराते थे। किसी भी आराकधक को कोई भी तकलीफ नहो इसकी पूरी सावधानी पू. महाराज श्री रखते थे।

२०० आराधकों में ३० पुरुष थे कुल ८५ प्रथम उपधान वाले थे।

भिन्न भिन्न पुण्यशालियों की तरफ से जिनमन्दिर में बड़ी पूजा और भव्य अंग रचना (आंगी) की जाती थी।

ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों आराधकों का हर्ष बढ़ता गया। सभी को माला परिधान की तमन्ना जगी थी। उस समय उसके निमित्त शान्तिस्नात्र युक्त अष्टान्हिका महोत्सव करने का उपधान समितिने निर्णय किया। उसके अनुसार मगसर सुदी ३ से जिनमन्दिर में अष्टान्हि का महोत्सव का प्रारंभ हुआ। उसी दिन कुम्भ स्थापन, दीप स्थापन और जवारा रोपण की क्रिया बड़े उत्साह से हुई।

मगसर सुदी ९ को नवग्रह पूजन, दश दिक्पाल पूजन अष्ट मंगल पूजन अच्छी तरह से हुआ।

मगसर सुदी १०, आजका दिन सबके लिये खूब आनन्द का था क्यों कि आज माला का वरघोड़ा एवं मालाकी उछामणी का कार्य होने वाला था। सुबह ९ से १०॥ तक प्रभावशाली प्रवचन हुआ। दोपहर को तीन बजे वरघोड़ा चढाया गया उसमें सब से आगे निशान डंका, देशी वाद्य मंडली चलती थी। उस के बाद माला पहनने वाले भाई बहन अपनी माला को लेकर के भिन्न भिन्न वाहनों में बैठे हुये दृष्टिगोचर होते थे। उस में १० मोटर कार १० घोड़ागाड़ी एवं जोधपुर

महाराजा का विशालाय गजराज मदभरी चाल से चल रहा था । उस के बाद वीजापुर का प्रख्यात बेन्ड था । तदनन्तर पूज्य आचार्य देव स्वशिष्य मंडली के साथ चल रहे थे । उसके पीछे विशाल मानव समूह था । तदनन्तर चाँदी की इन्द्रध्वजा एवं विशाल रथमें प्रभुजी विराजमान थे ।

तदनन्तर हजारों की संख्यामें नारियां मंगलगीत गाती हुई दृष्टि गोचर होतीं थीं । इस तरह वरघोड़ा की व्यवस्था अति सुन्दर थी । एसा वरघोड़ा यहां पहले नहीं निकला होगा ।

रातको ९ वजे व्याख्यान पीठपर पूज्य गुरुदेव श्री के पधारने से जय जयकार से मंडप गूंज उठा था ।

मालाकी उछामनी का प्रारंभ करते ही उत्साह का उदधि चरम सीमा पर पहुंच चुका था । रुपया चालीस हजार की उपज एक घंटे में हो गई थी । उसमें प्रथम मालाका आदेश देलंदर निवासी समी वहनने लिया था ।

मागसर सुदी ११ आज प्रातः से ही लोगों में अधिक चहल पहल मालूम हो रहीं थी । भाई–वहन पूजा करके सुन्दर वस्त्रों में सज्ज हो के मंडपमें आने लगे थे ।

८॥ वजे पूज्य आचार्यश्री देवश्री अपने परिवार के साथ व्याख्यान पीठ पर पधारते ही वातावरण उर्मिल हो गया था ।

नन्दी की पवित्र क्रिया शुरू हुई । ९॥ वजे प्रथम माला परिधान की क्रिया शुरू हुई ।

अनुक्रम से ८५ मालाकी विधि समाप्त हुई । अंतमें प्रभावना हुई ।

दोपहर को १२॥ वजे शान्ति स्नात्र का प्रारम्भ हुआ था । इस तरह से माला महोत्सव भारे उमंग से पूरा हुआ । विधि विधान के लिये मांडवला से मंडली आई थी । पूजा भावना के लिये सियाना

से मंडली आई थी। इलेक्ट्रिक की रोशनी से नगर को सजाया गया था।

इस महोत्सव में जावाला वरलूट, उड, पाडीव, गोहिली, सिरोही संडवारिया देलंदर वराडा कालन्द्री तवरी दोतराई सियाना वागरा जालोर जोधपुर आदि अनेक गाँवों से भाविक आये थे।

पूज्य आचार्यदेव श्री की प्रभावशाली निश्रामें मांडानी में दूसरी दफे उपधान तपकी आराधना निर्विघ्न पूर्ण हुई है।

हमारे गाँवके ऊपर पूज्य आचार्यदेवश्री का महान उपकार है। तेओश्री फिरसे यहां पधार के हम्हें लाभ देने की कृपा करें यही शासनदेव से विनती।

ली. संघ सेवक
Sd/– दानमल धरमचन्दजी
मु. अहमदावाद,

उड नगर में विशाल पाया पर सम्पन्न हुए महा मंगलकारी उपधान तपकी आराधना और माला-रोपण महोत्सव की भव्य उजवणी।

४० हजार की उपज। राजा-महाराजाओं का शुभागमन।	**चलो महोत्सव देखने के लिये।**	**आठ हजार जन समूहकी भीड़। सत्रह कामलीसे गुरु-भक्ति।**

हमारे संघकी आग्रहभरी विनती का मान दे के मांडाणी से पूज्य गुरुदेवश्री की आज्ञा से पूज्य मुनिराज श्रीजिनचन्द्र विजयजी महाराज आदि ठाणा दो चातुर्मास में पर्यूषण पर्व की आराधना कराने के लिये पधारे थे। उस समय उपधान तपकी आराधना यहां कराना एसा

निर्णय किया । उसके अनुसार हमारी विनती को स्वीकार करके पूज्य आचार्य भगवन्त अपने परिवार के साथ मगसर सुदी १४ को मंगल प्रभातमें भव्य स्वागत के साथ पधारे ।

आमन्त्रण पत्रिका :—

उपधान तपकी आमन्त्रण पत्रिका में सही कराने का चढावा २१०१ रुपयों में शाहबालचन्दजी ने लिया था ।

एक हजार पत्रिका छपा के आने के बाद देश परदेश में रवाना हुई थीं । गाँवों गाँव से भाई-बहन आने लगे एसे मानो नदीमें पूर आया हो ।

उपधान नगरकी रचना :—

व्याख्यान और क्रिया के लिये बालचन्दजी के मकान में बड़ा शामियाना खड़ा किया था । उसका नाम उपधान नगर रक्खा गया था । मंडप ध्वजा पताका द्वारा सुशोभित करने में आया था । सुन्दर झूमरसे मंडप चमक रहा था । स्वागत सूचक सुवाक्यों से सजे बोर्डों से मंडप दिप रहा था ।

मध्यमें व्याख्यान पीठकी रचना इतनी सुन्दर की गई थी कि इन्द्रापुरी देख लो । मंडपमें प्रवेश करने के लिये शेरी के नाके पर १५ × १५ के हार्डबोर्ड के ओइल पेन्ट चित्रों से सुशोभित दरवाजे खड़े किये गये थे । नगर प्रवेश के लिये भी उसी तरह दरवाजा खड़ा करनें में आया था ।

उपधान नगर से लगाकर जैनमन्दिर तक ध्वजा पताका इतनी सुन्दर थीं कि मानों संताकुकडी की रमत देख लो । नगरीमें जगह जगह आगन्तुक मेहमानों को ठहरने की व्यवस्था की गई थी । जैनधर्म शाला के चौगान में विशाल भोजन मंडप बनाया गया था ।

प्रथम प्रवेश :—

पौष वदी १ (मारवाडी माह वदी १) के मंगल प्रभातमें १०१ भाई-बहनोंने पूर्ण उल्हास से उपधान तपमें प्रवेश किया ।

द्वितीय प्रवेश :—

पोष वदी ३ (मारवाडी माह वदी ३) आज दूसरे प्रवेशमें २५ भाई–बहनोंने प्रवेश किया। नित्य पांच पकवान द्वारा आराधकों की भक्ति करने में आती थी।

महावदी ८ को १२५ भाई–बहनोंने अतीत भव पुद्गल वोसिराने की क्रिया बड़े प्रेमसे की थी। पूज्य आचार्य देवश्रीने पद्मावती की आराधना भाववाही ढंगसे सुनाई थी। सुनते सुनते सबकी आँखों में से आंसू टपक पड़े थे और सबके दिल गद्गद हो गये थे।

कितने ही भाई–बहनोंने व्रतोच्चारण की क्रिया की थी।

अन्तमें नवलमलजी की तरफ से प्रभावना हुई थी।

नित्य सुवह उपमिति ग्रन्थ के आधार से पूज्य आचार्य देवश्री प्रभावशाली देशना देते थे।

उपवास के दिन दोपहरको पूज्य महाराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज 'आत्मा और कर्म की भिन्नता" इस विषय पर प्रभावशाली प्रवचन देते थे।

दोनों टाइमकी क्रिया १०० खमासणा आदिकी क्रिया दोनों गुरुदेव कराते थे।

महा सुदी ९ से शेठ प्रागमलजी की तरफ से अपनी मातृश्री टीपूबेन के तप निमित्त उद्यापन महोत्सव बड़ी धूमधाम से ५ पांच दिन तक मनाया गया था।

अन्तिमदिन गाँवका स्वामी वात्सल्य प्रागमलजी की तरफ से हुआ था। बाहरसे संगीत मंडली आई थी।

ज्यों ज्यों आराधना के दिन बीतते गये त्यों त्यों आराधकों के दिलमें माला परिधान की उत्कंठा बढ़ती जा रही थी।

उपधान कारकों की तरफ से शान्ति स्नात्र युक्त अष्टान्हिका

महोत्सव शानदार रीतसे उजवने का निर्णय किया गया था। उसके अनुसार फागन वदी १४ (गुजराती महावदी १४) से महोत्सव का प्रारंभ हुआ।

सुबह कुम्भ स्थापना दीपक स्थापन एवं जवारोरोपण आदिकी क्रिया वड़ी धामधूम से हुई।

फागुन सुदी १ व्याख्यान उठने के बाद शेठ अम्बालाल नथमलजी के यहां चतुर्विध संघके साथ पूज्य आचार्यश्री के पगला कराने का होनेसे बीजापुर से आया हुआ अमृत बेन्डपार्टी के साथ उनके ग्रहांगण पधारे थे। सुवर्ण की गहुंली द्वारा पूज्यश्री को वधाया गया था।

तत्पश्चात् पू. आचार्य देव और सब मुनिवरों का पूजन करके उपस्थित १७ साधु साध्वियों को ७०–७० रुपये की कामली वहोराकर लाभ लिया था।

मंगलाचरण के वाद अंतमें प्रभावना हुई थी।

तत्पश्चात् चुन्नीलालजी के घर पर पगलां किये थे। वहां पर भी उपरोक्त क्रिया हुई थी। मंगलाचरण के वाद अंतमें प्रभावना हुई थी।

फागुन सुदी ३ दोपहरको नवग्रह पूजन, दशदिक्पाल पूजन, एवं अष्टमंगल पूजने वड़ी शुद्धता से हुये थे।

फागन सुदी ४ दोपहरको मन्दिरजी में सब पटों का अभिषेक हुआ था।

फागुन सुदी ५ दोपहर को सामुदायिक प्रभावना का कार्यक्रम रखा गया था। उस समय ५० के करीब छोटीं वड़ीं प्रभावनायें हुई थी।

फागुन सुदी छः आज पू० पन्यासजी श्री भद्रंकर विजयजी म०

आदि यहां पधारे थे। दोपहर को २ बजे माला-रोपण का भव्य वरघोड़ा (जुलूस) बड़ी धूमधाम से चालू हुआ। उसमें सबसे आगे पाडीव दरबार का निशान-डंका, देशी वाद्य मंडली, चाँदी की इन्द्र ध्वजा जोधपुर महाराजा का सुवर्ण अंबाडी से सुशोभित विशाल गजराज ९ मोटरकारें एवं अन्य वाहनों की श्रेणियां दिप रहीं थीं।

उसके बाद बीजापुर का प्रसिद्ध अमृत बेण्ड पू० आ० देव आदि विशाल मुनिवृन्द, हजारों का मानव-समूह, भजन-मंडली, गीतमंडली, नाटक मंडली भक्ति रसमें तरबोल होकर चल रहीं थीं।

उसके बाद चाँदीके विशाल रथमें त्रिभुवन धनी विराजमान थे। पीछे हजारों नारियां मंगल गीत गातीं हुई दृष्टिगोचर होतीं थीं।

आजके जैसा वरघोडा इस गाँव के अंदर पहले कभी भी नहीं निकला था।

रातको भक्तिरस का प्रोग्राम होने के बाद ९ बजे पू० आ० देवकी सान्निध्यता में मालाकी उछामणी चालू हुई। देखते देखते ही एक घण्टे में ४० हजार रुपयों की आमदनी हुई।

फागुन सुदी ७ मालादिन, आजके दिनका इन्तजार लोग चातक की तरह कर रहे थे। प्रातःकाल से ही आनंद-मंगल की ध्वनि होने लगी थी। हरेक स्थानपर नारियां रास-गरबा रमती हुई दृष्टिगोचर हो रहीं थीं।

८॥ बजे बेण्ड की मधुर ध्वनि के साथ पू० आ० देव अपनी व्यास पीठ पर पधारे। हजारों के दिल नाच उठे। नन्दी की क्रिया चालू हुई। माला परिधान का गीत सामूहिक रूपसे बुलाया गया। आनन्दभरे वातावरण के साथ ६० माला परिधान का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

आज बाहर गाँवसे हजारों नर-नारी महोत्सव देखने के लिये पधारे थे।

सबका स्वामी वात्सल्य स्थानीय संघकी तरफसे हुआ था । बडे मेले के जैसा दृश्य खड़ा हुआ था ।

दोपहर को शान्ति स्नात्रकी क्रिया विधि-विधानसे हुई थी । विधि-विधान के लिये प्रतापचंदजी पधारे थे । पूजा भावना के लिये संगीतकार हरजीवनदास अपनी मंडली के साथ पधारे थे ।

आठों दिन नित्य नई पूजा आंगी प्रभावना आदि का कार्यक्रम होता था ।

नित्य त्रिकाल चौघडिया, प्रभु दरबार एवं पू० आ० देव के भवन के बाहर बजते थे ।

बिजली की रोशनी से पूरे नगर को सजा दिया गया था । सत्ताईस गाँव के भाविक उपधान तप में जुड़े थे ।

महोत्सव देखने के लिये बम्बई, मद्रास, बेंगलोर, महीसूर, इस्लामपुर, रानी बेनोर, पूना, कराड सतारा, रहमतपुर, अहमदाबाद, आबू रोड, रोहिडा, पिन्डवाडा सादडी, बेडा वरली जोधपुर शिवगंज, वांकली, जीलोर जीवाल गोहिली तिरोही मांडानी आदि अनेक गाँवों से भाविक जन दर्शन वंदन एवं महोत्सव के लिये पधारे थे ।

सिरोही दरबार एस. डी. ओ. सप्लाय ओफिसर मांडानी ठाकोर, मंडवारिया ठाकोर उड ठाकोर आदि महानुभाव भी दर्शनार्थ पधारे थे ।

धन्य जैन शासन ।

ली.

Sd/– **उपधान तप समिति,**
मु. पो. उड (राजस्थान)

(अमरसर) सरतनगरे विविध अनुष्ठानों से भरपूर चातुर्मास एवं पर्वाधिराज की आराधना :—

नगर प्रवेश :—

गच्छाधिपति पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा के-प्रथम पट्टालंकार पूज्य आचार्य देव श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराजा अपने विद्वान शिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजय जी महाराज आदि ठाणा छः के साथ हमारे संघ की अत्यंत आग्रहभरी चातुर्मासीय विनती को स्वीकार कर के अषाढ वदी २ दिनांक १२–६–६८ बुधवार प्रातःकाल में आहोर की बेन्ड पार्टी देशी वाद्य मडली और वासुपूज्य सेवामंडल आदि के साथ हर्ष भर पूर्ण नर नारियां सन्मुख आयी थीं।

दो माइल दूर से स्वागतयात्रा चालू हुई थी। नगर को ध्वजा पताका एवं कमानों से शृंगारा गया था। जगह जगह पूज्य श्री को वधाया गया था। उपाश्रय में मंगल देशना के बाद लाडू की प्रभावना हुई थी।

दोपहर को बड़ी पूजा पढाई गई। मंगल निमित्त १०० आयंबिल गाँव में हुये थे।

रिकार्ड रूप उछामणी :—

व्याख्यान के अन्दर पंचमांग श्री भगवती सूत्र एवं कुमारपाल चरित्र वांचने का निर्णय होने पर अषाढ वदी १३ रविवार को उछामणी दिन नक्की करने में आया।

१३ को व्याख्यान के समय में उछामणी की शुरूआत होते ही जनता के हृदय में आनन्द का सागर उमड़ पड़ा। यहां के इतिहास

में आज की बोलियां अभूतपूर्व थीं। लोग कहने लगे कि यह उछामणी रिकार्ड रूप रहेगी।

चार मास के लिये भगवती सूत्र वंचाने का चढावा ४१०१) इकतालीस सौ एक में सेठ मंछालाल जी ने लिया। श्री सूत्र जी को गृहांगन ले जाने का एवं वहोराने का एवं अष्ट प्रकारी पूजा का कुल चढावा रुपया पन्द्रह हजार का (१५०००) हुआ था।

तत्पश्चात् गुरुदेव श्री का लूंछना करने का चढ़ावा ४८०१) अड़तालीस सौ एक रुपया बोल कर शेठ हीराचन्द फूलचन्दजी ने लाभ उठाया।

अषाढ सुदी २, सेठ भँवरलालजी आहोर की बेण्ड पार्टी को बुलाकर जुलूस चढाकर सूत्रजी को उपाश्रय में लाये। मार्गमें १२५ गंहुलियों द्वारा वधाया गया। दोनों सूत्रोंकी मंगल देशना के बाद प्रभावना की गई।

आजके हर्षमें संघकी तरफसे स्वामी वात्सल्य किया गया।

दोपहर को बडी पूजा पढ़ाई गई थी।

चौमासी की आराधना :-

अषाढ सुदी १४, आज चातुर्मास का प्रारम्भ होने से १०० भाई-बहनोंने पौषध लिये थे। चौमासी पर व्याख्यान हुआ था। पौषार्थियों को शाह जेठमलजी की तरफ से एक एक रुपयेकी प्रभावना बांटी गई थी।

सवा लाख नवकार मंत्रकी आराधना :-

अषाढ वदी १०, शुक्रवार। सामुदायिक स्नात्र एवं प्रवचन होने के बाद १५० भाई-बहन सवा लाख नवकार मंत्र के सामूहिक जापमें तल्लीन हुए थे। खीरका एकासना शाह जेठमलजी की तरफ से हुआ था।

सताईस हजार उपसर्गहर स्तोत्र का जाप :-

श्रावण सुदी १, प्रातः सामुदायिक स्नात्रपूजा एवं प्रवचन होनेके वाद १५० भाई-वहन उपसर्ग हर स्तोत्र के जापमें तदाकार हुए थे।

दोपहर को मूंगकी वानगी से लालचंदजी की तरफ से एकासना कराया गया था ।

पंचरंगी तपकी सौरभ :-

श्रावण सुदी १० से श्रावण वदी १ तक पंचरंगी तपकी आराधना में ५५ भाई-वहन सम्मिलित हुए थे। ९ मीको उत्तर पारणा कपूरचंद जी की तरफ से और श्रावण सुदी १ को पारणा श्री चमनाजी की तरफ से हुए थे ।

एक मुनिश्रीने १६ उपवास किये थे । उनका पारणा सेठ फुलचंदजी के यहां चढावा से हुआ था ।

अक्षय निधि तप :-

श्रावण वदी ४ से अक्षयनिधि तपमें ५० भाईवहन जुडे थे । उनकी १५ दिनकी भक्ति का लाभ भिन्न भिन्न पुण्यशालियों ने प्रवचन के वाद पू० आ०देव आदि संघको गृहांगण में पगलां कराके प्रभावना करके एकासना करवाके एक एक रुपया और श्रीफल द्वारा भक्ति की थी।

पर्वाधिराज की आराधना :—

पर्वाधिराज को वधाने के लिये जनसमूह का मन तलस रहा था। ध्वजा पताका और कमानों से नगर को शणगारा गया था ।

श्रावण वदी ११, शामको स्थानीय संघने विशाल पाये पर उपधान तप कराने का निर्णय होने से गाँवमें खूब हर्ष मनाया गया।

श्रावण वदी १२, १३, १४ अष्टान्हि का व्याख्यान प्रभावशाली हुए । १४ शामको २०१ मनका चढावा वोलकर शाह वजिंगजीने कल्प

सूत्रको गृहांगण ले जाकर भक्ति करके प्रातः जुलूस के साथ उपाश्रयमें लाये थे ।

अमावस प्रातः इन्द्रमलजीने ११०१ रुपयों का चढावा बोलकर कल्पसूत्र बहोराने का लाभ लिया ।

भादौ सुदी १ दोपहर को उछामणी का रंग यहाँ के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में लिखा जाय ऐसा हुआ था। स्वप्नदर्शन का चढावा चालू होते ही २५००० का चढावा हुआ था । पालनाको गृहांगण ले जानेका चढावा शाह सुमेरमलजी नें पैंतालीस सौ एक मन (४५०१) बोलकर लाभ लिया था ।

भादौं सुदी ३, वारसा सूत्रको गृहांगण ले जानेका चढावा ७०१ मन बोलकर उकचंदजी ठाठसे ले गए और सुबह जुलूसके साथ ले आए ।

भादौं सुद ४ आज महापर्व संवत्सरी का पवित्र दिन होने से वारसा सूत्र सुनने के लिये श्रोताओंसे होल भर गया था। वारसासूत्र वहोराने का चित्र-दर्शन एवं पाँच पूजाका चढावा सुन्दर हुआ था । अपूर्व शान्तिके वातावरणमें पू० श्रीने बारसासूत्र मधुर रीतिसे सुनाया था। अंतमें प्रभावना के वाद चैत्य परिपाटी हुई थी ।

भादौं सुदी ५ को पारणा उकचंदजीने कराये थे। शामको स्वामी वात्सल्य शाह हरकचंदजी की तरफसे हुआ था । सुदी ६ को स्वामी वात्सल्य छगनलालजी की तरफसे हुआ था ।

पर्यूषण पर्वकी आराधना करने के लिये एक हजार १००० भाई बहन बाहर गाँवसे पधारे थे ।

ऐतिहासिक उपज :-

२५०००) देव द्रव्यमें ।
१५०००) ज्ञान द्रव्यमें ।
८०००) गुरु भक्तिमें ।
३०००) जीव दयामें हुए थे ।

तपश्चर्या की नोंध :-

१—१६ उपवास

१—१० उपवास

३५— ८ उपवास

२५— ५ उपवास

१००— ३ उपवास

१००— २ उपवास

चौसठ प्रहरी पोषध पच्चीस भाइयोंने किये थे। कुल पोषध ५०० हुए थे।

भादों सुदी १ को जन्म वांचन करने के लिये नून संघकी विनती से पू० महाराज श्री जिनचंद्र विजयजी महाराज आदि ठाणादो पधारे थे। वहां स्वप्न द्रव्यकी उपज अच्छे प्रमाणमें हुई थी।

ओलीकी आराधना और नवान्हिका महोत्सवकी उजवणीः-

आसों सुदी ७ से शास्वती ओलीकी आराधना में १०० भाविक जुडे थे। सातम से लगाकर पूनम तक भिन्न भिन्न पुण्यशालियों की तरफ से बड़ी पूजा, आंगी एवं प्रभावना होती थी।

ऐतिहासिक अभूतपूर्व कार्य :-

यहाँ के संघने धर्मशाला आदि वनाने के लिये देवद्रव्यके करीव ५० हजार रुपये लगाये थे। उस देनाकी समाप्ति करके पापमें से मुक्त होने के लिये आसो सुदी १० दोपहर को संघको एकत्रित करके पू० श्रीने जोरदार अपील की और देवद्रव्य के भक्षन से होनेवाली बरबादी का वर्णन किया। यह सुनते ही संघने साधारण खाता का चंदा वनाने का निर्णय किया और चंदा चालू होते हो ६०००० साठ हजार रुपयोंका चंदा हो गया। द्रव्य सहायक पुण्यशालियों के नाम एक बड़ी तक्तीमें उपाश्रयमें लगाए गए हैं।

व्याख्यान होलमें यह भगीरथ कार्य करनेवाले पू० गुरुदेवश्री को कोटि कोटि धन्यवाद घटता है।

किसीकी मृत्यु होने के वादमें रोने-कूटने के कुरिवाजों का त्याग करने का यहाँ के संघने निर्णय किया है।

कार्तिक सुदी १ प्रातः ६॥ वजे नवस्मरण एवं गौतम स्वामी का रास पू० आ० देव ने भाववाही रीतसे सुनाया था। अंतमें प्रभावना हुई थी।

कार्तिक सुदी ५ आज ज्ञानपंचमी होने से पौषध आदि अच्छे प्रमाण में हुए थे।

प्रधानों का सुभागमन :-

कार्तिक सुद ६ रविवार दोपहर को ३ वजे जयपुर से राजस्थान सरकार के अन्नप्रधान परशराम मदरेना, विद्युत प्रधान खेतसिंह राठोड एवं विधानसभा के उपाध्यक्ष पुनमचंद विसनोई अपने स्टाफ के साथ गुरुदेवश्री के दर्शन करने के लिये पधारे थे। बडे प्रेमसे वासक्षेप डलाया था। उसके वाद पब्लीक भाषण हुआ था।

फा० सुद १४ चोमासी की आराधना सुन्दर हुई थी।

फा० सुद १५ दोपहर को ११॥ वजे पू० गुरुदेव श्रीसंघ साथे गुडानालोतराननी वेण्ड पार्टीनां मधुर शब्दो साथे गाममे फरीने धर्मशालामां वांधेला सिद्धाजलजीनां पददर्शनार्थे पधारेला। दोपहर को वडी पूजा धामधूम से पढाई गई। अंतमें प्रभावना हुई थी।

पू० श्री शीघ्र विहार करनेवाले होने से चातुर्मास परिवर्तन का कार्यक्रम वंध रखा गया था।

पू० आ० देवश्री पधारे तवसे नित्य सुवह ८॥ से दस वजेतक व्याख्यान चालु था।

हर रविवार दोपहर को २ से ३॥ तक रामायन की रस धारा पू० म० श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज वहाते थे।

दोनों टाईम के प्रवचन में जनता बढे उमंगसे लाभ लेती थी। चातुर्मास आमंत्रण पत्रिका देशपरदेश में रवाना हुई थी, उससे वंदन करने के लिये पधारनेवाले महेमानों की भक्ति के लिये रसोडा खोलने में आया था।

जालोर डिस्ट्रिक्ट दुष्कालपीडित होनेसे उपधान तपका कार्यक्रम बंद रखा गया था। पू० श्रीके पधारने से राजस्थान में जगह जगह अनेक शासन प्रभावना के कार्य हो रहे हैं। यह सब प्रभाव पूज्य गुरुदेव का है।

हमारे संघकी यही विनती है कि पू० गुरुदेव अपने परिवार के साथ पुनः चातुर्मास करने के लिये सरत में पधारें और सरत संघको लाभ देंगे।

प्रवचनसार कर्णिका की गुजराती आवृत्ति हमने पढ़ी। पढ़कर हम प्रभावित हुए। यह पुस्तक हिंदी भाषामें छपाया जाय यह हमारी विनती को मान्य करके हिन्दी भाषा में छपाने का निर्णय पू० श्रीने किया। उसमें हमारे संघकी तरफसे ज्ञान द्रव्यमें से रुपया ५०००) पांच हजार देकर श्रुतज्ञान का लाभ लिया। इस हिन्दी पुस्तक के अंदर सरत चातुर्मास के समाचार दिया जाय। इस विनती को मान्य रखकर हमको आभारी किया।

"मंगल विहार........"

काती वद २, गुरुवार सवारे ६-५० मीनीटे पू० गुरुदेव श्री विहार करते ही हजारों भाई-बहन आ गए थे। वाद्यमंडलीने विदाय गीत छेडा और संघकी आँखों में से अश्रुधारा बहने लगी। गाम के बाहर मंगलदेशना सुनायी। संघके २०० भाई-बहन पू० श्रीके साथ २ माइल चलके सुरा तक आए थे। यहाँ स्थानीक संघकी तरफ से भव्य सामैया, प्रवचन, प्रभावना आदि हुए थे।

पू० गुरुदेवश्रीका उपकार हमारा संघ कभी भी भूल नहीं सकता।

जैन जयति शासनम्।

ली० चातुर्मास समिति, मु. पो. **सरत,** अमरसर
स्टे० वाकररोड (राजस्थान)

"अभीप्राय"

विद्युत उपमंत्री,
राजस्थान,
जयपुर,
ता. २५–१०–१९६८

मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी,

आपने भेजा हुआ "प्रवचनसार कर्णिका" नामका धार्मिक ग्रन्थ, गुजराती भाषामें छपा हुआ मीला,

सधन्यवाद,

विद्वान जैनाचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराजने प्रस्तुत ग्रन्थ में आत्माको मोक्षमें ले जाने के लीये जो अभिनव प्रयास किया हें, उसके वदल हार्दिक धन्यवाद,

आपने धर्म, कर्म, और आत्माको समझाने के लिये छोटे वडे उदाहरनोसे, कथानको से ग्रन्थको रसमय वनाया हें।

यह ग्रन्थ सभी समाजमें माननीय एवं आदर्शरूप वनेगा,

संपादक मुनिराज श्री जिनचन्द्रविजयजीने सुन्दर रितिसे संकलन किया हे, उसके वदल धन्यवाद।

एसे ग्रन्थ की हिन्दी भाषामें खूब खूब जरुर हे।

आपका......

खेतसिंह......

卐

"अभीप्राय"

उपाध्यक्ष विधान सभा,
राजस्थान,
जयपुर, कोट नं. १३
ता. २६–१०–१९६८

मुनि श्री जिनचन्द्रविजयजी,

आपने भेजा हुआ "प्रवचनसार कर्णिका, नामका ५०० पेजी धार्मिक ग्रन्थ मीला,

आभार,

समाज के विद्वानों में जैनाचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज का नाम प्रथम कक्षामें हे।

देशके अन्दर विलास पोषक साहित्य का विकास खूव हो रहा हें । उसके सामने आपने प्रस्तुत ग्रन्थमें आर्य संस्कृति का सुन्दर विवेचन किया हे ।

समाज के नागरीकों कों धर्माभिमुख वनाने के लिये यह ग्रन्थमें आपने जो प्रयास किया हे वह स्तुत्य हे ।

देशकी सव भाषाओमें यह ग्रन्थ छप जाय तो समाजमें खूव खूव परिवर्तन हो सकता हे ।

आपका......

पुनमचन्द विशनोइ,

卐

"अभीप्राय"

खाद्य मन्त्री,
राजस्थान,
जयपुर, कोट नं. १३
ता. २७-१०-६८,

जैन मुनिश्री जिनचन्द्रविजयजी,

आपने भेजा हुआ "प्रवचनसार कर्णिका, नामका गुजराती पुस्तक मीला ।

एतदर्थं धन्यवाद,

प्रस्तुत ग्रन्थ सचोट एवं सरल गुजराती भाषामें लीखा हुआ होनेसे समाजको खूव उपयोगी निवडेगा,

आध्यात्मीक जीवन जीनेवाले जैनाचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज जैन एवं जैनेत्तर समाजमें प्रचलीत विद्वान जैनाचार्य हे ।

यह पुस्तकमें आध्यात्मीक वातोकी चर्चा सुन्दर रितिसे की हे, साथ साथ जीवन स्पर्शी वातोको भी समझाइ हे, इसलिये यह पुस्तक प्रत्येक मानवको उपयोगी होगा ।

यह ग्रन्थ राष्ट्रभाषामें छपानेसे साहित्य क्षेत्रमें अनेरी भात पाडने वाला वनेगा, एवं समाजका उपकार होगा ।

आपका......

परशराम मदेरना,

आभार–प्रदर्शन

सरत–अमरसर जैन संघने अपने ज्ञान खातामें से यह ग्रन्थ–रत्न के प्रकाशन में रुपये ५००१) का दान उदारता से देकर अपूर्व श्रुत–भक्ति की है उसके वदल हम उनका अंतःकरण से आभार मानते हैं,

और......

साधना प्रिन्टरी के मालिक श्री कान्तिलाल सोमालाल शाहने एक मासके अल्प समय में ३० फर्मा का यह ग्रन्थरत्न हिन्दी भाषा में तैयार करके हमको देकर अद्भुत आश्चर्य सर्जा है उसके वदल हम अंतःकरण से उनका आभार मानते हैं ।

ली०

पू० आचार्यदेव श्रीमद्
विजय भूवनसूरीश्वरजी महाराज
जैन ज्ञानमंदिर ट्रस्टका ट्रस्टी मंडल

सम्पादकीय

इस रोकेट युगमें मानव चन्द्र पर जानेकी महेच्छा करता है, लेकिन उस मानवको यह पता नहि है कि मेरा अस्तित्व कहाँ तक इस विश्व के चौगान में है ?

यह ग्रन्थ सर्वको माननीय है। इसमें तत्त्वों की बातों को सरल बनाकर कथानकों से अलंकृत करके दी है, ताकी वांचक वर्ग शीघ्र तत्त्वों की समझ पा सकता है ।

एक ही व्याख्यान में अनेक विषयों की चर्चा एवं प्रासंगीक प्रवचन होने से वांचक वर्गको खूब खूब मझा आती है। यह हकीकत तो सिद्ध हो चुकी है कि गुजराती आवृत्ति छपते ही उसकी नकले उपड़ने लगी, और हिन्दी आवृत्ति की मांगनी सामान्य जनता से लेकर प्रधानों ने भी की है ।

इस ग्रन्थमें जिनाज्ञा विरुद्ध एवं प्रवचनकार वात्सल्यनिधि पूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज के आशय की विरुद्ध आ गया हो तो "मिच्छामिदुक्कडं" पाठक वर्ग इस ग्रन्थ को पढ़कर कल्यान मार्ग में आगे वढे यही शुभाभिलाषा ।

वि० सं० २००५
महा सुद १३
दशा पोरवाड सोसायटी
अमदावाद–७

श्री जिनचन्द्र विजय

इस ग्रन्थ के सम्पादक पूज्य
विद्वान मुनिराज श्री
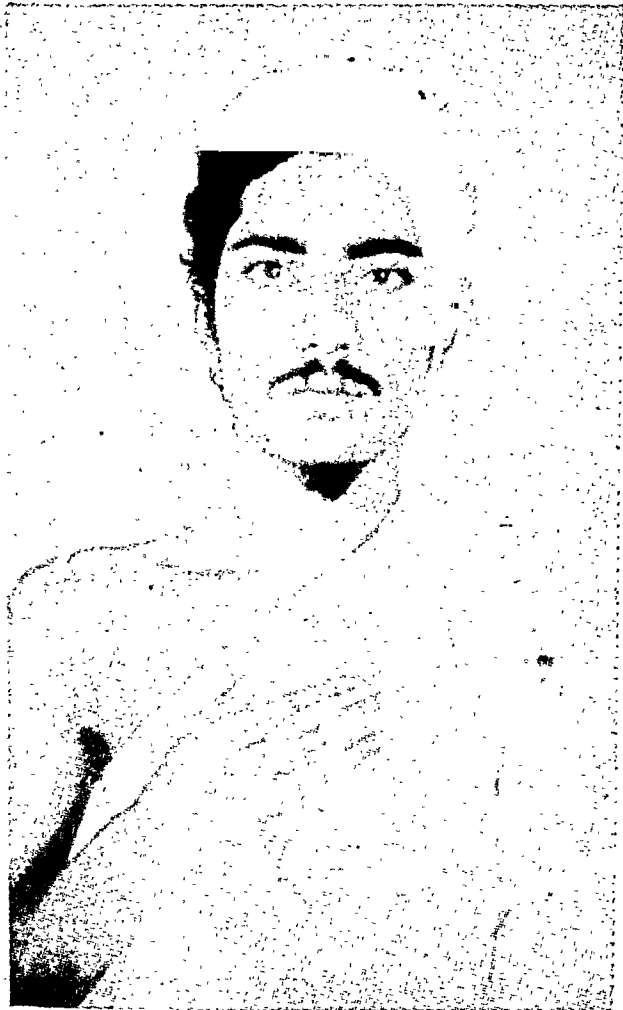
जिनचन्द्रविजयजी महाराज

श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक
तपागच्छीय उपाश्रय
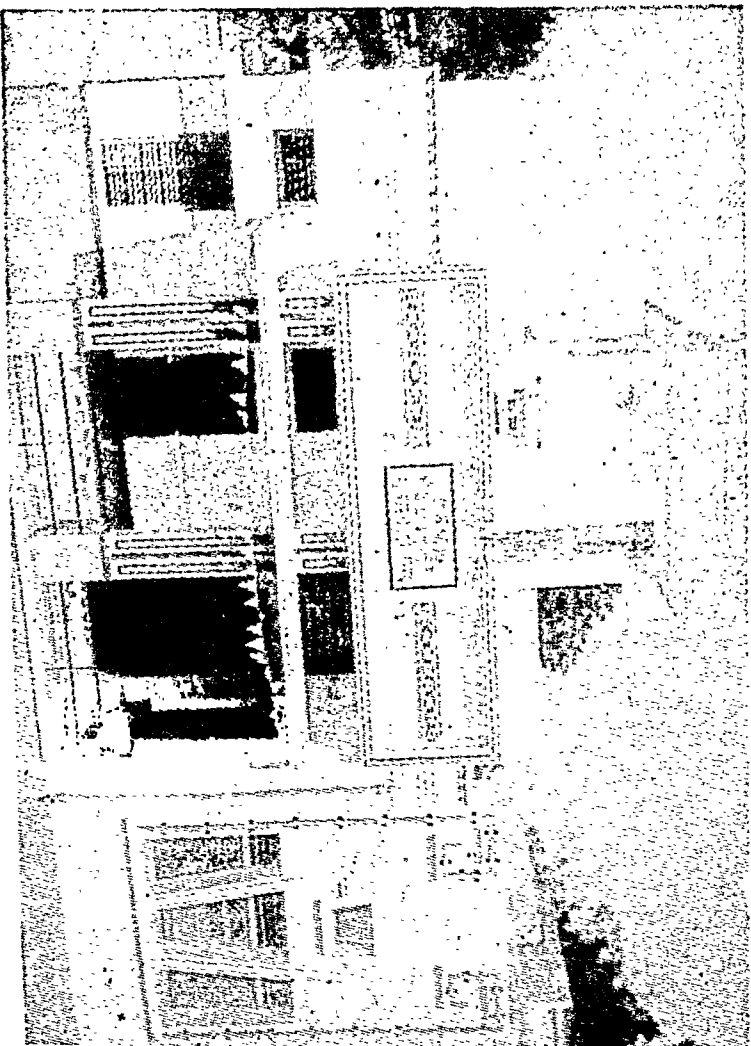
मु. पो. सरत – अमरसर, (राजस्थान)

प्रवचनसार कर्णिका

व्याख्यान—पहला

अनन्त उपकारी तारक भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि संसार का भय जिसको लगता है उसीको वैराग्य उत्पन्न होता है।

कर्म दो प्रकार के हैं: चलित और अचलित। तपश्चर्यादि के द्वारा जिनकी निर्जरा हो सकती है वे चलित कर्म कहलाते हैं और जो कर्म जिस स्वरूप में बांधे गये हो उनको उसी स्वरूप में भोगना पड़े उनको अचलित कम कहते हैं।

जो कर्म उदयकाल में नहीं आये एसे कर्मों को भी आत्मा अपने पुरुषार्थ के द्वारा उदय में लावे उसको उदीरणा कहते हैं।

सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकरोंने चक्रवर्ती पनेमें चौसठ हजार कन्याओं के साथ विवाह क्यों किया?

तो जवाब है कि भोगावली कर्मों के कारण से और भोगको रोग मान करके, तथा ये कर्म भोगे विना जाने वाले नहीं हैं। अर्थात् भोगे विना उन कर्मों की निर्जरा नहीं होगी एसा मानकर ही सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थंकरोंने चक्रवर्ती पने में चौसठ हजार कन्याओं से शादी की।

नरक के जीवों को खूब भूख लगती है, परन्तु खाने को नहीं मिलता है। प्यास भी लगती है परन्तु पीने को पानी भी नहीं मिलता है। नरकगति की भयंकर वेदना के वर्णन को सुनकर भव्य आत्मा पापोंसे बचे इसी लिये वीतराग प्रभुने नरकों का वर्णन समझा करके अपने ऊपर महान उपकार किया है।

पाप करना ही नहीं चाहिये। फिर भी अगर करना ही पड़े तो तल्लीन होकर दिल लगाकर नहीं करना चाहिये। परन्तु उदासीन भावसे करना चाहिये। सम्यग्दृष्टि आत्मा जहांतक हो सकता है वहां तक पाप करता ही नहीं है। और अगर करना ही पड़े तो कंपते कंपते, डरते डरते करता है। जो श्रावक तत्त्व को जानता है वह बात करता है तो-धर्म तत्त्व की ही चर्चा करता है। पाप की चर्चा कभी नहीं करता है। एसे श्रावक और श्राविका माता पिता अपने पुत्र-पुत्रियों के शादी-विवाह भी धर्मी, धर्मात्मा गृहस्थ के यहां ही करते हैं। जिस से धर्म के संस्कार पुष्ट होते जायें। इसीलिए ही सम्यक्त्वी आत्मा शादी विवाह जैसे कामों में सबसे पहली पसन्दगी धर्मात्मा की ही करता है नहीं कि पैसादार की।

संसार में अच्छा मिलना तो पुण्य के अनुसार होता है। जिसके रोमरोम में वीतराग प्रभु का धर्म रहता है एसे धर्मात्मा की अगर आर्थिक हालत अच्छी भी न हो फिर भी वह रोता नहीं है। चिन्ता नहीं करता है। परन्तु जो मिलता है और जो होता है उसी में सन्तोष मानता है।

समकित के पांच लक्षण हैं—(१) शम-समता (२)

संवेग–मोक्षको इच्छा (३) निर्वेद–संसारसे वैराग्य (४) द्रव्य और भावसे दया (५) आस्तिकता–श्री वीतराग प्रभु के वचनों में दृढ़ श्रद्धा ।

कंचन–कामिनी के त्यागी पंच महाव्रतधारी सुसाधु धर्मी कहलाते हैं । बारह व्रतोंमें से थोड़े बहुत व्रतों को धारण करनेवाले धर्माधर्मी कहलाते हैं । संसार में रहने पर भी जिसने समकित की दीक्षा ली है वह समकित दीक्षित कहलाता है । सर्व विरती रूप दीक्षा तो सिंह जैसे शूरवीर लोग ही कर सकते हैं । अर्थात् सर्वविरती रूप दीक्षा तो बहादुर पुरुष ही ले सकते हैं । जिनमें सम्यग्दर्शन नहीं होता उनका नंम्बर तो संघमें भी नहीं आ सकता है ।

धनको लात मारे तभी मोक्ष मिल सकता है। अगर पुण्य में नहीं हो तो धन भी नहीं मिलता है। एसा समझ करके सम्यक्त्वी आत्मा धन की चिन्ता नहीं करके मोक्ष की चिन्ता करता है। करोड़पति सम्यक्त्वी जब धर्मस्थान में आता है तब पैसाका, धनका घमंड दूर करके ही आता है । इसी तरह गरीब सम्यक्त्वी भी गरीबी के रोना छोड़ कर ही धर्मस्थान में आता है । कारण कि दोनों को धर्म की खुमारी है, धर्मकी लगन है। जिसको धर्मकी खुमारी है वही धर्मी हो सकता है ।

वीतरागदेव को ही सच्चा देव सुदेव तरीके मानना, पंचमहाव्रतधारी साधुको ही सच्चा साधु यानी सुसाधु मानना, और केवलीप्रणीत धर्मको ही सच्चा धर्म यानी सुधर्म मानना ही सम्यग्दर्शन है । देशविरति का मूल नींव भी सम्यग्दर्शन ही है ।

देव, देवी, यक्ष, यक्षिणी आदिको केवल ललाट में ही तिलक होता है। उनको केवल साधर्मी तरीके ही तिलक हो सकता है। कुछ लोग उनको नव अंग तिलक करते हैं वह ठीक नहीं है, और भगवान की पूजा करने के वादमें ही यक्ष-यक्षिणी को तिलक किया जा सकता है।

जिस तरह से पसन्द नहीं आनेवाली वस्तु को जबरदस्ती खाने पर आदमी का मुंह बिगड़ जाता है. उसी प्रकार संसार के भोग भोगने पड़ने पर धर्मी का दिल विगड़ता है। इसी लिये श्रावक ज्यों ज्यों धर्म करता जाता है त्यों त्यों आरंभ-समारंभ भी कम करता जाता है। क्योंकि वह जानता है कि आरम्भ और समारम्भ में लगने से रचेपचे रहने से दुर्गतिमें जाना पड़ता है।

मनुष्यदेह बसाती, दुर्गन्धवाली गटर के समान होने पर भी अपन को चार गतियोंमें से मनुष्य गति की ही जरूरत है। क्यों कि मोक्ष की साधना तो सर्वविरति से ही हो सकती है और मनुष्यगति सिवाय सर्वविरति धर्म की आराधना दूसरी गतियों में संभव नहीं है।

ढाई द्वीपमें रहनेवाले सूर्य और चन्द्र अस्थिर हैं। ढाई द्वीपके वाहर रहनेवाले सूर्य और चन्द्र स्थिर हैं। जम्बूद्वीप में सूर्य और चन्द्र दो दो ही हैं। अर्थात् जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं और दो चन्द्र हैं।

भुवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी पहले और दूसरे देवलोक के देव, मनुष्य की तरह भोग-विलास करते हैं, उनके बाद दो देवलोक के देव स्पर्शसे ही सुख मान लेते हैं। उसके वाद दो देवलोक के देव देवियों के दर्शन से ही तृप्ति का अनुभव करते हैं। इसके वाद दो देवलोक में

रहनेवाले देव शब्द सुनकर के ही तृप्ति का अनुभव करते हैं। और आखिरी चार देवलोक के देव तो सिर्फ इच्छा से ही सुख मानते हैं। इसलिये इनसे ऊपरके देवोंमें तो विकार हो ही नहीं सकता।

अगर अपन को सुखी होना हो तो विकारों को काबू में लेना पड़ेगा। धर्मी आत्मा को ज्यों ज्यों वीतराग शासन की आराधना होती जाती है त्यों त्यों उसके विकार भी कम होते जाते हैं। काम-भोग की इच्छा को वेद कहते हैं। पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इस तरह वेद तीन प्रकार के होते हैं।

धर्मी मनुष्यों को धम करते करते भी दुःख भोगता हुआ देख कर कुछ अज्ञानी मनुष्य धर्मको बदनाम करते हैं। क्योंकि वे धर्मको नहीं जानते धर्म से अज्ञान हैं।

वे इस बातको, इस रहस्य को नहीं जानते हैं कि धर्मी पुरुषों को धर्म करते हुए भी जो दुःख आता है वह वर्तमान धर्म करनी के फलस्वरूप नहीं आता है किन्तु वह दुःख तो पूर्वकृत पापकर्म का ही फल है। जब तक पूर्वकृत दुष्कृत्यों के उदय की समाप्ति नहीं हो जाती तब तक तो दुःख रहेगा ही। परन्तु समकिती आत्मा दुःखमें होने पर भी वीतराग प्रणीत धर्मकी प्राप्तिमें गौरव मान करके आनन्द का अनुभव करता है। मिथ्यात्वी आत्मा भोजन करते समय घरके बालक और स्त्रीको याद करता है। किन्तु उस मिथ्यात्वी को साधु अथवा साधर्मी याद नहीं आते हैं।

भावश्रावक जब बाजार में जाता है तो खाली जेब जाता है। अर्थात् साथमें एक पैसा भी नहीं ले जाता है

जिससे अगर किसी चीजको लेनेका मन हो जाय तो वह उस चीजको नहीं ले सके। परन्तु जब भावश्रावक उपाश्रय में जाता है तो पैसा लेके ही जाता है जिस से अगर रास्तेमें कोई दुःखी मिल जाय तो उसे देनेके काम आवें और उपाश्रयमें होनेवाले धार्मिक चन्देमें भी काम लगे।

धनकी प्राप्ति तो पुण्यके उदयसे ही होती है इसलिये धर्मकार्य में धनको देना ही चाहिये। धर्मकार्य में धनको लगाना ही चाहिये। दुःखी साधर्मिक को देखकर शीघ्र ही विना प्रेरणा के भी उसकी मदद करने को दौड़ जाना चाहियें। साधर्मिक वात्सल्यमें एसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे जो लोग धर्मको नहीं समझते हैं वे भी धर्मको समझने लगें और धर्मभाव को प्राप्त हो जायें।

वीतराग का सेवक जीमते जीमते जूठा नहीं छोड़ता है। थाली धोकर के पीता है। जीमते जीमते बोलता नहीं है। क्यों कि जूठे मुंह बोलने से कर्म बंधते हैं। जीमते जीमते नीचे छींटे नहीं गिरें उसकी भी सावधानी रखनी चाहिये। नीचे छींटा गिरे तो भी दंड भोगना पड़ता है। यह तो वीतराग का धर्म है। वीतरागदेव का धर्म इतर धर्मसे उत्तम है। वीतराग धर्मको माननेवाली आत्मा अन्यकी चिन्ता नहीं करती है किन्तु आत्मा की ही चिन्ता करती है। समकिती मनुष्यकी आत्मा मर करके देवगति में जाती है, नरकगति और तिर्यंचगति में नहीं जाती है।

भरतक्षेत्रमें से एक भव करके मोक्ष जाया जा सकता है। परन्तु उस प्रकारका आराधकभाव आना चाहिये। अगर मोक्षमें जानेकी इच्छा है तो कुछ न कुछ तपकी आराधना और संयम का सेवन करना ही चाहिये।

गर्भ और जन्मकी वेदना में तो हम सावधान नहीं रहे थे किन्तु मृत्यु के पहले अब तो सावधान होजाना अपने हाथकी बात है। जिसने जीवन में तप-जप नहीं किये वह मृत्युके समय समाधि नहीं प्राप्त कर सकता है।

जिसका कोई बन्धु नहीं है उसका बन्धु धर्म है। जिसका कोई नाथ-स्वामी नहीं है उसका नाथ धर्म है।

धर्म सारे संसारमें वात्सल्यभाव को भरनेवाला है। धर्मस्थान में जो शान्ति मिलती है वह शान्ति जगत के किसी भी स्थान में नह मिल सकती है।

आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रह संज्ञा ये चार संज्ञायें तो जगत के जीवोंको अनादिकाल से भूत की तरह लगी हैं। यानी भूतकी तरह पीठ पकड़े पीछे पीछे लगी हैं।

मोक्षमें इन चारमें से एक भी संज्ञा नहीं होती है।

मोक्षका ज्ञान प्राप्त करने के लिये, हे भाग्यशाली भवि जीवो, तैयार हो जाओ, यही हमारी मनःकामना है।

व्याख्यान–दूसरा

वीतराग के धर्मको प्राप्त हुई आत्मा चारों गतियों में आनन्द को नहीं मानती है, परन्तु वह तो सिर्फ मोक्ष की अभिलाषा ही करती है।

जो आत्मा गुरुकी भक्ति, क्षमा, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त के सब जीवोंके प्रति दया रखती है और प्रभु पूजा आदि धर्म करती है वह शातावेदनीय कर्म का वन्ध करती है। इसके अलावा सभी आत्मा अशाता वेदनीय कर्मका वन्ध करती हैं।

चौबीस दंडक का वर्णन सुनकर अपन को उसमें रहना नहीं पडें, दंड ना भोगना पडें एसी धर्मकी आराधना करनी पड़ेगी।

जगत में धर्मी कम हैं और पापी अधिक हैं। संसार में रहकर अपनने जैसी कमाई की होगी वैसा फल अपन को आगामी भव में प्राप्त होगा।

जो जीव पुन्य बांधे विना नये भवमें आया वह बहुत दुःखी होता है। जैसे कर्म किये होंगे वैसे ही फल भोगना होंगे। कर्मके सामने किसी की कुछ भी नहीं चल सकती है। जिस तरहसे भगवान श्री महावीर परमात्मा को कर्म भोगना पडे उसी तरह अपनको भी भोगना होंगे।

जो संसारमें भी रमता है और धर्ममें भी रमता है वह दही-दूधिया कहलाता है। जो धर्मस्थान में आकर

के धर्मकी बातें करता है और जब घरमें जाता है तब धर्मकी बातें भूलकर संसारी बातोंका रसिया बन जाता है वह उभयचंद्रा कहलाता है।

जिस तरह से गेहू में से कंकर दूर किये जाते हैं उसी तरह समकिती आत्मा अनर्थको करनेवाले अधर्मको दूर करनेवाली होती है।

मिथ्यात्वी आत्मा को संसारकी प्रवृत्ति में ही बहुत रस होता है, परन्तु धर्म में नहीं होता। जो संसार को अनर्थ करनेवाला मानता है वही धर्मी कहलाता है।

सिद्धके जीव अपनसे सात राजू ऊँचे हैं। मृत्यु के समय मरने वाले का जीव मुख अथवा चक्षुमें से चला जाय तो वह जीव देव अथवा मनुष्य गति में जन्म लेता है, अगर अधःस्थानमें से निकलता है तो वह जीव नरक गति अथवा तिर्यंचगति में जन्म लेता है और अगर शरीर के सभी भागोंमें से तदाकार होकर आत्माके प्रदेश बाहर निकलें तो उसकी आत्मा मोक्षमें जाती है।

जैनके घरमें अगर कोई मृत्यु शय्या पर पड़ा हो तो उसे सबसे पहले सगे सम्बन्धियों को नहीं बुलाकर गुरु महाराज को ही बुलाना चाहिये और प्रतिज्ञाबद्ध होना चाहिये। अपन किसीके नहीं हैं और कोई अपने नहीं हैं। व्यवहार से ही संसारी सम्बन्ध है। अपने साथ पुन्य और पाप आनेवाला है। जैन अपने को संसार का एक मुसाफिर मानता है।

गुजरात के महामन्त्री उदायन युद्ध करके पीछे पाटण आ रहे थे। रास्ते में चौमासा लग जान से वहीं छावनी (पडाव) डाल दी। एक अशुभदिन इस महामन्त्री की तबियत

बिगड़ने लगी। शरीर में क्षीणता बढ़ने लग । उनको लगा कि अब मैं बचूंगा कि नहीं? इस विचार के आने के साथ में ही दिल में एक भावना उत्पन्न हुई। लेकिन वह भावना पूरी कैसे हो? दोपहर को महामन्त्री के चारों तरफ सेवक वर्ग और असिस्टेन्ट मन्त्री बैठे थे। सभी उस महामन्त्री के स्वास्थ्य की चिन्ता में तल्लीन थे। सभी की नजर महामन्त्री की भव्य मुख मुद्रा पर थी। वहां एक आश्चर्य हुआ। महामन्त्री की आँखों में से मोती को तरह अश्रु-बिन्दु टपकने लगे। दूसरे मन्त्रियों ने पूछा हे महामन्त्री, आपको आंसू क्यों आये? अगर किसी का कुछ अपराध हो तो बोलो, हुक्म करो।

महामन्त्रीने गद्‌गद कंठ होकर कहा "हे महानुभाव, दूसरा तो कुछ नहीं किन्तु, एक अंतिम इच्छा सता रही है।

कौन सी इच्छा ?

गुरु महाराज के दर्शन करने की। क्यों कि अब इस काया का भरोसा नहीं हैं।

अच्छा महाराज, हो जायेंगे। अभी हाल साधु महात्मा की खोज करने के लिये सेवकों को रवाना करते हैं। उस तरह और भी कुछ दूसरी उपयोगी बातें करके सब खड़े हो गये। और दूसरे तम्बू में सभी अग्रणी इकट्ठे हुये। विचार विमर्श हुआ कि अब क्या करना चाहिये। अभी के अभी साधु महात्मा कहां से मिलेंगे? इतने में एक मार्ग मिला। एक वंठ जाति के आदमी को साधु का वेष पहराकर क्या करना वह सब उसको सिखा दिया और उस वेष-धारी को पास के जंगल में से छावणी की ओर रवाना किया। वेषधारी महात्माने महामन्त्री के खंड में पधारकर धर्मलाभ

दिया। मधुर आवाज कानों में पड़ते ही महामन्त्री प्रफुल्लित हुये। और शीघ्र ही विस्तर में बैठ गये। गुरु महाराजने नवकार मन्त्र सुनाया। चार शरण अंगीकार कराकर धर्मलाभ कह कर महात्मा चले गये। महामन्त्री का दिल खुश हो गया। अब कुछ भी तमन्ना नहीं रही।

दूसरे दिन गुर्जरेश्वर को समाचार भेजे गयें कि महामन्त्रीश्वर शय्यावश हैं। इसलिये राजवैद्य को शीघ्र भेजो।

समाचार मिलते ही दूसरे दिन के सुबह महामन्त्री का समग्र परिवार राजवैद्य और गुर्जरेश्वर का अंगत संदेश ले जानेवाला राजदूत वगैरह रसाला ने जल्दी प्रवास शुरू किया। एक हफ्ता के निरन्तर प्रवास के बाद सन्ध्या समय रसाला ने महामन्त्रीश्वर की छावणी में प्रवेश किया। परिवार के सभी मनुष्य तो महामन्त्रीश्वर की क्षीणकाया को देखकर रोने बैठ गये राजवैद्य ने भी उत्तम प्रकार की औषधि देने का विचार किया था, परन्तु नाडी परीक्षा करने से उनको लगा कि बचने की कोई आशा नहीं है इसलिये वे भी बहुत निराश हो गये। गुर्जरेश्वर का अंगत सन्देशा सुन कर महामन्त्री को खूब ही दुख हुआ। परन्तु अब क्या हो सकता था। स्वस्थ होते तो वह सब हो जाता आश्वासन देने के लिये राजवैद्य ने औषधोपचार चालू किया।

गुर्जरेश्वर ने सन्देशा में लिखा था कि जो ज्यादा तबियत खराब होतो जल्दी से मुझे खबर देना जिस से मिलने के लिये मैं आ सकूँ।

दूसरे दिन राजदूत को पाटण की ओर रवाना किया।

परन्तु मार्ग में खूब वर्षा होने से राजदूत को एक पांथशाला में तीन दिन तक रुकना पड़ा। चौथे दिन अविरत प्रवास करके दशवें दिन मध्याह्न में राजदूत ने पाटण राजभवन में पहुंचकर गुर्जरेश्वर को सन्देश दिया। सन्देश पढ़ने के बाद गुर्जरेश्वर ने जाने की तैयारी की। इस तरफ एक संध्या समय महामन्त्रीश्वर की तबियत बहुत बिगड़ने लगी। राजवैद्य ने खूब प्रयत्न किया मगर निष्फल गया। और रात के ग्यारह बजे महामन्त्रीश्वर की अमर आत्मा इस नश्वर शरीर का त्याग करके चली गयी। छावणी में हाहाकार मच गया।

इस तरफ साधुवेष धारक वंठ को विचार आया कि जिस वेष को गुजरात के महामन्त्रीश्वरने नमस्कार किया में अब उस वेष को कैसे छोड़ सकता हूं। बस! भावना की शुद्धि से द्रव्यवेष भावसाधुपने को प्राप्त हो गया। और द्रव्यमुनि मिटकर वह सच्चा भावमुनि हो गया। यह है जैनशासन का प्राप्त हुई अंतिम भावना का हूबहू चित्र।

भूतकाल में जैनराजा युद्ध में भी साधुवेष को साथ में रखते थे। क्यों कि अंतिम समय की भावना उस वेष को देख कर बिगड़ती नहीं थी। इसलिये साधुवेष को साथ में रखते थे।

तुम्हारे घर में साधुवेष है कि नहीं? ना जी। क्या है? गुरु महाराज के चित्र हैं? नाजी। तो राग उत्पन्न करें एसे नटनटियों के चित्र हैं? हांजी।

फिर भी तुम श्रावक !!!

भाइयो विचार करो।

अकर्मभूमि के क्षेत्रों में दश प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं। जो मनोवांछित इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। पौद्‌गलिक सुख देते हैं। उन क्षेत्रों में अल्प कषायवाले जीव युगलिया तरीके उत्पन्न होते हैं। वे एक पल्योपम से लेकर-अधिक से अधिक तीन पल्योपम आयुष्य के होते हैं।

मोक्षनगर में जाने का दरवाजा सम्यग्दर्शन है। समकिती आत्मा को संसार के काम करने पड़ते हैं इसलिये करता है। लेकिन मनसे नहीं। उसका मन तो देव, गुरु और धर्म में ही होता है।

जिसने घर में बड़ों की आज्ञा मानी हो, यहां गुरु महाराज की आज्ञा पाली हो, उनकी सेवा करी हो और जिसके हाथ में शास्त्र की चाबी हो उसे ही गीतार्थ कहते हैं। एसे गीतार्थ ही व्याख्यान देते हैं दूसरे नहीं।

भवरूपी बीज को उत्पन्न करनेवाले राग और द्वेष जिनमें नहीं हैं एसे महापुरुषों को नमस्कार हो।

समकिती नम्र भी होता है और अक्कड़ भी होता है। जहां गुण दिखाते हैं वहां नम्र और जहां गुण नहीं दिखाते हैं वहां अक्कड़।

सामायिक में संसार की बातें नहीं हो सकतीं हैं। अगर सामयिक में संसार की बातें करते हैं तो दोष लगता है। परन्तु तुम गुरु महाराज के पास आओ और समझो। यानी यह तभी हो सकता है जब तुम गुरु महाराज के पास आकर समझो।

यह सब समझने के लिये तैयार हो जाओ और आत्मा का कल्याण सिद्ध करो यही अभिलाषा।

卐

व्याख्यान–तीसरा

श्रमण भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि जगत के जीव चार प्रकार के होते–हैं :-(१) आत्मारंभी (२) परारंभी (३) उभयारंभी (४) अनारंभी

जो खुद आरंभ-समारंभ करते हैं उनको आत्मारंभी कहते हैं। जो दूसरों के पास से आरंभ और समारंभ कराते हैं उनको परारंभी कहते हैं।

जो खुद करते हैं और दूसरों से भी कराते हैं उनको उभयारंभी कहते हैं।

जो खुद भी नहीं करते और दूसरों के पास भी नहीं कराते उनको अनारंभी कहते हैं।

जगत के वन्धन ऐसे मुक्त से साधु भगवंत ही अनारंभी कहलाते हैं। क्यों कि खुद भी आरंभ समारंभ करते नहीं और दूसरों से भी नहीं कराते इसी लिये साधु भगवंत अनारंभी कहलाते हैं।

अस्सी वर्ष की वुढिया जिसके दांत गिर गये हों अगर वह दही का भोजन करे तो जरा भी आवाज नहीं आती है।

इसी तरह से अपन को प्रातः काल की क्रियायें करना हैं। अगर आवाज हो और उस आवाज से जागकर अपने पडोसी भी संसार की क्रियायें करने लगें तो उसका

अपन को पाप लगता है। इस लिये शान्ति से क्रियायें करना चाहिये।

संसार के अज्ञानी जीव अपनी चिन्ता नहीं करके दूसरों के दोष देखने में आनन्द मानते हैं।

वीतराग के धर्म पालन करने वाली आत्मा स्वयं आरंभ-समारंभ नहीं करती है और दूसरे के पास कराती भी नहीं है और जो करते हैं उनको अच्छा भी नहीं मानती है।

सिर्फ जैनकुल में जन्म लेने से नाम श्रावक कहलाते हैं। छोटे वच्चे द्रव्य श्रावक कहलाते हैं। और श्रावक के बारह व्रतों में से जो थोड़े से भी व्रत पालते हैं वे भाव श्रावक कहलाते हैं।

श्रावक सात क्षेत्रों में धन का सदुपयोग करते हैं। वे अपना यश फैले इसके लिये धन का उपयोग नहीं करते किन्तु धन की मूर्च्छा उतारने के लिये धन का उपयोग करते हैं।

गृहस्थ तपाये हुये लोहे के गोला के समान होते हैं। क्यों कि जैसे तपाया हुआ गोला जिधर नमाना चाहो उधर नम जाता है। उसी तरह गृहस्थ के संसारी काम भी छहों कायों के जीवों की हिंसा करने वाले होते हैं। धर्मकथा के सिवाय गृहस्थ के साथ अधिक सम्बन्ध रखने वाला साधु भी दोष का भागीदार होता है।

साधु संसार की रामायण करने वाले नहीं होते हैं। साधु में दो गुण होते हैं। "भीमकान्तः साधुः" अर्थात् साधु की एक आंख में भयंकरता होती है। और दूसरी

आंख में मनोहरता होती है। शासन के अनुरागी आत्माओं के लिये मनोहरता होती है और शासन के द्वेषी आत्माओं के लिये भयंकरता होती है।

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं :-(१) धर्मी (२) अधर्मी (३) धर्म के विरोधी। धर्मी की भक्ति करनी चाहिये। अधर्मी पर दया रखनी चाहिये। और धर्म विरोधी की उपेक्षा करनी चाहिये।

सुपात्र तीन प्रकार के होते हैं। (१) उत्कृष्ट सुपात्र (२) मध्यम सुपात्र (३) जघन्य सुपात्र। सुसाधु उत्कृष्ट सुपात्र कहलाते हैं। बारह व्रतों को धारण करनेवाले श्रावक मध्यम सुपात्र कहलाते हैं। और बारह व्रतों में से एकाद को धारण करनेवाले और वीतराग शासन में दृढ श्रद्धा करनेवाले रागी श्रावक जघन्य सुपात्र कहलाते हैं।

संसारी आत्माओं के लगे हुये आठ कर्मरूपी रोग को दूर करने के लिये जिनेश्वर प्ररूपित धर्म ही रामबाण औषधि है।

गुरु और गोर में बहुत फर्क है। गोर तो दोनों को लग्न से यानी शादी से इकट्ठा करता है और गुरु महाराज तो दोनों को वैरागी बनाने वाले होते हैं।

अपने जीव को अनन्तकाल तक परिभ्रमण करानेवाले आरंभ-समारंभ हैं।

जो आरंभ-समारंभ का त्याग करते हैं वे मोक्ष में जाते हैं। अगर मोक्षलोक में नहं जा सकें तो देवलोक में तो अवश्य ही जाते हैं। इसलिये जीवको आरंभ-

समारंभ खटकना चाहिये । अनारंभी बने विना मोक्ष नहीं मिल सकता है । और जब तक मोक्ष नहीं मिले तब तक जन्म मरण के फेरे नहीं टल सकते हैं ।

सामायिक के चार प्रकार हैं :-(१) समकित सामायिक (२) श्रुत सामायिक (३) देशविरति सामायिक (४) सर्व विरति सामायिक ।

नारकी के जीव अनारंभी नहीं कहे जा सकते हैं वे आतमारंभी कहे जाते हैं क्यों कि अविरति धर हैं ।

पच्चक्खाण के चार भांगा हैं । (१) देनेवाला और लेनेवाला दोनो जानने वाले हों तो वह प्रथम शुद्ध भांगा है । २) देनेवाला जानकार हो और लेनेवाला अनजान हो तो वह दूसरा भांगा है । (३) लेनेवाला जानकार हो और देनेवाला अनजान हो तो वह तीसरा भांगा है । (४) देनेवाला और लेनेवाला दोनो अगर अनजान हों तो वह चौथा अशुद्ध भांगा है ।

सूत्रों का ज्ञान हरेक को करना चाहिये । जिससे धर्म क्रिया करते समय मन शुभ ध्यान में मशगूल रहे ।

देवपना की अपेक्षा मनुष्य पना उत्तम कहलाता है । क्योंकि देवलोक में सर्व विरति की आराधना नहीं हो सकती है । और मनुष्यपने में हो सकती है । सात क्षेत्रों धन खर्च करनेवाला अगर साधु बनता है तो वह उत्तम कहलाता है ।

चौवीस दंडक में परिभ्रमण करने वाले को कर्मराजा डंडा मार रहे हैं । इसलिये चौवीस दंडक कहलाते हैं ।

राजसत्ता की अपेक्षा कर्मसत्ता अधिक भयंकर होती है। संसार के वन्धन से वंधे हुये अपन अनन्तकाल से संसार में भटक रहे हैं। फिर भी अपन को संसार से वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है। धर्म के कामों में लक्ष्मी को उपयोग करने को कहा जाता है तो "ना" कहते हो, केवल संसार के कामों में ही लक्ष्मी को वापरने का उपयोग करने का सीखे हो।

संसारी कामों में धन खर्च करने की प्रशंसा साधु महात्मा नहीं करते हैं। अगर साधु महात्मा से धन खर्च करने की प्रशंसा कराना हो तो धनको धर्म में खर्च करो। धर्म की लगनी लगती है तभी धर्म में धन खर्च होता है। धर्म के वड़े वड़े अनुष्ठान कराते कराते अगर एक आत्मा भी सर्व विरति धारक वन जाता है तो हमारी मेहनत सफल है।

केवलज्ञानी रात को भी विहार कर सकता है। मुनिसुव्रत भगवानने एक रात में साठ योजन विहार किया था। जिनेश्वर कथित सव वातें मानो परन्तु एक वात नहीं मानो तो भी मिथ्यात्व लगता है।

असत्य चार कारणों से वोला जाता है। (१) क्रोधसे (२) लोभसे (३) भयसे (४) हास्य से। इन चारों कारणों से जो सर्वथा मुक्त हैं वे वीतराग कहलाते है। तत्वातत्व की सच्ची समझ तो वीतराग वचन से ही आ सकती है। इसलिये वीतराग सर्वज्ञ कथित धर्म ही सुधर्म है। ये हैया में से निकलना नहीं चाहिये। इतना भी जो समझे उसका वेडा पार हो गया समझ लो।

वृद्ध हो जाय वहां तक भी वारमें धार्मिक क्रिया करते

करते कलह वारमें कलह बोला करे और वात वातमें क्रोध क्लेश करे तो वह संसार को बढाता है ।

धार्मिक क्रिया विधि पूर्वक करनी चाहिये । विधि के विना जो क्रिया की जाती है वह द्रव्य क्रिया कहलाती है । खड़े खड़े जो क्रियायें की जाती हैं वे जिनमुद्रा में होती हैं । खड़े खड़े होकर की जानेवाली क्रियाओं को खड़े होकर ही करनी चाहिये । वैठे वैठे तो वृद्ध और वालक करते हैं ।

जैनशासन को प्राप्त हुये पुण्यशालियों को अपने तन, मन और धन जैनशासन के चरणों में धर करके ही आनन्द मानना चाहिये ।

परिग्रह ये पांचवां पापस्थानक है । सभी अठारह पापस्थानक छोड़ना चाहिये । वीतराग का धर्म जिसके रोम रोम में वसा हो वही समकिती कहलाता है ।

आरंभ-समारंभ के ऊपर अभाव (अनासक्ति) लाने वाला ज्ञान और धर्म है ।

श्रुतज्ञान यह वीतराग प्रभु के शासन में दीपक समान है । श्रुतज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करो यही मंगल कामना है ।

व्याख्यान—चौथा

भावदयासागर श्री महावीर परमात्माने फरमाया है कि—संसार का अभाव करनेवाले-ज्ञान, दर्शन और चारित्र हैं।

जिनमें ज्ञान नहीं है वे पाप और पुण्य को भी नहीं जान सकते हैं। करोड़ों वर्षोंमें अज्ञानी जितने—कर्म खिपाता है उतने कर्म ज्ञानी जीव श्वासोच्छ्वास मात्र में खिपा सकता है।

मन भूतके समान है। वन्दर की तरह इधर उधर भटकता फिरता है। भटकते हुए मनको वशमें करने के लिये हमेशा प्रवृत्ति करते रहना चाहिये। तभी मन वशमें रह सकता है।

एक शेठने भूतकी साधना की। भूत वशमें होगया। शेठ जो भी काम करने को कहता था भूत वे सभी काम करता था। भूत तो साधना से वंधा हुआ था इस लिये जा भी नहीं सकता था और बेकार भी वैठ नहीं सकता था। एक समय बेकारमें वैठे हुए उस भूतने शेठसे कहा कि हे शेठ काम वताओ नहीं तो मैं तुमको खाता हूँ। शेठ घबराये और चिन्ता करने लगे। लेकिन शेठजी होशियार थे, वुद्धिशाली थे। शेठने एक युक्ति खोज निकाली। शेठने भूतसे कहा जंगलमें जा और खम्भे के समान एक लकड़ा काटके ले आ। भूत भी लकड़े का एक खम्भा लाकर के सामने खड़ा हो गया। फिर भूत

बोला कि अब क्या करूँ? गड्डा खोदकर इस लकड़े को गड्डे में रख दे। उसके बाद जबतक मैं तुझे दूसरा काम नहीं बताऊँ तब तक इस खम्भे के ऊपर चढ़ और उतर। भूत समझ गया कि यह तो मूर्ख बनाने की बात है। शेठकी आज्ञा लेकर वह चला गया। इसी तरह मनको भी स्थिर करने के लिये शुभ कामोंमें लगाओं, जिस से मन इधर-उधर भटकने से रुक जाय और अनर्थ कर्ता नहीं बनें।

ज्ञानीको और दानवीर को शास्त्रकारोंने कल्पवृक्ष के समान कहा है।

भगवान ने जो किया है वह नहीं करना है किन्तु भगवानने जो कहा है वही करना है। शेठ जो कहता है वही नौकर को करना है लेकिन शेठ जो करता है वह नौकर को नहीं करना है, अगर नौकर भी गादीके ऊपर बैठ कर हुक्म करने लगे तो नौकर को नोकरीमें से छूटा होना पड़े।

एक हजार वर्ष तक मासखमण के पारणा के दिन २१ वक्त धोए हुए चावल का पारणा करके फिरसे मास खमण की तपश्चर्या करनेवाला भी तामली तापस था, फिर सम्यक्त्व के बिना तपश्चर्या की कुछ भी कीमत-कदर नहीं होती है।

समग्र संसार चक्रमें क्षायिक समकित तो जीव को एकही दफे आता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा समकित मोहनीय मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय इस दर्शनसप्तक का सम्पूर्ण क्षय होनेसे प्राप्त हुआ समकित क्षायिक समकित कहलाता है।

जब तत्व के विचार आत्मा के साथ चलते हैं तब कर्मकी निर्जरा होती है।

साधु आहार करता है फिर भी तपस्वी कहलाता है। क्यों कि साधु पेट भरनेके लिये आहार नहीं करता किन्तु संयम की आराधना के लिये करता है। तप करते हुए केवलज्ञान होता है और किसीको आहार करते करते भी केवलज्ञान हो जाता है। जैसे करगडु मुनि गतभव में बांधे हुए अन्तराय कर्म के उदय से इस भवमें कुछ भी तपश्चर्या कर सकते नहीं थे, और संवत्सरी के दिन भी "मैं खा रहा हूँ" ऐसा पश्चात्ताप करते करते आहार करने पर भी उनको केवलज्ञान हो गया था।

आत्मा विचार करे कि संसार छोड़ने जैसा है, लेकिन छोड़ नहीं सकती है। शादी करे किन्तु शादी करके भी प्रसन्न न हो। उदासीन वृत्ति से लग्न करे और कब ये भोगावली कर्म टूटे और मैं संयमी बनूं ऐसी भावना से औषधि की पुड़िया की तरह भोग भोगे ऐसे जीवको अल्प कर्म बंधते हैं।

गुणसागर ने चौरीमें आठ कन्याओं के साथ पाणि ग्रहण किया। फिर भी शादी करते करते विचार करते हैं कि माता-पिताके अति आग्रहके कारण मैं शादी करने को तो बैठा हूं, परंतु आठों को बोध देकर के इनको भी तारुं। इस प्रकार का ध्यान करते करते गुणसागर क्षपक श्रेणी चढते हैं और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। परभवमें आराधना की थी इसी लिये जल्दी से मोक्ष चले गये। इसी तरहसे अगर अपन भी सुन्दर आराधना करें तो भवान्तर में मोक्ष मिल सकता है।

आचारांग सूत्र में सूत्रकार महर्षि फरमाते हैं कि संसारी जीवोंको ज्यों ज्यों धन मिलता जाता है त्यों त्यों लोभ बढ़ता जाता है। संतोषी कम और लोभी अधिक। संसारी कामोंमें धन खर्च करनेवाले ज्यादा होते हैं और धर्मके कामों में धन खर्च करनेवाले कम होते हैं।

पर्व तिथियोंमें अगर खाना पड़े तो राजी होकर नहीं खाना चाहिये किन्तु उदास होकर ही खाना चाहिये।

पंचपर्वी अर्थात् दो चौदस, दो आठें और सुदी पांचम (सुदी पंचमी) इन पांच तिथियों में यथाशक्ति तप करना चाहिये। उस दिन खांडना कूटना, कपड़ा धोना आदि पाप-प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए। इस पंचपर्वी में संयम पालना चाहिये।

संसार का सुख भी धर्मकी मेहरबानी से मिलता है। तुम्हें जितना प्रेम धनसे है, अगर उससे अधिक प्रेम धर्म से हो तो कितना अच्छा हो। फिर भी उतना तो है ही? इसमें भी कुछ गड़बड़ हो तो अबसे समझ लेना कि धर्म के ऊपर जितना प्रेम करना है उतना प्रेम और किसी पर नहीं करना है। अरे! धर्मको गँवा करके तो शरीर के खोखे पर भी प्रेम नहीं करना है।

कर्म किसी की शर्म रखता नहीं है। कर्म किसी को छोड़ता नहीं है। उदय के समय वह अपना काम करके ही शान्त होता है और खिरता है।

हृदय का राग तो देव, गुरु और धर्म के ऊपर ही रखना। घर, कुटुम्ब और परिवार ऊपर तो बाहर का ही राग रखना।

वाग्भट्ट मन्त्री, शत्रुंजय का उद्धार करने के लिये पालीताणा आते हैं। इनको किसीने बुलाया नहीं था। किन्तु आनेकी खबर मिलते ही सब व्यापारी इकट्ठे हो गये और मन्त्रीश्वर को विनंती करते हैं कि हमको भी लाभ मिलना चाहियें। सभीको लाभ देनेकी योजना तैयार की गई। इस बातकी खबर भीमाशेठ को हुई। वह पहले तो सुखी थे किन्तु अन्तराय कर्मके उदयसे पीछे से धनविहीन हो गये। फिर भी उनमें श्रद्धा और समता अजीब ही थी। फटे हुए कपड़े पहनकर वे भी वहाँ आते हैं। वाग्भट्ट मन्त्री की नजर भीमा पर पड़ी और आकृति के ऊपर से भीमा उनको भावनाशील मालूम हुआ। भीमा शेठ को आगे बुलाकर के मन्त्रीश्वर पूछते हैं कि शेठ क्या भावना है? हां महाराज! ज्यादा तो नहीं किन्तु मेरे घरकी सर्वस्व मूडीरूप ये सात द्रमक हैं, उनको लेनेकी कृपा करो। इस प्रकार भीमा शेठने वाग्भट्ट से विनती की। मन्त्री वह स्वीकार करते हैं और सबसे पहला खाता (चोपडा) में भीमा शेठका नाम लिखाते हैं, इससे दूसरे शेठोंको दुःख होता है तब मन्त्रीश्वर उनको समझाते हैं कि देखो, अपनने अपनी मूडीमें से एकसौवाँ भाग भी नहीं दिया किन्तु भीमाशेठने तो उनकी सभी पूँजी दे दी। इस बातसे सभी समझ गये। अब मन्त्रीश्वर भीमा शेठको उपहार में एक हार देने लगते हैं, परन्तु वह भीमा शेठ स्वीकार नहीं करते और बोले कि दान तो मैंने देनेके लिये किया है लेनेके लिये नहीं। इधर घरमें उनकी पत्नी कलहप्रिय थी, इसलिये भीमा शेठ विचार करते हैं कि आज मैं खाली हाथ घर जाऊँगा तो जरूर झगड़ा होगा, लेकिन क्या हो सकता है। दानका ऐसा सुवर्ण अवसर फिर नहीं मिलने

वाला था। ऐसा विचार करते करते भीमा शेठ घरकी ओर चले। इधर उसके घर उसकी पत्नी के स्वभाव में एकाएक परिवर्तन आया। पत्नी घर पर बैठी बैठी विचार करती है कि पतिदेव तीर्थोद्धार में कुछ दान देके आवें तो ठीक हो।

पतिके घर आनेका समय जानकर शेठानी भीमापति को राह देखती हुई घरके ओटला पर खड़ी हो गई। मुख मलकाती है, दूरसे आते हुए भीमा शेठ विचार करते हैं कि आज तो कुछ परिवर्तन लगता है। जरूर ही शासन देवने सद्बुद्धिसे प्रेरित किया है। भीमा शेठने घर आकर के पत्नीको सब बात कह दी। पत्नी भी प्रसन्न हो गई। फिर भीमा शेठकी शेठानी शेठ भीमाजी से कहती है कि हे स्वामीनाथ, आज भैंसको बांधनेका खीला (खूंटा) निकल गया है, इस लिये फिरसे खीला ठोको। ज्योंही भीमा शेठने खीला ठोकने के लिये खाडा (गड्ढा) खोदा कि उनने सोनेका चरू देखा। पति-पत्नी आनन्दमग्न हो गये। पत्नी पतिको कहती है कि हे प्राणेश, धर्मप्रताप से मिले हुये इस धनको तीर्थोद्धार के काममें देकर आवो। भीमा शेठने भी जल्दीसे जाकरके मन्त्रीसे ये धन स्वीकार करने की प्रार्थना की। तब मन्त्रीश्वर कहने लगे कि हे महानुभाव, यह धन तो तुम्हारे भाग्यसे मिला है, इसलिये हम इस धनको नहीं ले सकते हैं। अन्तमें उसकी योग्य व्यवस्था होती है। कहने का मतलब यह है कि धर्ममार्गमें लक्ष्मी का उपयोग करने से वह कभी घटती नहीं है किन्तु बढती ही रहती है।

जबतक समकित नहीं आता है तब तक पूर्व पढने पर भी यह जीव अज्ञानी रहता है। अभवी जीव बहुत

ही ज्ञान प्राप्त करे किन्तु अगर सम्यग्दर्शन नहीं हो तो मोक्ष नहीं मिल सकता है। आश्रव भवका कारण है और संवर मोक्षका कारण है।

मिथ्यात्व दो प्रकारका है। (१) लौकिक (२) और लोकोत्तर। संसारके लौकिक पर्वोंको धर्मपर्व तरीके मानना ये लौकिक मिथ्यात्व है और लोकोत्तर पर्व को भौतिक सुखकी इच्छासे माना जाय तो वह लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

और (१) अभिग्रहीत (२) अनभिग्रहीत (३) सांशयिक (४) अभिनिवेशिक और (५) अनाभोगी इस प्रकार भी पांच प्रकार का मिथ्यात्व है।

भगवंत की पूजा करके देवदेवी की पूजा करे और फिर संसारके सुखकी मांग करे तो वह लोकोत्तर मिथ्यात्व है। इसीका नाम लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

एक शेठ खूब धनवान थे। परम श्रद्धाशील थे। कालान्तर में आधी रातके समय लक्ष्मीं देवी आकर के कहती है कि हे शेठ, मैं सात दिनमें जानेवाली हूँ। तब शेठजी बोले कि तू तो सातवें दिन जाने को कहती है परन्तु मैं तो तुझे छट्ठे दिन ही निकाल दूँगा। दूसरे दिन के मंगलप्रभात से शेठने सात क्षेत्रोंमें लक्ष्मी को उदारता से देना शुरू कर दिया। सात दिन पूरे होने के पहले तो पूरी लक्ष्मी वापर दी। अब सातवीं रातको शेठ कंथा पर सो रहे थे। शेठजी भरनिद्रा में सो रहे थे तब लक्ष्मी जगा करके कहती है कि शेठ, अब मैं जानेवाली नहीं हूं। आपके यहां ही फिरसे आऊंगी। तब शेठजी कहते हैं कि तेरा मेरे यहां कुछ भी काम नहीं है, क्योंकि मैं तो कल दीक्षा लेने वाला हूं। यह है पुन्य का प्रभाव।

वीतराग का सेवक दोनों प्रकार के मिथ्यात्व का त्यागी होता है। अठारह पापस्थानकों में से सत्रह पाप स्थानकों का बाप मिथ्यात्व है। संसारी सुखको सच्चा सुख मानना मिथ्यात्व है। समकिती का धन देव गुरु धर्मका धन है। धन नाशवन्त है, पुण्य पुरा होने पर ये चला जानेवाला है। इसलिये धनको धर्मकार्य में वापरना चाहिये। अर्थात् धनका उपयोग धर्मकार्यमें करना चाहिये। सिर्फ संसारी कामोंमें ही धनका उपयोग करोगे तो कर्म ही बंधनेवाले हैं, परन्तु धर्मकार्यों में धनका उपयोग करने से यश भी बढ़ेगा।

समकिती आत्मा घरमें आई हुई नववधू से कहती है कि तुम संसार के काम कम करोगी तो चलेगी परंतु धर्मकी साधना तुम्हें पूरेपूरी करना है। मेरी आज्ञा नहीं मानोगी तो चलेगा किन्तु वीतराग की आज्ञा नहीं मानो तो नहीं चलेगा।

एसी बात कौन कह सकता है? जिसके रोम रोममें वीतराग का धर्म व्याप्त हो वही कह सकता है। घरमें भी सुखका अनुभव कब हो सकता है? पूरे परिवार में धर्मका निवास हो तभी। पापका पच्चक्खाण नहीं करना ही अविरति है।

पूरे भव में नये आयुष्य का एक ही दफे वन्द होता है। चालू उदयमें रहते आयुष्य के दो भाग वीतने के वाद अथवा मृत्युकाल के अन्तर्मुहूर्त पहले नये आयुष्य का वन्ध पडता है। "प्राये सुरगति साधे पर्वना दिवसे रे" इसलिये पर्व के दिन पापारंभ से अलग रहकर धर्माराधन में विशेष प्रवृत्ति वान वना रहना चाहिये।

अति राग पूर्वक किये गये आश्रव के सेवन से गाढ और दीर्घ स्थिति प्रमाण कर्मबन्धन होता है।

संसार में कोई किसीका नहीं है। एक धर्म ही अपना है। इसी लिये धर्म पहले और घर पीछे। अपने माता पिता तीर्थ के समान हैं। उत्तम पुरुष अपने माँबाप की सेवा हमेशा करते रहते ही हैं।

पुण्य मन्द पड़ने से आया हुआ सुख कभी भी टिक सकता नहीं है। इसलिये धर्माराधना द्वारा-पुण्य के भागीदार बनो यही शुभ अभिलाषा।

व्याख्यान—पांचवाँ

भगवान श्री महावीर देव फरमाते हैं कि मोक्षाभिलाषी को मिथ्यात्व का त्याग करना ही पड़ेगा।

आश्रव के कारण जीव संसार में भटकते फिरते हैं। जो आत्मा संवर को करती है वही मोक्ष प्राप्त कर सकती है।

अज्ञानी जीव कदम कदम पर अनर्थ दंड का सेवन करते हैं। जिससे पाप का बन्ध होता है। राजकथा, स्त्रीकथा, देशकथा और भोजनकथा इन चार विकथाओं को करने से पुण्यरूपी धन नाश हो जाता है। वस्तुस्वरूप के निरूपण के अनुसंधान में कही गई राजा, स्त्री, देश और भोजन के वर्णन की हकीकत अनर्थ दंड नहीं कहलाती है। विकथा के रूपमें जो हकीकत कही जाती है वही अनर्थ दंड है। साधु-धर्मदेशना के समय सभा देखकर हरेक रस की बात करता है परन्तु अन्तमें तो वैराग्य रसका ही पोषण करता है।

मायावी प्रपंची जीव स्त्रीवेद को पाते हैं। मल्लिनाथ भगवान के जीवने पूर्व भवमें मित्रों के साथ माया की थी परन्तु तप करने से तीर्थंकर होने पर भी स्त्री के अवतार में जन्म लिया। अत्यंत पाप की राशि इकट्ठी होती है तभी स्त्री का अवतार मिलता है। तिर्यञ्चों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां तीन गुनी हैं। देवजाति में बत्तीस गुनी और मनुष्य जाति में सत्ताईस गुनी हैं।

जिस मनुष्य के मनमें तो कुछ हो वर्तन में कुछ दूसरा ही हो उसे माया प्रपंच कहते हैं। पुरुषों की काम वेदना घास की अग्नि के समान है। जिस प्रकार घास तुरन्त ही जलकर शान्त हो जाता है उसी प्रकार पुरुष की काम वेदना जल्दी शान्त हो जाती है। स्त्री की कामवेदना बकरी की लेंडी की अग्नि के समान होती है। और नपुंसक की कामवेदना नगरदाह के समान होती है।

परम सुखकी इच्छा हो तो जीवन में समता रखना सीख। जीवन में समता लाने के लिये मौन आवश्यक है। मौन में जो रहता है उसे मुनि कहते हैं। धर्मोपदेश के सिवाय व्यर्थ वात चीत में मुनि समय का दुरुपयोग नहीं करता है।

गुप्त दान की अपेक्षा कीर्ति दान करने वाले दुनिया में वहुत हैं। अपने द्वारा किये गये दान को ज्यादा प्रसिद्धि में लाने की भावना वाले दान बांधे गये पुन्य को कीर्ति में बांट देते हैं। और वाह वाह कहलाने के रास्ते से हवा हवा के रूपमें उड़ा देते हैं। धर्म कार्य में धन शक्ति प्रमाणे खर्च करना चाहिये। परन्तु शक्ति को छिपाना नहीं चाहिये। अगर घर का मालिक घर के सभी सदस्यों को जिमा कर फिर जीमने की भावना वाला बने तो घर के सभी मनुष्य भी मालिक को पहले जिमाने की भावना वाले बन जाते हैं।

जिनको पहनने के लिये पूरे कपड़े भी नहीं मिलते हों और एक समय का भोजन भी महा मुश्केली से मिलता हो एसे मनुष्य दुनिया में बहुत हैं। जब कि साधु महाराज को उसकी कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती है। उनकी

चिन्ता तो उनका संयम ही करता है। संयम हरेक सामग्री की अनुकूलता कर देता है। फिर भी आश्चर्य है कि एक टुकड़ा रोटी की भीख मागनेवाले भिखारी को संयम की बात अच्छी नहीं लगती यह मोहनीय कर्म की प्रबलता ही है।

इच्छा के विना सहन किये गये दुख में अकाम निर्जरा होती है। और इच्छा सहित समभाव से सहन किये गये दुखमें जो निर्जरा होती है वह सकाम निर्जरा है। निर्जरा का मतलब है कर्म का खिर जाना, झर जाना और निर्जरित हो जाना। अकाम निर्जरा में निर्जरा कम और आवक अधिक। सकाम निर्जरा में कर्मों के जाने का प्रमाण अधिक होता है। इच्छा सहित परन्तु मिथ्यात्व भाव से सहन किये गये दुखमें जो निर्जरा होती है वह निर्जरा भी अकाम निर्जरा है। इच्छा के विना जो ब्रह्मचर्य का पालन होता है वहां जो निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते है। एक समय के संभोग में नौलाख पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा होती है। लोच कराना बाह्य तप है। बहुत से श्रावक भी अभ्यास के लिये लोच कराते हैं।

साधु और श्रावक को खुले शरीर से ही प्रतिक्रमण करना चाहिये। साध्वीजी को खुले सिर प्रतिक्रमण करना चाहिये।

जो आदमी शक्ति होने पर भी बैठे बैठे ही क्रिया करता है और ज्यों त्यों क्रिया करता है तो क्रिया का अनादर होता है। और क्रिया का अनादर करने से कर्म-बन्ध होता है।

स्नान तो काम का अंग है। इसीलिये साधु को तो

स्नान नहीं करना चाहिये। भावश्रावक को जिनपूजा और लौकिक कारण के सिवाय स्नान नहीं करना चाहिये। पानी के एक बिन्दु में भी असंख्यात त्रस जीव होते हैं। इसी लिये श्रावक को पानी का उपयोग घी की तरह करना चाहिये। पानी को बिना गाले ज्यों त्यों इधर उधर नहीं ढोलना चाहिये।

धर्मी मनुष्य को घर के मनुष्यों से कहना चाहिये कि जब मैं मरूं तब तुम नहीं रोना। और जब तुममें से कोई मरेगा तो मैं भी नही रोऊंगा।

जब अस्सी वर्षका एक वृद्ध बीमार होता है तब घर के मनुष्य कहते हैं कि या तो ये अच्छा हो जाय अथवा चला जाय तो ठीक। और जब वह वृद्ध मनुष्य मर जाता है तो घरके मनुष्य रोनेका ढोंग करते हैं। उनके दिल में जरा भी दुख नहीं होता है। परन्तु लोगों को दिखाने के लिये रोते हैं। घर में कोई मर गया हो तब गाँव में स्वामी वात्सल्य में शोक के बहाने जीमने को नहीं जाते हैं। किन्तु घर मूँगकी दाल के हलुवा की कटोरी अगर कोई भेजे तो घर के कोने में बैठ कर खा लेने में शोक नहीं नडता है। बोलो, यह सच्चा शोक कि लोगों को दिखाने का शोक?

रावण की सोलह हजार रानियां रावण की मृत्यु के दिन ही केवली भगवंत के पास जिनवाणी सुनती हैं और वैराग्य से युक्त होकर दीक्षा लेती हैं। यह जैन शासन की बलिहारी है।

आज अगर कोई इस तरह से दीक्षा ले ले तो तुम क्या करो? टीका, निन्दा अथवा प्रशंसा? साहेब, टीका

समालोचना करेंगे । इस तरहसे तो कहीं दीक्षा ली जाती है । मृत्यु होने के दिन ही कहीं दीक्षा ली जाती है? व्यवहार भी देखना चाहिये, लेकिन भाग्यशालीयो, यह सब व्यवहार खोटा है। इस तरहके व्यवहार छोड़े जायेंगे तभी आराधना होगी । शोक पालनेका व्यवहार तो खाने पीने और मौजमजा उड़ानेमें संभालना चाहिये, तप अथवा त्यागमें नहीं । यह बात अगर समझ में आती है तभी धर्मकी समझ आ गई एसा माना जा सकता है।

जगत के जीव अपने कर्म के हिसाब से सुख दुःख पाते हैं । कर्मबन्धन के अमुक काल बीत जाने के बाद कर्म उदयमें आते हैं । बन्ध होनेके बाद और उदयकाल के पहले के कालको आबाधाकाल कहते हैं ।

अज्ञानी, कर्मबन्ध के समय ख्याल नहीं करते उदय-काल में रोना रोते हैं, कंगाल बनते हैं । लेकिन ज्ञानी पुरुष उदयकाल को नहीं प्राप्त हुये कर्म को भी उदीरणा स्वरूप में उदय में लाकर के हर्षोल्लास पूर्वक उन कर्मों को बंद कर त्याग करके उनका अन्त लादेते हैं । मतलब कि उन कर्मोका नाश कर डालते हैं ।

इस जगत में कोई किसी को सुख अथवा दुख देता नहीं है । सुख दुख की प्राप्ति तो अपने अपने कर्मों के आधीन है । दूसरे तो सिर्फ निमित्त हैं । एसा समझ करके ज्ञानी पुरुष दुखप्राप्ति के निमित्तों के प्रति द्वेष नहीं करते किन्तु अपने द्वारा बांधे हुये कर्म के ऊपर द्वेष करते हैं।

किसी भी कार्य की उत्पत्ति काल स्वभाव, पुरुषार्थ तथा पूर्वकृत और नियति इन पांच समवायकारणों के मिलने से होती है। फिर भी अगर जीवको कुछ करना

है तो वह पुरुषार्थ ही है। भाग्यके भरोसे बैठकर पुरुषार्थ रहित बनकर रहनेका उपदेश जैन सिद्धान्त में नहीं है। व्यवहार के कामोंमें भवितव्यता के भरोसे नहीं बैठ करके पुरुषार्थ करना है। घरबार छोड़कर के दूर दूर देशावर कमाने के लिये जाना है। लेकिन धर्मकार्य करने में भवितव्यता के उपादान का बहाना लेकर बैठ करके उपादान की बातें करना है इसका नाम दंभ नहीं तो दूसरा क्या कहा जा सकता है? पांच समवाय कारणोंमें से एकका भी अपलाप करनेवाला मिथ्यात्वी कहलाता है।

महान पुण्य का उदय होता है तभी आर्य देश, जैन कुल में जन्म, वीतराग भाषित धर्म और गीतार्थ गुरु का योग मिलता है। जहां धर्मकी आराधना तपश्चर्या और सुसंस्कारों का पोषण मिलता है।

समकिती आत्मा सुखमें छलकाता नहीं है और दुख में घबराता नहीं है। भव में आनन्द माननेवाला भवाभिनन्दी कहलाता है।

अनासिका नामके आचार्य महाराज तुम्बिका नदी को पार कर रहे थे। तब पूर्वभव का वैरी पसा कोई देव आकर के आचार्य महाराज को भाला से घायल कर देता है। उस समय भी आचार्य महाराज विचार करते हैं कि मेरे शरीर में से निकलता हुआ खून अगर पानी में गिरेगा तो पानी के एकेन्द्रियादि जीव मर जायेंगे। इन आचार्य महाराज को अपने शरीर की पीडा की परवाह नहीं थी किन्तु ये तो आत्मा के पुजारी थे।

समकिती आत्मा संसार में रहने पर भी संसार को बुरा मानता है। पराया मानता है। और दुःखकर मानता है। इसीलिये ही कहा है कि :-

"समकित दृष्टि जीवडो करे कुटुंब प्रतिपाल।
अन्तरथी न्यारो रहे जेम धाव खिलावत बाल॥"

अर्थात् समकिती आत्मा संसारमें रचतापचता नहीं है। अगर भरनिद्रामें कोई उससे पूछे कि संसार कैसा? तो समकिती कहेगा कि छोड़ने जैसा है। अर्थात् संसार त्याग करने लायक है।

पैसा कैसे? तो कहेगा कि कंकर जैसे। संयम कैसा? तो कहेगा कि लेने जैसा। क्यों लेते नहीं हो? तो कहेगा—कि फंस गया हूँ और कब फांस या फंसामण में से निकलूं एसा ही मनमें विचार आता ही रहता है। तुम्हारी आत्मा को तुम स्वयं पूछ लेना कि तुममें ये संस्कार आये हैं?

साधु महाराज पडिलेहण यानी प्रतिलेखना करते करते अगर बात करें तो छः कायजीवों के विराधक बनते हैं। साधु तो ईर्या समितिपूर्वक ही चलनेवाले होते हैं। प्रथम व्रतका पालन करनेवाला भी श्रावक किसीकी हिंसा नहीं करता है। उपयोगपूर्वक चलता है, उपयोगपूर्वक बोलता है तथा उपयोग पूर्वक ही खाता है, पीता है, वस्तु लेता है, रखता है, फेंकता है अगर उपयोग रखते हुए अकस्मात कोई जीव मर जाय तो अल्प कर्म बन्ध होता है। क्योंकि वहां अध्यवसाय हिंसा नहीं होती है वहां अध्यवसाय निर्दयता नहीं होती है। उपयोग शून्य होनेवाली प्रवृत्तिसें हिंसा न भी हो फिर भी अध्यवसाय अहिंसा का उपेक्षक होनेसे हिंसा का पाप लगता है।

ऐंठा-जूठा पात्र अगर साफ किये बिना रक्खा जाय तो उसमें ४८ अड़तालीस मिनटके बाद असंख्जात संमूर्छिम जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है और उनका आयुष्य अन्त-

मुहूर्त होनेसे जूठा रखनेवाले को पाप लगता है। तुम्हारे पानीयारे में वस्त्रादिसे लूछने की सफाई करनेकी व्यवस्था है कि नहीं? ना साहेब! अरे ना! तो क्या सूक्ष्मजीवों का कतलखाना घर में चलता है? क्या एसी हिंसा से बचने की उपेक्षा करनेमें तुम्हारा श्रावकपना शोभता है? जरा उपयोगशील बन जाओ तो विना कारण होनेवाली हिंसा के पापसे बच जाओगे।

वीतराग के शासन को माननेवाला पुत्र-पुत्रियों के वैचिशाल संबन्ध में अर्थात् सगाई-विवाह में, गाय-भैंस आदि जानवरों के क्रय-विक्रयमें, भूमि सम्बन्ध में रक्खी हुई थापण यानी अमानत में और साक्षी में यानी गवाहीं में झूठ नहीं ;बोलता है।

जबतक मोह पतला नहीं होता तब तक मोक्ष नहीं मिलता है। मोहके कारण से लोग भान भूल गये हैं। नरक के दुःखों को आंख के सामने रक्खो तो मोह भी पतला हो जाय।

क्या नरक के जीव एक समान खाते हैं? क्या उनके शरीर एक समान होते हैं? क्या उनके श्वासोच्छवास एक समान होते हैं? तो आचार्य महाराज कहते हैं कि ना, वहां नरक में नरक के जीवों को सब अलग अलग होता है। बड़ी से बड़ी काया पांचसौ धनुष्य की होती है।

पूर्व में जैसे जैसे कर्म बांधे हैं वैसे वैसे सुख दुख यहां मिलते हैं। नारकी में गया हुआ जीव अन्तर्मुहूर्त तक अपर्याप्त रह करके कुंभीपाक में उत्पन्न हो जाता है। देवलोक में गया हुआ जीव अन्तर्मुहूर्त में पुष्पशय्या में उत्पन्न होता है। नरक के जीवों को उत्पन्न होने के

साथ में परमाधामियो मार मारना शुरू कर देते हैं। मनुष्यगति मे नवमास तक गर्भमें रहना पड़ता है। उनके बाद जन्म होता है। और क्रम क्रम से बढ़ता है। देवलोक में एसा नहीं है। देवलोक में तो उत्पन्न होने के साथमें ही भरयौवनावस्था होती है।

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार गतियों में अपनी आत्मा अनन्तकाल से भटक रही है। समकिती आत्मा अविरति को डाकन मानता है और विरति को पट्टराणी मानता है। मिथ्यात्वी आत्मा दुख में हाय बाप। हाय माँ। हायबोय हायबोय करता है। लेकिन समकिती जीव समताभाव से कर्म स्वरूप को विचार करके पूर्वकृत पाप के पश्चात्ताप को करता हुआ कर्मभार से हलका बनता है। तुम सब समकित धारी बनो यही शुभेच्छा।
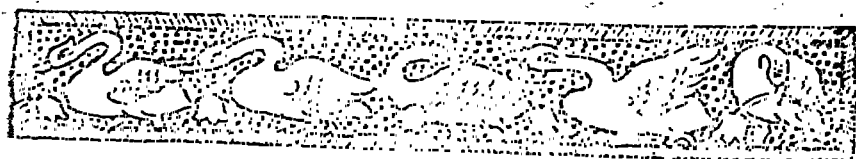
व्याख्यान—छट्ठा

पंचमांग श्री भगवती सूत्र के कर्ता पांचवाँ गणधर श्री सुधर्मास्वामी हैं। भगवती सूत्रमें श्री गौतम स्वामी के द्वारा श्रमण भगवान महावीर परमात्मा को पूंछे गये ३६००० प्रश्न और उत्तर का वर्णन है।

भगवान श्री महावीर देव यहां कहते हैं कि "चलमाणे चलिये"। अर्थात् कोई आदमी चलने लगे तभी से चला कहलाता है। जैसे एक मनुष्य बम्बई जाने के लिये तैयार हो करके घर से स्टेशन गया। इतने में कोई दूसरा मनुष्य उसके घरवालों को पूछता है कि अमुक भाई कहाँ है? तो जवाब क्या मिले कि बम्बई गये हैं। तो स्टेशन पर भी नहीं पहुंचाहो फिर भी बम्बई गया एसा कहा जाता है। इस सिद्धान्त का नाम है "चलमाणे चलिये"।

शरीर पांच प्रकार के हैं :—

(१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कार्माण।

मनुष्य और तिर्यंचका शरीर औदारिक कहलाता हैं। देव और नारकी का शरीर वैक्रिय कहलाता है। खाये हुए अनाजको पचानेवाले तथा आत्मा के साथ संबन्धित कर्म समूहको अनुक्रम से तैजस और कार्माण कहते हैं। चौद पूर्वी साधुभगवंत शंकाके समाधान के लिये तीर्थंकर

भगवान के पास जाने के लिये मूंडा हाथका (यानी एक हाथका) शरीर बनाते हैं उसे आहारक शरीर कहते हैं। तैजस और कार्माण शरीर तो आत्मा को अनादिकाल से लगे हुए हैं। जब मोक्षमें जायेंगे तब उनका वियोग होगा।

नरक सात हैं। उनमें आयुष्य निम्न प्रकार है :—

पहली	नारकी का	आयुष्य	एक	सागरोपम
दूसरी	,,	,,	तीन	,,
तीसरी	,,	,,	सात	,,
चौथी	,,	,,	दश	,,
पांचवीं	,,	,,	सत्रह	,,
छट्ठी	,,	,,	बाईस	,,
सातवीं	,,	,,	तेतीस	,,

सागरोपम किसे कहते हैं :—

चार योजन लम्बा, चार योजन गहरा, चार योजन चौड़ा ऐसा एक खाड़ा या गड्ढा खोदो। उस खाडे में सात दिनके जन्मे हुए युगलिया के बालों के सूक्ष्म टुकड़े करके भरो। ऐसे ठूंस ठूंसके भरो कि उसके ऊपर से चक्रवर्ती सैन्य चला जाय फिर भी दबे नहीं। ऐसे दश कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। यहां योजन अर्थात् चार कोस समझना चाहिए।

आहार तीन प्रकार के हैं :—

(१) ओजाहार (२) लोमाहार और (३) कवलाहार।

विग्रहगतिवाला अथवा ऋजुगतिवाला जीव उत्पत्ति के प्रथम समय तैजस कार्मण शरीरके द्वारा जो औदारिकादि शरीर योग्य पुद्गल ग्रहण करता है और दूसरे समय से

लेकर कार्मण के साथ औदारिक मिश्रकाय योगसे आहार करे, जबतक कि पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक, उसका नाम ओजाहार है। शरीर में तेल चोपड़ने से अर्थात् तेलका मालिश करने से चिकाश होती है और गरमी में पानी छांटने से यानी पानी छिटकने से प्यास मिट जाती है उसे लोमाहार कहते हैं। मुखमें कौर यानी ग्रास लेना उसे कवलाहार कहते हैं।

मनको ललचावे ऐसी वानगी को जीमते समय छोड़ दो। क्योंकि रसनेन्द्रिय को जीतने से धीरे धीरे सभी इन्द्रियां जीती जा सकती हैं। ब्रह्मचर्य के रक्षक नियमों को ब्रह्मचर्य की वाड कहते हैं। उसके नव प्रकार हैं:—

(१) जहां स्त्री अथवा नपुंसक नहीं होते वहां ब्रह्मचारी रहता है।

(२) स्त्रीके साथ रागसे वातें नहीं करना चाहिये।

(३) जहां स्त्री-पुरुष सो रहे हों अगर कामभोग की वातें कर रहे हों वहां भीतके सहारे खड़ा होकर ब्रह्मचारी को नहीं सुनना चाहिये।

(४) स्त्री वैठी होय उसी आसन से पुरुषको दो घड़ी तक नहीं वैठना चाहिये और पुरुष वैठा हो उसी आसन से स्त्रीको तीन पहर तक नहीं वैठना चाहिये।

(५) रागसे स्त्रीके अंगोपांग नहीं देखना चाहिये।

(६) पहले भोगे हुए विषयों को याद नहीं करना चाहिये।

(७) स्निग्ध आहार नहीं करना चाहिये।

(८) और अधिक नीरस हो ऐसा भी अधिक आहार नहीं करना चाहिये।

(९) शरीर की शोभा टापटीप नहीं करना चाहिये।

मनुष्यभव चले जानेके वाद अनन्तकालमें भी मिलना मुश्किल है। इसलिये जितना वने उतना जीवन में धर्म कर लेना चाहिये।

वहु आरंभ–समारंभी, परिग्रही और रौद्रध्यानी नरक में जाता है। गूढ हृदयवाला, शठ; शल्यवाला जीव तिर्यंच गतिमें जाता है। अल्प कषायवाला, दान रुचिवाला और मध्यम गुणवान मनुष्यगतिमें जाता है। अविरति सम्यग्दृष्टि आदि, वाल तपसी और अकाम निर्जरावाला देवगति में जाता है।

दिनमें एक घण्टा अथवा दो घण्टे मौन रखो यह भी तप है। मूंगा मनुष्य वोल नहीं सकता है इसलिये मौन रहता है किन्तु तप नहीं कहा जा सकता है।

कंदमूल वुद्धि को मलिन करनेवाला होता है, और दुर्गति में ले जानेवाला है इसलियें कंदमूल को त्यागो।

साधुपना तलवार की धारके ऊपर चलने के समान है और लोहेके चना चवाने जैसा है और रेतके कौलिया करने जैसा कठिन है।

संसार के हरेक जीव स्वार्थ से भरे हुए हैं। तुम्हें तुम्हारे मामा, काका, फुवा आदि कोई सगे मिलें तव तुम सवसे पहले उनसे क्या पूछोगे? तुम्हारा शरीर कैसा है? ऐसा ही पूछोगे ना? तुमने किसी दिन ऐसा भी पूछा कि तुम्हारे आत्मा को कैसा है? शरीर का खोखा तो यहीं रह जानेवाला है उसका इतना मोह क्यों?

जो श्रावक–श्राविका श्रावक के वारह व्रत अंगीकार करते हैं वे साधुधर्मी कहलाते हैं और जो श्रावक श्राविका

बारह व्रतोंमेंसे एक-दो पालते हैं, वे धर्माधर्मी कहलाते हैं। तुम्हारा नंबर किसमें है?

दुधाला ढोर खीलासे बंधे रहते हैं। लेकिन हिराये ढोर जहां तहां भटकते हैं। व्रतधारी आत्मा दुधाला ढोर जैसा कहलाता है और व्रतरहित आत्मा हिराया ढोर के समान कहला जाता है। अब तुम्हें कैसा कहलाना है?

देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक इन चार गतियों में से तुम्हें कौनसी गति चाहिये? साहेब देवलोक चाहिये। क्यों कि वहां सुख बहुत है। महानुभाव, तुमको खबर नहीं लगती कि देवलोक का सुख भी अस्थायी है। एसे सुख को प्राप्त करके क्या करोगे? अरे एसे सुखकी इच्छा करो कि जो आकर के फिर न जाय और अशाश्वत न हो शाश्वत हो। शाश्वत सुख तो मोक्षगति के सिवाय और कहीं भी नहीं है इसलिये मोक्षा भिलाषी बनो।

नरक गति में भयंकर वेदना है। पानी मांगो तो पानी भी नहीं मिलता है। भूख लगने पर खाने को नहीं मिलता है। आँख बन्द करके खोलो इतना भी सुख नहीं मिलता है। वहां तो दुःख, दुःख और दुःख। परमाधार्मी देवता शरीर के राई के समान टुकड़ा कर डाले तो वह भी सहन करना पड़ता है। फिर भी वह शरीर पारा के समान फिरसे इकट्ठा हो जाता है। भवि आत्मा यह वर्णन सुनकर के पापों से बचें इसी लिये वीतराग प्रभुने अपने आत्मा का उपकार करने के लिये उसका वर्णन किया है। पाप नहीं करना और अगर मान लो करना भी पड़े तो रचपच के नहीं करना। कंपते कंपते ध्रूजते ध्रूजते पाप होता है।

तुम पाप किस तरह करते हो? सर्व विरति की दीक्षा का मतलव है साधुपना। यह साधुपना सिंह जैसे मनुष्य ही ले सकते हैं। कायरों (वायला) का वहां काम नहीं है।

अति उग्र पाप का फल इस भवमें ही मिल जाता इसलिये पाप करते हुये खूव डरो। करना ही पडे तो रोते रोते करो।

अगर पत्नी से धर्म मिला हो तो पत्नीका भी उपकार नहीं भूलना चाहिये। श्रीपाल महाराजा मयणा सुन्दरी से धर्म प्राप्त होने से मयणा सुन्दरी को वार वार याद करते थे। उपकारो का उपकार कभी भी भूलना नहीं चाहिये।

धर्म करने के समय भी जो दुःख आता है व पूर्व भवमें वांधे हुये पाप का फल है एसा विचार करने से धर्म को वदनाम करने का मन नहीं होता है।

अनेक भवकी आराधना के विना मोक्ष नहीं मिलता है। श्री महावीर भगवान समकित प्राप्त होने के वाद सत्ताईस भवमें मोक्ष गये। खवर है कि नहीं? समकिती आत्मा मरण को महोत्सव मानता है। परभव का पाथेय धर्म है। जिसका जगत में कोई मित्र नहीं है उसका मित्र धर्म है। जिसका कोई भाई नहीं है उसका भाई धर्म है। धर्म अनाथ का नाथ है इस लिये धर्म करने में प्रमाद नहीं करो।

एक समय इन्द्र महाराजा ने भगवान श्री महावीर परमात्मा से विनती की कि हे प्रभु, आप जो आपका आयुष्य थोड़ा वढावो तो भस्मग्रह से वच जाय। भगवान

श्री महावीर ने कहा कि हे इन्द्र, इस जगत में क्षण भी आयुष्य वढाने की ताकत किसी में भी नहीं है।

दुनिया में दुखी वहुत और सुखी कम। इसका कारण यह है कि दुनिया में धर्म थोड़ा है और पाप वहुत है।

आयुष्य कर्म वेडी के समान है। जिस तरह जेलमें वेडी में जकडा हुआ कैदी मुदत पूरी होने के पहले न ही छूट सकता है। उसी तरह जीव भी आयुष्य पूर्ण होने के पहले भवमें से नहीं छूट सकता है।

धर्मी अर्थात् मोक्ष का मुसाफिर। जिस तरह मुसाफिरी कर करके थके हुये मनुष्य को घर जाने की तीव्र उत्कंठा होती है। उसी तरह संसार की मुसाफिर सें थके हुये कंटाले हुये जीवको अपने स्थायी शाश्वत स्थान रूप मोक्षघर जल्दी पहुंचने की उत्कंठा होती है।

व्यसन सात हैं। (१) जुआ (२) मांसभक्षण (३) शराव पीना (४) वेश्यागमन (५) शिकार (६) चोरी और (७) परस्त्रीगमन। ये सात व्यसन जीवन में नहीं होना चाहिये।

अहमदावाद में शीवाभाई सत्यवादी हो गये। उनका युवान पुत्र एकाएक मर गया। पुत्रवधू खूव रोने लगी। तव शीवाभाई ने उससे कहा कि आयुष्य पूर्ण होने से मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ है। वह रोने से कहीं पीछे आनेवाला नहीं है। इसलिये रोना वन्द करके इस तिजोरी की चावी लो। आज से घर के मालिक तुम। घर के दरवाजे के पास एक द्वारपाल को खड़ा कर दिया। वैठने के लिये आनेवालों से कह दिया गया कि यहां रोना वन्द है। घर के अन्दर जाजम विछा दी। आगन्तुकों

को एक एक पक्की नवकार वाली गिन करके ही जाना है इसलिये नवकार वालीयो वहां रख दीं।

मनुष्य जी जी कर के आज कितना जिये? २५–५० अथवा १०० सौ वर्ष। इतने थोड़े आयुष्य में हाय हाय, हाय वोय, कावा दावा, वदला, वैर जहर, मेरा तेरा, सत्ता और धनकी तीव्र लालसा यह सब किस के लिये?

संसार के कावादावा में रचेपचे मनुष्यों को मरते समय अच्छी भावना नहीं आती है। और इस तरह मरन विगड़ने से परभव भी विगड़ जायगा। जिसने जीवनमें कुछ भी धर्म की आराधना नहीं की उसको मरते समय धर्म सुनना भी अच्छा नहीं लगेगा। इसलिये अगर परभव अच्छा चाहिये तो मरण को सुधारो। और मरण को सुधारना हो तो मृत्यु के पहले धर्म आराधना करने के लिये सावधान रहो। सिरपर मृत्युकी तलवार हमेशा लटकती रहती है। इसका तो तुम्हें ख्याल होगाही? मेरा पैसा, मेरी स्त्री, मेरे वावा, वेवी ये सब मेरा मेरा करते हो तो वह सब तुम्हारे साथमें ही आवेगा? पूर्वभवके अनन्त संवंधियों में से कितनों को साथमें लेकर के आये हो? इस लिये विचार करो कि अन्तमें साथमें क्या आयेगा? परभव का भाथा (कलेवा) क्या? यह सब स्वस्थ चित्त से विचारो तो समझ में आजाय।

जैनों को घरके दीवानखाने में क्या रखना चाहिये यानी सजाना चाहिये। काच के कवाट में यानी अलमारी में कप–रकावी खिलौना गोठवना है या साधुवेश गोठवना है यानी रखना है? साधुवेश में क्या क्या होता है? ओघो (रजो हरण) मुहपत्ती (मुख व स्त्रिका) दंडासन,

पातरां (गोचरी वापरनेके का काष्ठपात्र) चेतनो, तर्पणी (गोचरी लाने के काष्ठपात्र), स्थापनाचार्य (पंच परमेष्ठी की स्थापना करनेकी स्थापनी) वगैरह सब होता है। वह सब व्यवस्थित रीत से रक्खा हुआ होता है। घर के सभी मनुष्य सुबह जल्दी उठ करके साधुवेश का दर्शन करें। और भावना भावें कि अलमारी में रक्खे हुये साधुवेश को धारण करके मैं साधु कब बनूंगा? आज पाप का उदय है कि साधुवेश पहना नहीं जा सकता कब पुण्य का उदय होगा और शरीर पर साधुवेश धारण किया गया होगा। घरके छोटे बच्चे पूछें कि बापुजी यह क्या है? बाल्य-कालमें धर्म के संस्कार मिले हों। और कदाच किसी समय इच्छा हो कि दीक्षा लेना है तो उसी समय पहनने के काम लगें। आज तो अगर किसी को दीक्षा लेना हो तो अहमदाबाद ही जाना पडे? तुम्हारे घरमें जीमने के लिये थाली वाटका (कटोरी) कितनें? कप-रकाबी कीतनीं? और संयम के उपकरण कितने? जवाब सुनने से ही समझ में आ जायगा कि अभी संयम लेने को भावना कितनी दूर है?

समकिती आत्मा समकितपने में आयुष्य का बन्ध करे तो नियमा (निश्चित) वैमानिक देवलोक में ही जायगा।

तुम जितना समय स्नान करने में शरीर विभूषा करने में व्यतीत करता हो इतना समय जिनपूजामें व्यतीत करते हो? कपाल में यानी ललाट में किये गया केसरका तिलक यदि टेढा मेढा हो गया हो तो उसको दर्पण में देखकर व्यवस्थित करने के लिये जितना ख्याल रखते हो उतना ख्याल भगवान के अंग ऊपर की गई केसर पूजा में रखते हो?

जो मनुष्य उठने के बाद धर्मध्यान करने वाले हों उनको तो साधु जगा सकता है। परन्तु उठने के बाद आरंभ-समारंभ करने वालों को साधु नहीं जगा सकता है।

अज्ञानी जीव अपने दोष नहीं देखते किन्तु दूसरों के दोषोंको देखते फिरते हैं। परन्तु वीतराग धर्म को प्राप्त हुये आत्मा तो अपने दोषों को ही देखते हैं। और दूसरों के दोषोंकी तरफ उपेक्षा करते हुये सद्‌गुणों को ही देखते हैं।

तुम्हें सांप का, सिंह का जितना डर लगता है उतना पाप का लगता है? सांप अथवा सिंहसे तो एक ही भव बिगड़ेगा किन्तु पापसे तो अनेक भव बिगड़ेंगे यह समझ लेना।

भाव श्रावक बाजार में से शाक भी लाता है तो छिपाकर लाता है। क्यों कि अगर कोई देखले और वह लाये और काटकर शाक बनावे तो उसमें अपन निमित्त बने जिससे अपन को दोष लगता है।

माता अपने बालकको हंसाती भी है और रुलाती भी है। परन्तु कब रुलाना और कब हंसाना एसी समझवाली माता हो तभी बालक का भविष्य सुधार सकती है?

धर्मी, अधर्मी और धर्म के विरोधी इस प्रकार जीव तीन तरहके होते हैं। धर्मी आत्मा भक्ति करने योग्य है। अधर्मी आत्मा दया पात्र है। धर्मके विरोधियों की उपेक्षा करनी चाहिये क्योंकि वह मानव भव जैसा उत्तम भव पाकर के हार जाता है।

तथा संयमी और असंयमी इस तरह भी जीव दो प्रकार के होते हैं। गरीब मनुष्य सूखा रोटला और दाल ये दो चीजें सिर्फ खा पाता है किन्तु इस से वह संयमी नहीं कहलाता है। क्योंकि अन्य वस्तुओंका वह पच्चक्खाणी (प्रतिज्ञावाला) नहीं है।

जो संयमी में नंबर लाना हो तो अपनको पच्चक्खाण करना चाहिए। गुरु महाराज जब पच्चक्खाण देवें तब पच्चक्खाण में पच्चक्खाई बोलते समय पच्चक्खाण लेने वालेको पच्चक्खामि और वोसिरई बोलते समय वोसिरामि कहना चाहिए। यह पच्चक्खाण विधि है।

प्रतिक्रमण के सूत्रोंका अर्थ जानने जैसा है। सूत्रोंके अर्थका ख्याल हो तो प्रतिक्रमण करते समय मन उसमें लगा रहे और आत्मा उस में एकाकार बन जाता है। समझ के जो क्रिया की जाती है उसमें आनन्द आता है। क्रिया समझे बिना की जाती है इसीलिए उसमें आनन्द नहीं आता है।

सब विरतिधर को देवलोक में देव भी नमस्कार करते हैं।

एक मनुष्य मेरु पर्वत जितने सोने के ढेर को दानमें दे और एक आत्मा दीक्षा ले ले। इन दोनों में से महान् कौन? तो जवाब है कि दीक्षा ले वही महान है।

किसी श्रावक के नियम हो कि जिनपूजा प्रतिदिन करना। और वही श्रावक अगर पोषध करे और उस दिन जिनपूजा न कर सके तो उसका जिनपूजा का नियम टूटता नहीं है। क्यों कि पोषध ये भावपूजा है। और भाव पूजा में द्रव्य पूजा का समावेश हो जाता है।

अपन अनन्त भवों से खाने पीने में मशगूल हैं फिर भी खाने पीनेकी तमन्ना छूटती नहीं है।

तीर्थंकर परमात्मा अपनी माताके गर्भ में मति, श्रुत और अवधि इन तीनों ज्ञानों से संयुक्त उत्पन्न होते हैं।

व्याख्यान—सातवां

चरमतीर्थपति श्रमण भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि संसारी क्रिया करते समय भी मनको ध्यानमें रक्खो।

गुणसागर जैसे पुण्यात्मा परभव में सुन्दर आराधना करके ही आये थे इसी से लग्न की चौरीमें आठ सुन्दर कन्याओं के हस्त ग्रहण के समय भी उत्पन्न हुई शुभ भावना के वलसे केवलज्ञान को प्राप्त किया। इसी लिये कहा है कि—"भावना भवनाशिनी।"

धन नाशवंत है, चोर चुरा ले जायगा, राजा छुड़ा लेगा, विलासमें खर्च हो जायगा, इसलिये जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी धर्मके क्षेत्रों में सद्व्यय करने लग जाओ।

मुझे ये पांचसौ रुपया खर्च करने की इच्छा नहीं थी, परंतु महाराज साहवने कहा इसलिये अगर नहीं दूं तो अच्छा नहीं लगता है, इसलिये शरमिन्दा होकर दिये हैं। ऐसा बोलनेवाले भी बहुत हैं। इस तरह से धन खर्च करनेवालों का धन खर्च हो जाने पर भी जितना लाभ मिलना चाहिये उतना लाभ नहीं मिलता है।

कर्म आठ प्रकार के होते हैं:— (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नामकर्म (७) गोत्रकर्म (८) अंतराय।

जगत के जीवों को दुःखका भय है परंतु पाप का भय नहीं है। जबतक पाप का भय नहीं लगे तबतक दुःख तो आनेवाला ही है। जो दुःख दूर करना हो तो पाप से बचो।

श्रावक के छत्तीस कृत्य (करने लायक) मन्हजिणाणं की सज्झाय में बताये हैं इन्हें भी समझ लेना चाहिये।

आनुपूर्वी तीन प्रकार की है :—(१) पूर्वानपूर्वी (२) पश्चानपूर्वी (३) अनानुपूर्वी। पहले से ही क्रमसर गिनना वह पूर्वानपूर्वी है। पीछे से गिनना वह पश्चानुपूर्वी है और आडंअवळुं यानीं उलटा-सीधा गिनना वह अनानुपूर्वी कहलाती है।

नरक के जीव किसीको प्रत्यक्ष में मारते नहीं है। परंतु मारने का विचार मनमें लाने से पाप बांधते हैं।

रागके दो प्रकार हैं :-(१) प्रशस्त और (२) अप्रशस्त। पौद्‌गलिक वस्तुका राग करना वह अप्रशस्त राग कहलाता है और देव, गुरु और धर्मके प्रति जो राग होता है उसे प्रशस्त राग कहते हैं।

हृदय में भरी हुई पापकी मलिनता को दूर करने के लिये संवत्सरी पर्व है। अपने पर्व मालमिष्टान्न खाने के लिये नहीं होते किन्तु मालमिष्टान्न का त्याग करने के लिये होते हैं।

खुद देखे बिना किसी के ऊपर कलंक चढाना उसे अभ्याख्यान कहते हैं।

संसार में बैठे हो इसलिये पाप तो होता ही है। मगर उदासीन भावसे करो।

जैसे पैर में टूटा हुआ कांटा शरीर का शल्य है उसी तरह माया, नियाण और मिथ्यात्व ये तीन आत्मा के शल्य हैं।

शास्त्र खूब पढने पर भी जब तक पाप से भय नहीं होगा तब तक पंडित नहीं कहला सकता है। अल्पज्ञान हो फिर भी अगर पापभीरू हो तो पंडित कहलाता है।

जिस में भद्रिकता होती है उसमें विनयगुण आता है। विनयवान ढंका हुआ कहलाता है। और कपड़ा पहने होने पर भी अगर विनय रहित है तो वह उघाडा (नागा) कहलाता है।

जब गुरु आयें तब खड़े हो जाना चाहिये। घरमें जब बडील यानी बड़े आदमी आते हैं तब तुम खड़े हो जाते हो?

पूज्य श्री हेमचन्द्राचार्यजी महाराज फरमाते हैं कि अगर भोजनमें कीडी खाली जाती है तो गले में नुकशान करती है। और अगर जू आजाय तो जलोदर होता है।

माता की पुत्रके प्रति कैसी लागणी (लगनी) होना चाहिये उसका जरा विचार करना चाहिये।

एक माता और पुत्र दोनोंने दीक्षा ली। एक समय संवत्सरी पर्वका दिन आया। माता साध्वी वंदन करने आये। पुत्र मुनि को क्षुधा वेदनीय कर्म का भारी उदय है। नवकारसी से अधिक तप कुछ भी उस से नहीं हो सका। इसलिये संवत्सरी होने पर भी इस मुनिने नवकारसी की।

माता साध्वी कहती है कि हे महानुभाव, आप मेरी एक बात मानेंगे?

पुत्र मुनिने कहा फरमाइये। जरूर मानूंगा। माता साध्वीने कहा कि आप आज पोरिसी करो। ऐसा कह के पोरिसी कराई। इस के बाद साढ पोरिसी, पुरिमड्ढ और अवड, एकासना, आयंबिल ऐसा करते करते अन्तमें उपवास करा दिया। पुत्र मुनि की शक्ति न होने पर भी माता साध्वीजी के कहने से करना ही चाहिये ऐसा मान कर के उपवास कर लिया। रात को तीव्र क्षुधा लगी और क्षुधा क्षुधा में ही मुनि देवगत हो गये यानी मर गये। प्रातःकाले इस बात की खबर माता साध्वाजी को होती है। इसलिये वे खूब पश्चात्ताप करती हैं। गुरु महाराज के पास प्रायश्चित्त मांगती है। तब गुरु महाराज कहते हैं कि आपकी तो इससे हितलागणी ही थी इसलिये कोई दोष नहीं है। विचार करो कि हितलागणी से प्रेरित होकर माताने पुत्र को देवलोक में भेज दिया।

अगर भाव श्रावक साधु समाचारी का जाननेवाला हो और साधु की कुछ भूल हो तो भाव श्रावक पैरों पड़ के कहे कि साहब, ऐसा नहीं हो तो अच्छा। इस तरह की नम्रता भरी बात सुनकर साधु अवश्य ही सुधर जाता है।

परन्तु आज तो किसी को अपनी भूल देखना नहीं है और साधु की भूलको जगत के मैदान में खुली करना है। ऐसे श्रावक श्रावक नहीं कहलाते हैं। ऐसे श्रावकों को साधुओं की भूल देखने का और कहने का कोई अधिकार नहीं है। आज साधुओं के चारित्र में खामी आ गई उसका कारण है कि श्रावक अपनी फरज चूक गये हैं।

चन्द्रगुप्त नाम का राजा था। उनके मन्त्री श्रद्धावान

थे। एक समय अकाल पड़ा। नगरी में एक आचार्य महाराज दो साधुओं के साथ रुक गये थे उन्होंने दूसरे साधुओं को विहार करा दिया साथ के दोनों साधु माधुकरी भिक्षा को गये। परन्तु दुष्काल तीव्र होने से भिक्षा नहीं मिली। इसलिये दोनों साधु विद्या का उपयोग करते हैं। उन साधु के पास एक अदृश्य गमन गुटिका थी। उस गुटिका का अंजन आँखों में रोज आंजकर जब राजा जीमने को बैठे तब वहां वे साधु अंजन के प्रभाव से अदृश्य होकर भोजन ले लेते थे। एक दिन राजा का रसोइया पूछता है कि महाराज, आप दुबले क्यों दिखाते हो। आप रोज भोजन थोडीवार में जल्दी ही कर लेते हो। उसका क्या कारण?

एक समय मन्त्रीश्वरने भी राजा से पूछा कि हे राजन्! आप प्रतिदिन सुकाते क्यों जाते हो। क्या कारण है? तब राजा कहता है कि हे मन्त्रीश्वर जब मैं रोज भोजन करने बैठता हूं तो मेरे थालमें से कोई अदृश्य रीते भोजन लें जाता है। इसलिये मैं भूख रहता हूं। और दूसरी वक्त मांग भी नहीं पाता हूं। अब करना क्या? मन्त्रीश्वर ने युक्ति रची। जिस स्थान पर राजा भोजन करने बैठता था वहां अंजन बिछा दिया। अब वे दोनो मुनि भी अदृश्य होकर प्रतिदिन की तरह वहां आये। वहां आने के साथ में ही उनके चरण काजल में पड़ गये। चरणों को देखकर ही मन्त्रीश्वर ने धुआं चालू किया। धुआंसे मुनियों की आंखमें से लगा हुआ अंजन निकलजाने से मुनि दृष्टि गोचर हो गये। मुनियों को देखने के साथ ही राजा लालचोल यानी खूब क्रोधायमान हो गया। और कहने लगा अरे साधुओ, तुम इस मुनिवेशमें भोजन की चोरी

करते हो। क्या तुम को एसा करना शोभता है। इसी तरहकी अनेक वातें राजाने कहना शुरू कर दीं। राजा के सेवक भी दूर खड़े खड़े यह सब सुनते रहे। अब मन्त्री विचार करने लगा कि अब यह मामला तंग हो जायगा। और धर्मकी अवहेलना होगी। इस लिये राजासे मन्त्रीने कहा कि हे राजन, आपका पुन्योदय है कि आप को मुनियों का जूठा भोजन जीमने को मिला। आप गुस्सा नहीं करो और शान्त होजाओ। यह सुन कर राजा शान्त हो गया। दो पहर को मन्त्रीश्वर उपाश्रय में विराजमान आचार्य महाराज के पास गये। और कहने लगे कि साहब, आप अपने साधुओं को काबू में नहीं रखते। इस से शासन की अवहेलना होती है। एसा कह के सब वात आचार्य महाराज से कह दी। यह वात सुनकर आचार्य महाराज कहने लगे कि हे मन्त्रीश्वर, तुम्हारे घरमें वैभव का पार नहीं है। जहां जैन मतावलम्बी राजा और मन्त्री होते हुये भी जैन मुनि को भिक्षा नहीं मिले इसमें आपकी और राजाकी शोभा है? तुमने साधुओं की खबर नही रक्खी इसी लियें हमारे साधुओं ने भूल की। इस लियें यह हमारी नहीं किन्तु तुम्हारी भूल है।

मन्त्रीने अपनी भूल कबूल करके गुरु महाराज से माफी मांगी। मन्त्रीके चले जानेके वाद आचार्य महाराज ने दोनों साधुओं को बुलाया, दोनों को योग्य उपालम्भ दिया और दोनों को चले जानेका फरमान दिया। मुनि भी अपनी भूल समझ गये, मन्त्री भी अपनी भूल समझ गया और जैन शासनकी निन्दा भी होते होते अटक गई। इस प्रकार की चिन्ता करनेवाले श्रावकों को शास्त्रकारोंने मात-पिताके समान कहा है। तुम तुम्हारे घरमें तुम्हारी

संतान की जैसी चिन्ता करते हो वैसी चिन्ता और सेवा संभाल की लगनी साधु-महाराजों की करने लगे तो बिगाड़ नहीं हो और धर्म की प्रशंसा हो और साधुता स्वयं वृद्धि को प्राप्त करेगी।

तुम जीमते समय किसको याद करते हो? सन्तानों को अथवा साधुओं को? जो साधु याद आते हों तो समझ लेना कि भाव श्रावकपना आ गया है। भगवान की वाणीको गणधरोंने गूंथकर शास्त्र बनायें हैं, इसलिये उनको सुनने से, समझने से और हृदय में उतारने से कल्याण होगा।

बड़ी तपस्या वालों को घरमें नहीं जाना चाहिये। और अगर जाने का मौका भी आवे तो रसोडा में यानी रसोई घरमें तो नहीं ही जाना चाहिये। क्योंकि अच्छा अच्छा पकवान देखकर मन चलित होता है। और तप को दूषण लगता है। तपस्या करने वालों को उपाश्रय में समय बिताना चाहिये।

छः बाह्य और छः अभ्यन्तर इस प्रकार बारह प्रकार के तप की आराधना करनेवाले साधु होते हैं।

अपने शासन में हुये रोहक मुनि भद्रिक परिणामी होने से आत्मा का कल्याण कर गये।

इन सब बातों को समझो और हृदय में उतारो यही अभिलाषा।
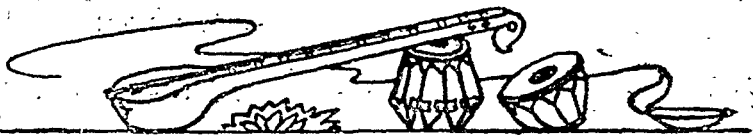
व्याख्यान—आठवां

निकट के उपकारी भगवान श्री महावीर प्रभु फरमाते हैं कि घनवात, तनवात, और घनोदधि ये पदार्थ जमे हुये (थीजेला) घी के समान हैं। अनादि कालसे हैं। उनके आधार पर ही देवों के विमान टिके हैं।

आकाश का मतलब है पोलाण यानी पोल अथवा खाली जगह। आकाश दो प्रकार का है (१) लोकाकाश (२) और अलोकाकाश। लोकाकाश का प्रमाण चौदह रज्जू का है। रज्जू एक जात का माप है। निमिष मात्रमें एक लाख योजन जानेवाला देव छः महीना तक जितना अन्तर (दूरी) काटता है। उसे एक रज्जू कहते हैं।

अथवा ३८१२७९७० मणका एक भार ऐसे एक हजार भारवाला लोहे के गोले को कोई देव हाथमें लेकर जोर शोरसे अनन्त आकाशमें उछाले, वह लोहेका गोला एक धारसे अविच्छिन्न पनेसे गिरता गिरता छह महीना, छह दीन, छह पहोर (प्रहर) छह घड़ी और छह समयमें जितना नीचे आवे वहां तकका माप "एक राज" कहलाता है। ऐसे चौदह राज प्रमाण यह लोकाकाश (ब्रह्मांड) है। यह माप सुनकर भड़क जाना नहीं है। आजके खगोल विज्ञान ने भी आकाशी अन्तर बताने के लिये ऐसे हो उपमानों का आश्रय लिया है। पदार्थों की गतिमें ग्रह वगैरह के

अन्तर में हालके वैज्ञानिक भी प्रकाशवर्ष वगैरह उपमानों का इसी तरहसें उपयोग करते हैं ;

सिर्फ एक समयमें यह जीव लोकाकाश के अग्रभाग में पहुंच सकता है। लोकाकाशमें छः द्रव्य हैं। अलोकाकाशमें सिर्फ एक आकाशास्तिकाय ही है। छः द्रव्योंका स्वरूप समझने से विश्वके पदार्थों का ज्ञान संपादन किया जा सकता है।

कर्म के भारसे दव गये जीवकी शक्ति दव गई है। जिस तरह से मिट्टी के आठ लेपवाली तुमड़ी को अगर पानीमें रक्खा जाय तो डूव जाती है और पानी के नीचे चली जाती है और वे आठों पड़ ज्यों ज्यों धुलते जायें, दूर होते जायें त्यों त्यों तुमड़ी पानीके ऊपर आती जाती है, और जव आठों पड़ विलकुल धुल जाते हैं तो उनके भारसे रहित होकर तुमड़ी पानीके ऊपर जल्दी आ जाती है। उसी तरह से आत्मा के ऊपर लगे हुए आठ कर्मोंके पडों की तपश्चर्यादि से धुलाई हो जाने से आत्मा समय मात्रमें लोकाकाश के अग्रस्थान में पहुंचकर शाश्वव सुख का भोक्ता वन जाता है।

दुःख गर्भित, मोह गर्भित और ज्ञान गर्भित वैराग्यमें से ज्ञानगर्भित वैराग्य अवस्था ही जीवको मोक्षगति दिला सकती है।

जहाँ कच्चा पानी होता है वहाँ वनस्पति होती है। कहा है कि—"जत्थजल तत्थ वनम्" असंख्य आत्मायें द्वादशांगी को पा कर तिर गई और वहुत डूव गए हैं। उसमें द्वादशांगी का दोष नहीं है। डूबे हुओंकी अयोग्यता का दोष है।

दूसरों को ठगनेके लिये वैरागी बने हुए, और लोगों को खुश करने के लिये धर्मोपदेश देनेवाले भी दुनिया में मिल सकते हैं। धर्मोपदेश किसीको प्रसन्न करनेके लिये नहीं देना है किन्तु दूसरों को धर्म प्राप्त कराने के लिये देना है।

जगत में कार्मण वर्गणा के पुद्गल ठूंस ठूंस के भरे हुए हैं। जिस तरहसे पानी से भरे हुए एक कुंडमें नौका को रखी जाय। परन्तु जो नौका छिद्रवाली हो तो उस छिद्रके द्वारा पानी नौकामें प्रवेश करके नौका को डूबो देता है उसी तरह असंख्य प्रदेशी आत्मा में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग स्वरूप छिद्रोमें कार्मण वर्गणा के पुद्गल प्रवेश करके आत्मा को संसार कुण्ड में डूबो देते हैं।

एक मनुष्य के शरीरमें खूब पसीना आया हो तो उस समय शरीर के ऊपर धूल चिपक जाती है। उसी तरह से अगर रागद्वेष रूपी चिकास आत्मामें प्रवर्तती हो तो कर्म उसको चोंट (चिपक) जाते हैं।

इसलिये रागद्वेष को दूर करने का प्रयत्न करो।

ज्यों ज्यों धर्म अनुष्ठान किये जाते हैं त्यों त्यों राग-द्वेष कम होना चाहिये। आत्मा के साथ चिपके हुये कर्मों को दूर करने के लिये तप-जप-संयमादि अनुष्ठान हैं। एक लाख नवकार मन्त्र का जाप शुद्ध विधि से किया जाय तो तीर्थंकर नाम कर्म बंधता है।

आचारांग सूत्रकार कहते हैं कि दुःख का विचार नहीं कर। परन्तु दुःख सहनशीलता सीख।

गज सुकुमाल मुनिके सिर पर उनके सुसर सोमिलने

मिट्टी की पाल वांध कर अंगारे सुलगाये फिर भी मुनिराज विचार करते हैं कि मेरे सुसरने मेरे सिर पर मोक्षकी पगड़ी वांधी है। इस प्रकार के समताभाव में तल्लीन उन मुनिको केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

किराये की काया अपनको उपयोगी हो सके इसके लिये ही उसको पोषण देकर के उसके पास से आत्मा के श्रेय के लिये पूरा काम लो। इसी में मानव देह प्राप्त करने की सफलता है।

आकाशमें से हमेशा सुवह और शामको अमुक समय तक अपकाय के जीव नीचे गिरते हैं। जिससे अपने साधु काल के समय गरम कम्वल ओढते हैं।

श्री भगवती सूत्र में कहा है कि जीव सीधे और तिरछे दोनो तरहसे गिरते हैं। गिरने के साथ ही मृत्यु प्राप्त करते हैं परन्तु गरम कपडा के ऊपर गिरने से तुरन्त मरते नहीं हैं। इस लिये पोषाती श्रावक श्राविका और साधु मुनिराज को खुले आकाश में आने के पहले चलते, वैठते और खड़े होते गरम कम्वल ओढना चाहिये। हरेक रितुमें कम्वल ओढने का काल अलग अलग होता है।

देवलोक में रहनेवाले देव सागरोपम काल पर्यन्त इन्द्रियों के विषयभोगों में मग्न होकर के रहते हैं। परन्तु जव देवलोक में से च्यवन पाने का काल नजदीक आता है तव वे भौगिक सामग्रियों का वियोग होने वाला जान करके दुखी दुखी हो जाते हैं। शरमिन्दा होकर के वे विचार करते हैं कि ये देवलोक के सुख छोड़ करके मानव लोक की गंधाती गटर में जाना पडेगा।

संसार की तमाम प्रक्रिया शास्त्रों में गुंथायेली होने

से गीतार्थ गुरुओं ने संसार नहीं भी देखा हो फिर भी शास्त्रों के आधार से संसार का हूबहू वर्णन कर सकते हैं। परन्तु मर्यादित भाषा में करते हैं।

देवों के गले में पड़ी हुई फूलों की माला आयुष्य के छः महीना बाकी रहने पर कुमला जाती है। जिसे देख कर के समकिती देव शाश्वत तीर्थों की यात्रा, वीतराग प्रभु के दर्शन आदि करके देव भव सफल करते हैं। किन्तु मिथ्यात्वी देव आर्तध्यान करके महापाप बांधते हैं।

वीतराग के धर्म की आराधना इस भव अथवा परभव के सुखप्राप्ति को अनुलक्ष करके नहीं करना है किन्तु सिर्फ मोक्ष प्राप्ति के हेतुको अनुलक्ष करके ही करना है।

अपने शरीर के नव द्वार में से और स्त्री के बारह द्वार में से निरन्तर अशुचि बहति है।

स्वामीवात्सल्य में जीमने को आने वाले सभी को थाली धोकर के पीना चाहिये।

जीव गर्भ में आकर के सबसे पहले समय माता का रुधिर और पिता के वीर्य का आहार करता है। गर्भ में रहनेवाला बालक माता जो कवलाहार लेकर के उदय में प्रक्षेपती है उसमें से ओजाहार करता है। गर्भ में रहने वाले बालक को दस्त (झाडा) पेशाब आदि नहीं होते हैं। गर्भ में रहनेवाला जीव निद्रा लेता है। गर्भवती स्त्री छमास तक तपश्चर्या प्रमाण से कर सकती है। उसके बाद तप करने की मनाई है।

वर्तमान में जितना झगड़ा, लड़ाई होती है वह मुख्यत्वे जर, जमीन और जोरू इन तीन कारणों से है।

अर्थ कमाने की चिन्ता करना आर्तध्यान है। कमाने के पीछे भी शान्ति नहीं रहने से रक्षा करने में भी आर्तध्यान की वृद्धि होती है ।

लेश्या छ प्रकार की हैं :—

(१) कृष्णलेश्या (२) नीललेश्या (३) कापोतलेश्या (४) तेजोलेश्या (५) पद्मलेश्या (६) शुक्ललेश्या ।

खाने पीने की लालसा से, बचत की लालसा से, तपस्वी कहलाने की लालसा से या तप करने के पीछे इन्द्रियों की क्षीणता से उत्पन्न होनेवाले दुख या खेदसे तपश्चर्या नहीं करना चाहिये ।

एक स्त्री नव मास दुख उठाकर बालक को जन्म देती है । और वह बालक जन्म लेने के साथ में ही मृत्यु को प्राप्त होता है । यह संसार एसा विचित्र है ।

कर्म जड हैं फिर भी उसका साम्राज्य बहुत है। वह भलभलों को बड़े बड़ों को नरक में ले गया है। इसलिये उसके साथ मित्रता करने लायक नहीं है किन्तु लड़ाई करने लायक है ।

दश वैकालिक सूत्रमें लिखा है कि साधु भिक्षा के लिये जाता है है वहां गृहस्थ के घर बहुत होने पर भी गृहस्थ वहोरावे उतना ही लेना चाहिये लेकिन मांग के नहीं लेना चाहिये ।

जैसे विष्टा का कीडा विष्टा में ही आनन्द मानता है उसी तरह कामरागी जीव कामराग में ही आनन्द मानते हैं ।

श्राद्ध विधि सूत्रमें लिखा है कि सुबह देव गुरुको

वन्दन करके ही बादमें पानी मुंहमें डालना चाहिये। यह भाव श्रावक का कर्तव्य है।

भक्ति ये मुक्ति को खेंचने वाली है। इसी लिये एक स्तवन में कहा है कि :—

"मुक्ति थी अधिक तुज भक्ति मुजमनवसी" तुम्हारे दिलमें भक्ति राग ज्यादा है कि मुक्ति राग?

धर्म मनुष्यों को द्रव्य देव कहा जाता है। क्योंकि वे धर्म करके देवलोक में जानेवाले हैं।

अपने स्वार्थ के लिये अन्य को ठपको (उलाहना) देने पर उसको बुरा लगे तो वह भी हिंसा कही जाती है।

साधु अगर कपड़े मलीन हों तो ठीक किन्तु अगर श्रावक कपड़े मलीन हो तो दूषण माना जाता है।

जिस श्रावक को ब्रह्मचर्य का नियम हो उसे रुई की की गादी के ऊपर नहीं सोना चाहिये।

जो कोई भी प्राणी को मारने का विचार करता है। वह उसके साथ वैर बन्धन करता है। वह अगर इस भवमें वैर नहीं ले सके तो परभव में तो लेनेवाला ही है।

संसार की वस्तुयें देना वह द्रव्य उपकार है। और धर्म विना जीव को धर्ममार्ग में जोडना और धर्माराधन की अनुकूलता कर देना भाव उपकार है।

जिनेश्वर कथित सर्व वस्तु को माने और एक वस्तु नहीं माने तो निन्हव कहलाता है। श्री महावीर प्रभुके शासन में सात निन्हव हुये हैं।

किसी के ऊपर खोटा कलंक चढाने से भवांतर में अपने ऊपर कलंक आता है। इसलिये सुज्ञ मनुष्य को विना देखा कुछ भी नहीं बोलना चाहिये।

खुद किये हुये सुकृत्यों की प्रसिद्धि में सिर्फ "वाह वाह" प्राप्त कर सकता है। किन्तु उससे अधिक कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

कर्म जब बलवान बनता है तब आत्मा गरीब बन जाता है। और जब आत्मा बलवान बनता है तब कर्म पांगला बन जाता है।

छद्मस्थ जीव चर्मचक्षु के द्वारा आत्मा को नहीं देख सकते हैं। और केवलज्ञानी तो केवल चक्षु के द्वारा आत्मा को देखते हैं। केवलज्ञानी संसार के सूक्ष्म-बादर, रूपी-अरूपी सब पदार्थों को देखते हैं।

आठ द्रष्टि की सज्झाय में बताई हुई आठ द्रष्टि में से तीन द्रष्ठि तक समकित नहीं होता है।

सातवें गुणस्थानक में ऊंचा धर्मध्यान आता है। कारण कि सातवें गुणस्थानक से अप्रमत्त दशा आती है।

द्रष्टिराग ये दोष है। लेकिन गुणानुराग ये गुण है। देव, गुरु और धर्म के प्रति वर्तताराग गुणानुराग है।

अमुक साधु को वन्दवा और अमुक साधु को न हिं वन्दवा ये द्रष्टिराग कहलाता है। उसमें अतिचार लगता है।

जो आदमी जिससे धर्म प्राप्त किया हो उसका अधिक सत्कार करे उसमें विरोध नहीं है। किन्तु दूसरे का तिरस्कार करे ये योग्य नहीं है। तुम सब द्रष्टिराग के त्यागी बनकर गुणानुराग के पुजारी बनो यही मनः कामना।

व्याख्यान—नौवां

श्रमण भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि जगत के जीव कर्म करनेसे भारी होते हैं और धर्म करने से हलका होते हैं, (अर्थात् कर्म करने से वजनदार होते हैं यानी संसार रूपी सागर में नीचे नीचे डूबते जाते हैं और धर्म करनेसे कर्मोंका वजन कम होता जाता है।)

धर्मी आत्मा तत्व की बातें सुनकर हृदय में उतारता है। त्रस अथवा स्थावर दोनों में से किसी की भी हिंसा करने पर जीव कर्म बांधता है।

वीतराग के धर्मको प्राप्त हुआ जीव मार्ग में जाता हो और रास्ते में लाख रुपये का हीरा पड़ा हो तो भी वह नहीं लेता है। क्योंकि वह समझता है कि "नाठुं पडयुं पण विसरिये" जिसकी रामायण हो जाय एसी कोई भी प्रवृत्ति धर्मी मनुष्य नहीं करता है। प्रमाणसे परिग्रह रखना तय करो। लोभ ये सब पापोंका मूल है। इसलिये लोभको रोकने के लिये प्रयत्नशील बनो। लोभको घटावे और संतोष को बढावे उसका नाम धर्मी।

कर्म से भारी बना हुआ आत्मा दुर्गतिमें जाता है। कर्म से हलका बना आत्मा देवलोक में जाता है और कर्मसे सर्वथा मुक्त बना आत्मा मोक्षमें जाता है।

जो आदमी दूसरों का बिगाड़ना चाहता है उसका पहले बिगड़ता है। एक आदमी हाथ में कीचड़ लेकर

दूसरे के ऊपर डालने जाय तो सामनेवाला मनुष्य थोड़ा सा खिसक जाय तो उसके कपड़े नहीं बिगडें किन्तु जिसने हाथमें कीचड़ लिया हो उसके बिगड़ ही जानेवाले हैं।

अविरतिपना संसार में रखडाने वाला है परन्तु विरतिपना संसार से तारने वाला है।

धर्म करते समय सिंहके पुरुषार्थ से करना चाहिये। जिससे धर्म की प्रशंसा हो और दूसरे भी अनुमोदना के द्वारा पुण्योपार्जन कर सकें।

देव विमान शाश्वत हैं। अपने विमानों को छोड़कर दूसरों के विमानों में नहीं जा सकते हैं। साधुको जैसे उपधि कम हैं उसी तरह उपाधि भी कम हैं और संसारी को भी ज्यों ज्यों परिग्रह कम त्यों शान्ति अधिक।

श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज फरमाते हैं कि अगर गरम घी से चुपड़ी रोटी मिल जाती है, सांधा बिना (यानी बिना फटा) वस्त्र मिल जाता है तो धर्मी मनुष्य को सन्तोष हो जाता है। आजकल के लोगों को पेटकी अपेक्षा पटारे की चिन्ता अधिक है। जो आदमी धर्म को प्रधान तरीके मानता है, लक्ष्मीं उसीकी दासी होकर के रहती है।

संसार की आधि व्याधि और उपाधि रूप त्रिताप को शान्त करने वाला वीतराग प्रणीत धर्म ही है।

चौबीस घन्टों में अधिक चिन्ता आत्मा की करते हो कि शरीर की? जैन शासन को प्राप्त हुये आत्मा तृष्णां के त्यागी होते हैं।

संसारी पदार्थ के ऊपर उनको मूर्च्छा नहीं होती है। जीभको नहीं रुचे एसा भोजन मिलने पर भी कुछ

भी बोले बिना उसे खा ले उसका नाम है धर्मी। और अच्छे से अच्छे आहार की प्राप्ति में आसक्ति नहीं करे उसका नाम धर्मी।

स्वाभाविक रीत से और गुरु उपदेश दे इस तरह समकित की प्राप्ति दो तरह से होती है।

कंदमूल के भक्षण से विकार उत्पन्न होता है इस लिये उसका त्याग करना चाहिये।

मार्गानुसारी के ३५ गुणों में से पहला गुण "न्याय से धन प्राप्त करना" यह है।

साधु आश्रव की प्रवृत्ति के त्यागी होते हैं। जैसे किसी गाँव में पानी अल्प होने से वहां के श्रावक साधु से पूछें कि साहब, कुआ खोदें? तो साधु महाराज जवाब न हीं देते हैं। क्यों कि खोदने की स्वीकृति देते हैं तो आश्रव की क्रिया होती है। और नहीं कहते हैं तो बहुत से आदमी प्यासे रहें। इस लिये कुछ अच्छे कामों का साधु उपदेश देते हैं। आज्ञा नहीं देते हैं।

खिचड़ी में हल्दी डाली हो तो वह खिचड़ी आयंबिल में श्रावक को नहीं खप सकती परन्तु साधु महाराज को खपती है (अर्थात् श्रावक नहीं खा सकता है)।

संसारी सुख की प्राप्ति में उद्यम करना पड़ता है। तो फिर मोक्षकी प्राप्ति तो उद्यम के विना कैसे हो सकती है? धर्म तत्व को नहीं समझनेवाले तुच्छ वस्तुओं के लिये लड़ पड़ते हैं।

श्रावक अपने घरमें अच्छी वस्तु बनावे तो वह पहले जिन मन्दिर में रखता है।

जिस घरमें बिलकुल धर्म नहीं होता है उस घरमें आत्मा की रामायण (चर्चा) कम और ऐहिक सुखों की रामायण अधिक होती है। जो आदमी जिनवाणी का नित्य श्रवण करता है वह पाप करते हुये अचकाता है। उसे पाप का डर रहता है। मोहनीय कर्म जब तक नाश नहीं होता है तब तक मोक्ष नहीं मिलता है।

जीव एक भवमें नये एक भवका आयुष्य बांधता है किन्तु नये दो भवका आयुष्य नहीं बांध सकता है।

पार्श्व प्रभु के साधु और महावीर भगवान के साधु एक समय इकट्ठे हुये। तब पार्श्व प्रभु के साधु महावीर के साधुओं से कहते हैं कि तुम सामायिक और उसका फल, संयम पच्चक्खाण, संवर और काउस्सग्ग को नहीं जानते हो। यह सुनकर महावीर प्रभु के साधु जवाब देते हैं कि आत्मा समता भावमें रमे उसका नाम सामायिक। पच्चक्खाण करना उसका नाम त्याग कहलाता है। जिस आदमी ने विरति नहीं की वह आदमी अमक्ष्य वगैरह कुछ भी न खाय फिर भी वह त्यागी नहीं कहलाता है। नहीं खाने पीने पर भी आश्रव लगता है। संसार के विषयों की तरफ जा रहीं इन्द्रियों को रोकना उसका नाम है संयम। संयम अर्थात् संवर। आश्रव के विना रोके संवर नहीं आ सकता है। काया के व्यापार का त्याग करना उसका नाम काउस्सग्ग है। ज्यों ज्यों काया को कष्ट दिया जाता है त्यों त्यों कर्म का भुक्का होता है।

आवश्यक अर्थात् अवश्य करने लायक करनी। वह छः प्रकार की है :—

(१) सामायिक, (२) चउवीसथ्थो (३) वन्दन (४) (४) पडिक्कमण (५) काउस्सग्ग (६) पच्चक्खाण। प्रतिक्रमण छ आवश्यक युक्त होते हैं।

चौदह राज प्रमाण लोकाकाश के पहले राजमें सात नारकी, उसकी पीछे के पांच राजमें बारह देवलोक, उसके पीछे दो राजमें नव ग्रैवेयनु और पांच अनुत्तर मनुष्य तथा तिर्यंच रत्नप्रभा पृथ्वी के ९०० योजन नीचे और ९०० योजन ऊपर मिलकर के १८०० योजन में रहते हैं।

संयमी आत्मा की प्रशंसा करना और असंयमी की दया चितना ये धर्मी पुरुष का कर्तव्य है।

मृत्यु तीन प्रकार से होती है :—

(१) बालमरण (२) बाल पंडित मरण (३) पंडित मरण। एक भी व्रत को लिये विना जो मरण होता है उसे बालमरण कहते हैं। थोड़े भी व्रत को लेकर जो मरण होता है उसे बाल पंडित मरण कहते हैं। और सर्व विरति पूर्वक मरे उसे पंडित मरण कहते हैं। पंडित मरण से होनेवाली मृत्यु श्रेष्ट गिनी जाती है। अगर यह न बने तो बाल पंडित मरण के विना नहीं मरने का तय कर लेना चाहिये।

पूरे शरीर में स्नान करना उसका नाम सर्व स्नान है। और हाथ पैर मुख आदि अवयव धोना उसका नाम है देश स्नान। साधु दोनो स्नान के त्यागी होते हैं।

जो बारह व्रत के पालन करने में तत्पर रहता है, दुखी दीन के प्रति अनुकम्पा करता है और सात क्षेत्रों में धन खर्चता है उसे महाश्रावक कहते हैं।

महा मुनि भूमिको शय्या माननेवाले होते हैं।

जिनकल्पी मुनि रोज लोच करते हैं । स्थविरकल्पी मुनि छः छः महीने अथवा चार चार महिने लोच करनेवाले होते हैं ।

नव गुप्ति का पालन करने से संयम अच्छी तरह से सचवाता है । रस झरती वस्तुओं के खाने से गुप्ति का खंडन होता है। इसलिये एसी विगड़ने वाली वस्तुओं का त्याग करना चाहिये ।

भूख से कम खाना उनोदरी तप कहलाता है वह छः प्रकार के बाह्य तपों में से दूसरे प्रकार का बाह्य तप है ।

घर वालों को सागार कहा जाता है। और घरवार छोड़ के साधु बननेवालों को अनगार कहा जाता है ।

कर्म का ध्वंस करने के लिये पश्चात्ताप ये उत्तम रसायन है । पापकर्म हो जाने के पीछे पश्चात्ताप हो तो पाप धुल जाता है ।

अर्जुनमाली, दृढ प्रहारी वगैरह तश्चात्ताप से ही महात्मा बने ।

साधु के लिये बनाया गया भोजन आधाकर्मी कहलाता है । आधाकर्मी आहार करने से प्रायश्चित्त आता है ।

पाप के चार प्रकार हैं।—

(१) अतिक्रम (२) व्यतिक्रम (३) अतिचार (४) अनाचार । उसमें पाप करने की इच्छा करना अतिक्रम है। पाप करने के लिये कदम उठाना व्यतिक्रम है। और वाह्य पाप करना वह अतिचार है । और पाप करके संतोष मानना अनाचार है ।

जो तुझमें गुण नहीं हैं तो प्रशंसा की कांक्षा क्यों

करता है। और जो तुझमें गुण होंगे तो जगत तेरी प्रशंसा किये विना रहेगा नहीं।

कच्चा दही, छाश (मट्ठा) दूधमें कठोल खानेसे विदल (द्विदल) होता है, उसमें त्रस जीवों की हिंसा होती है।

जैसे स्विच दवाने से प्रकाश हो जाता है उसी तरह कच्चे गोरस में कठोल का स्पर्श होते ही त्रस जीव (दो इन्द्रियादि) उत्पन्न हो जाते हैं।

घरमें रहने पर भी समकिती जीव साकर (मिश्री) की तरह रहे। जिस तरह मक्खी साकर ऊपर बैठती है और जब चाहे उड़ जाती है। इसी तरह श्रावक भी घरमें रहे और जब मन हो कि जल्दी से संसार छोड़ दे। ऐसे श्रावक को साकर की मक्खी के समान कहा जाता है।

धन्ना शालिभद्र जैसे पुण्यशालियों को भोग-विलास की कमी नहीं थी। वे साकर की मक्खी जैसे थे।

जब मन हुआ कि उसी समय आठ और बत्तीस देवांगना जैसी पत्नियों को त्यागनेमें इनको देर नहीं लगी। ऐसे महापुरुषों के नाम शास्त्रमें अमिट हों इस तरह लिख गये हैं, टांक दिये गये हैं।

तुम्हें भी तुम्हारा नाम शास्त्रमें टंकाना है ना? अगर हां कहते हो तो जीवन अच्छा बनाना पड़ेगा।

उन्नत जीवन बनाने के लिये सामर्थ्यवान बनो
यही मंगल कामना।

व्याख्यान–दशवाँ

परम उपकारी भगवान श्री महावीर परमात्मा फरमाते हैं कि जीवकी हिंसा करनेवाला जीवकी अनुमति के विना जीवको मारता है इससे जीवकी चोरी कहलाती है अर्थात् हिंसा करनेवाला हिंसा का पाप तो करता ही है किन्तु चोरी का पाप भी करता है।

जो साधु निर्दोष भोजन करता है वह वन्धनवाली कर्म की गांठको हलकी (ढीली) करता है, अर्थात् उसके कर्मों का वन्धन हलका होता है। जो गृहस्थ साधु को दूषित भोजन कराके गोचरी वहोराते हैं वे अल्प आयुष्य को वांधते हैं और जो निर्दोष गोचरी वहोराते हैं वे दीर्घ आयुष्य को वांधते हैं।

गृहस्थ के घरमें से अगर पानी गटरमें जाता है तो गृहस्थको पाप लगता है, इसलिये भावश्रावक को उसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

यह मस्तक ऊँचा अंग कहलाता है इसलिये हर जगह जहां–वहां नमता नहीं है किन्तु समकिती का मस्तक देव गुरु और धर्मको ही नमता है।

भावश्रावक सूर्यास्त के ४८ मिनट पहले पानी ले लेता है। उसके वाद प्रतिक्रमण करने वैठता है। वंदित्तु आता है तव सूर्यास्त हो जाता है। प्रतिक्रमण करने के

बाद श्रावक साधु-भगवंतों की सेवा-भक्ति करता है। उसके बाद घर जाकर के घरके सभी सदस्यों को इकट्ठा करके तत्व की बातें करता है, धर्म-गोष्ठी करता है। आत्मकल्याण की बातें करता है।

कर्म की मूल प्रकृति आठ हैं और उत्तर प्रकृति १५८ हैं। उसमें अस्थिर कर्म परिवर्तन पा सकते हैं। निकाचित कर्मों को तो भोगे बिना छुटका ही नहीं है, अर्थात् कर्म तो भोगना ही पड़ते हैं।

मैं भवी हुं कि अभवी? एसा विचार जिसको आता है वह भवी है। सिद्ध क्षेत्रकी जो स्पर्शना करते हैं वे भवी कहलाते हैं। तीर्थंकर परमात्मा के हाथसे जो वर्षी-दान लेते हैं वे भवी कहलाते हैं।

जीवनमें भूल होना स्वाभाविक है। किन्तु हुई भूलका प्रायश्चित्त लेना उसमें महानता है। जिस तरह बालक मनकी सब बात बोल देता है, उसी तरह बालक की रीत के अनुसार शुद्ध भावसे की हुई तमाम भूलोंको कह देने से उन भूलों से लगे हुए पाप नाश हो जाते हैं। जन्मे वहां से लेकर आज दिन तक इस जीवनमें की हुई तमाम भूलों का प्रायश्चित्त लेना उसका नाम-भवालोचना है। सभी धर्म प्रेमियों को भवालोचना लेनी चाहिये, अगर न ली हो तो गीतार्थ गुरु के पास जाकर लेना एसी मेरी तुम्हें खास भलामण, सिफारिश है।

मन्हजिणाणं की सज्झाय में कहा है कि "करण दमो चरण परिणामो।" इन्द्रियों का दमन करने वाला और चारित्र के परिणामवाला भावश्रावक कहलाता है। राग तरफ जानेवाली इन्द्रियों को त्याग रूपी रस्सीसे बांधना उसका नाम दमन है।

तुम्हें साधु-साध्वीको देखकर अधिक आनन्द आता है कि पुत्र-पुत्रियोंको देखकर? जो पुत्र-पुत्रियोंको देखकर आनन्द आता हो तो समझ लेना कि अभी सच्ची रीतसे धर्मदशा नहीं है, सगे-सम्बधियों पर अधिक प्रेम है कि सार्धमिक ऊपर ?

स्वयं वाचन करने से जो आनन्द आता है उसकी अपेक्षा जिनवाणी का श्रवण करने से अधिक आनन्द आता है।

भाषा वर्गणा के पुद्गलों के द्वारा अपन बोलते हैं। वे पुद्गल समग्र लोक में प्रसरित हो जाते हैं।

अपने शरीरमें से निकलते हुये पुद्गलो को केमरा में पकड़ लिया जाता है जिससे अपना फोटो-प्रतिबिम्ब उसमें उपस आता है यानी केमरामें खिंच जाता है।

असार एसे शरीर से सार भूत धर्म का आराधन करना उसी का नाम शरीर की सार्थकता है।

श्री जिनेश्वर भगवान सर्जन डाक्टर हैं। उनकी आज्ञा में विचरते साधु महात्मा कम्पाउन्डर हैं। तुम दरदी हो। भवरूपी दर्द तुम्हें लगा है। तो उस दर्द को दूर करने के लिये ही तुम हमारे पास आते हो?

भगवान के समक्ष तुम साथीया करके कहते हो कि हे भगवान, मुझे अब चार गतियों में नहीं जाना है। तीन ढगली करके कहते हो कि अब मुझे सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यक चारित्र चाहिये। इस के बाद तुम सिद्ध शिला का आकार करते हो उसका मतलब है कि जहां सिद्ध के जीव रहते हैं उस सिद्ध शिला पर मुझे जाना है। यह तुम्हारा करार है वह सच्चा है? हां साहेब। क्या हां

साहेब ? जरा समझ के बोलना । हां बोलने के बाद उस का अमल करना पड़ेगा ।

पहले गुण स्थानक वाले में भी भद्रिकता हो सकती है । क्यों कि भद्रिकता आये बिना धर्म प्राप्त कर सकता नहीं है ।

भाव श्रावक धर्म स्थानक में से जब घर जाय तो उदासीन मन से जाय । और घर से धर्मस्थानक में जाय तो हर्षोल्लास पूर्वक जाय । धर्म क्रिया मनके उल्लास पूर्वक करनी चाहिये । और संसारी क्रिया मनके उल्हास रहित पने से करनी चाहिये ।

मास क्षमण अथवा सोलमथ्था जैसी बड़ी तपस्या करनेवालों में से जो कोई देवदर्शन में भी प्रमादी बनते हैं तो कहना पड़ेगा कि उनने तपस्या तो की मगर तपस्या का मर्म समझे नहीं हैं ।

उपशम श्रेणी वाला कर्मको दबाता दबाता जाता है । इसलिये ग्यारहवें गुणस्थान में जाकर नीचे गिरता है ।

चौदपूर्वी जैसे भी कुछ जीव उपशम श्रेणी करने के बाद ग्यारहवें गुणठाण (गुणस्थान) से गिरकर निगोदपने को प्राप्त करते हैं । जो चढ़ने के बाद गिर जाते हैं उनको फिर चढ़ने की इच्छा होती है । इसलिये नहीं चढे उनसे तो चढके जो गिर गये वे अच्छे हैं । एक दफे उसने स्वाद चखा हो उसको स्वाद चखने का मन फिर से होता है ।

भगवान की कही बहुत बातें माने, परन्तु थोड़ी न माने उसे निन्हव कहते हैं । परन्तु बहुत न माने और थोड़ी माने उसे महा निन्हव कहते हैं ।

जो साधु बिलकुल पढे नहीं हो किन्तु पूरी श्रद्धा रखते हों तो मोक्ष जा सकते हैं। और तपश्चर्या आदि सब करते हों परन्तु श्रद्धामें खामी हो तो मोक्ष नहीं जासकते हैं।

सामायिक में भी संसारी विचार करने वाले को सामायिक कैसे तार सकती है।

नारकी में रहनेवाले समकिती जीव वेदना को समभावे सहन करते करते विचार करते हैं कि हंस हंसकर के पूर्व में जो कर्म बांधे हैं वे यहां भोगना ही हैं। वे परमाधामी देवों की तरफ नहीं देखते हैं किन्तु कर्म को तरफ देखते हैं। जैसे सिंह तरफ कोई गोली चलावे तो सिंह गोली तरफ नहीं देखकर के गोली चलानेवाले की तरफ देखता है।

जो माता पिताकी आज्ञा मानने वाला होता है वही दीक्षा लेने के योग्य है। माता पिता की आज्ञा नहीं मानने वाला दीक्षा लेने के अयोग्य है। माता पिता और धर्मदाता गुरु के उपकार का बदला नहीं चुकाया जासकता है। ठाणांग सूत्रमें कहा है कि–पुत्र अपने माता पिताको सुन्दर स्वच्छ पानी से स्नान करा के सोने के पाटले पर बैठा के पांच पकवान्न और रसवती खिलावे और पंखा से पवन करे तो भी माता पिताके उपकार का बदला नहीं चुका सकता है। किन्तु अधर्मी माता पिता को धर्म प्राप्त करावे तो बदला चुका सकता है।

उपकारी के उपकार को नहीं भूले वह सज्जन और उपकारी के उपकार को भूल जाय वह दुर्जन।

आगे की स्त्रियां दुखमें अपने कर्म का दोष मानती थीं। लेकिन अपने पति का दोष नहीं मानती थीं।

वडील को देखकर ही हाथ जुडजायें मस्तक नम जाय यानी सिर झुक जाय उसका नाम है विनय। एसा क्या तुम्हारे घरमें है?

नारकी के समकिती जीवों को अवधि ज्ञान होता है। इसलिये उस ज्ञानके द्वारा स्वयं पूर्व किये कर्मों को देखते हैं। और समतापूर्वक समय पसार करते हैं।

नारकी के जीव कोई पच्चक्खाण नहीं कर शकते हैं। इसलिये वहां समकिती जीव भी अविरति ही होते हैं।

वीतराग शासन को प्राप्त हुआ श्रावक अपनी सम्पत्ति के चार भाग करे। एक भाग तिजोरी में रक्खे। एक भाग व्यापार में लगावे। एक भाग घरखर्च के लिये रक्खे। और एक भाग धर्म में लगावे।

अज्ञानी आत्मा संसारी प्रवृत्ति में कष्ट सहन करने को तैयार हैं परन्तु धर्मकार्य में कष्ट सहन करने को तैयार नहीं हैं।

जिसकी अपने द्रव्य से पूजा करने की शक्ति नहीं है एसा श्रावक जिनमंदिर में जाकर के कचरा साफ करे तो यह भी पूजा है। केसर चन्दन के द्वारा होने वाली नव अंगको पूजा ही पूजा है एसा नहीं मानना।

आचारांग सूत्रमें कहा है कि जीव मेरा मेरा करके मृत्यु को प्राप्त होते हैं और दुखी होते हैं।

समकित द्रष्टि गृहस्थ दो प्रकारके होते हैं (१) असंयत और (२) संयतासंयत। जिसने कुछ भी व्रत नहीं लिये वह असंयत और अमुक अंश में व्रत लिये हों वह संयता संयत।

तिर्यंच भी देश विरतिधर हो सकता है। उसकी तीन क्रियायें होती हैं आरंभ-समारंभ, परिग्रह और माया।

पांच इन्द्रियों के तेईस विषयों को भोगने का राग होना कामराग है। देवों को कामराग की अनुकूलता विशेष होती है। घरके सगे सम्बन्धियों के ऊपर जो राग होता है उसे स्नेहराग कहते हैं। निर्गुणी को भी गुणी मानना ये द्रष्टि राग है। कामराग और स्नेहराग छोड़ना सरल है किन्तु द्रष्टि राग छोड़ना कठिन है।

अमुक वस्तु विना नहीं चले इसका नाम है व्यसन। किसीको भी पापकी सलाह नहीं देना। वनसके तो धर्म की सलाह देना। न वने तो मौन रहना। यही जैन शासन का उपदेश है।

यह उपदेश हृदयमें उतारके कल्याण साधो।

व्याख्यान—ग्यारहवां

परम उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि आर्तध्यान करने से तिर्यंचगति बंधती है। रौद्रध्यान करने से नरकगति कर्म बंधता है। धर्मध्यान से मानवगति और शुक्लध्यान से मोक्ष मिलता है।

समझदार मनुष्य विचार करे कि "मैंने पाप किया है वह किसीने नहीं देखा" परन्तु अनन्त सिद्ध भगवंतो ने देखा। विचरते केवलज्ञानियोंने देखा है और कर्म राजा सजा किये विना छोडनेवाले नहीं हैं।

ज्यों ज्यों इन्द्रियों के विकार अधिक त्यों त्यों दुःख भी अधिक और ज्यों ज्यों विकार कम त्यों त्यों सुख अधिक।

एक माताके पेटसे एक ही साथ जन्मे हुए दो बालकों में से एक होशियार और एक मूर्ख होता है। एक सुखी और एक दुःखी होता है एसा भी बनता है। इसके ऊपर से कर्म का अस्तित्व सिद्ध होता है।

कर्मके हिसाब से ही संसारमें एक शेठ है, एक नौकर है, एक पति है, एक पत्नी है। एक शिष्य है, एक सेव्य है, एक सेवक है। एक सुखी है, एक दुःखी है। ये सब कर्म की लीला है।

नारकी के भेद १४, तिर्यंच के भेद ४८, मनुष्य के भेद ३०३ और देवके भेद १९८।

मद् आठ प्रकार के हैं। उनमें से जिस विषय का मद् किया जाता है उस विषयका संयोग भवांतर में हीनःपनेको प्राप्त होता है।

अधूरा घडा छलकाता है, पूरा घडा नहीं छलकाता है। पूरा ज्ञानी सागर की तरह गम्भीर होता है और अधूरा ज्ञानी उथला होता है। साधु को कोई वंदन, प्रशंसा करे तो हर्ष नहीं प्राप्त करता है और कोई निन्दा करे तो शोक भी नहीं करता है।

उपधान तप का अर्थ है साधुपने की वानगी और उपधान की माला अर्थात् मोक्षकी माला।

हरेक का आत्मा एक समान है, कोई भेदभाव नहीं है। भेदपना दिखाता है वह कर्मके संवन्ध के कारणसे। कर्मके संवन्व से रहित आत्मामें जरा भी भिन्नता दिखाती नहीं है।

कर्मों को उपशमा करके आगे वढ़ता है वह उपशम श्रेणी और कर्मों को खिपा करके आगे वढ़ता है वह क्षपक श्रेणी।

जो साधु वनता है वह एक माता का त्याग करके आठ माताओं की शरणमें आता है। जवतक मोक्षमें नहीं जाता तव तक अष्ट प्रवचन माता की गोद में खेलना पडता है।

आठों कर्मों का वाप मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। मोहनीय कर्म के २८ भेद हैं। धम करने का अर्थ होता है मोहनीय कर्म के साथ लडाई करना। अर्थात् अगर मोहनीय कर्म का जीतना हो तो धर्म करो।

चक्रवर्ती का बल कितना? चक्रवर्ती एक हाथ में जीमने का काम करें और दूसरे हाथमें सांकल का छेडा पकडा हो, उस सांकल को चौदह हजार मुकुटबद्ध राजा एक साथ अपनी तमाम शक्ति से खींचे तो भी जरा भी हिल नहीं सकता हैं। यह है चक्रवर्ती का बल।

यह बल कहां से आया? मालूम है? कसरत करने से आया? अच्छे अच्छे पकवान खाने से आया? अगर इस तरह आता हो तो तुम बांकी रखो? तो कहां से आया? समझ लो कि वह बल पूर्व की तपश्चर्या से आया।

निद्रा पांच प्रकार की है :—

(१) निद्रा (२) निद्रा-निद्रा (३) प्रचला (४) प्रचला प्रचला (५) थीगद्धी। एक ही आवाज से जग जाय उसे निद्रा करते हैं। जरा कठिनाई से खूब हिलावे तब जागे उसे निद्रा निद्रा कहते हैं। बैठो बैठो अथवा खड़ा खड़ा ऊंघे वह प्रचला कहलाती है। और चलते चलते ऊंघे वह प्रचला प्रचला कहलाती हैं। दिनमें अथवा जागृत अवस्था में करने के अशक्य एसा काम करने की शक्ति जिस निद्रामें आती है उस नद्रा का नाम है थीगद्धी। काम कर ले फिर भी उसकी कोई भी खबर पीछे से अपने को भी यानी खुदको भी इस निद्रासे मालूम नहीं पड़ती है। प्रथम संघयनवालों को इस निद्रा में अर्ध वासुदेव का बल आ जाता है।

जहां भूख नहीं लगती, प्यास नहीं लगती, बीमारी नहीं होती, नींद की जरूरत नहीं होती एसा स्थान मोक्ष है।

कांक्षा मोहनीय कर्म प्रमाद से बंधाता है। अशुभ विचारों से बंधाता है।

अज्ञान जैसा जगत में कोई रोग नहीं है। अज्ञानता पूर्वक की गई क्रिया मोक्ष प्रापक नहीं बनती है। जिन कर्मों को खिपाने के लिये अज्ञानी को करोडों पूर्व वर्ष लगते हैं उतने कर्मों को ज्ञानी एक श्वासोच्छ्वास में खिपा देता है।

लग्न होने के बाद समकिती स्त्री अपने पति को कहे कि मुझे वैराग्य नहीं आया इसी लिये मैं तुम्हारे घर में आई हूँ। जब वैराग्य आयेगा तब तुम्हारा भी त्याग करने में देर नहीं करूंगी। परन्तु जब तक वैराग्य नहीं आयेगा तब तक आपकी आज्ञांकित चरणरज के रूप रह कर के पतिभक्त बनी रहूंगी।

मोक्ष को ले जाने वाले ज्ञान को नहीं माने और संसार में रखडाने वाले ज्ञान को ज्ञान माने उसका नाम मिथ्यात्व है। अपने स्वार्थ के लिये तो इन्द्र भी अपनी इन्द्राणि को मनाता है।

संसारी कामों में जैसा विनय है वैसा विनय जो धर्मस्थान में आजाय तो समझलो कि कल्याण नजदीक में है।

तप करो तो समता भाव रख के करो। पूजा की ढाल में कहा है कि—

"तप करिये समता राखी निज घटमां"।

मुझे ओली चलती है (अर्थात् मैं ओली का व्रत करता हूं) इस लिये शक्ति घट गई है। एसा चिंतवन करना मन का प्रमाद है। अशक्ति अधिक है इसलिये आवश्यक क्रिया बैठ के करता हूं इसका नाम वचन प्रमाद है। मुझे थोड़े दिन के बाद तप करना है इस लिये काया को संभालता हूं इसका नाम काया का प्रमाद है।

केसरी सिंह वर्ष में एक वक्त संसार का सेवन करता है। उसका मनोबल कितना मक्कम (दृढ) होगा ? कुत्ता नित्य संसार सेवता है क्यों कि वह हलके मनका होता है। धर्मी पुरुष सिंह जैसे होते हैं कुत्ता जैसे नहीं होते हैं।

अति चिन्ता करने से शक्ति घट जाती है। ज्ञानतंतु कमजोर होजाते हैं। शरीर क्षीण बनता है। इसी लिये बुद्धिशाली मनुष्य को चिन्ता का त्याग करना चाहिये।

एक राजा था। उसके एक रानी थी। राजा विष्णु धर्मी था। रानी जैन मतावलम्बी थी। कर्म के योग से दोनों का संयोग हुआ। रातको रोज राजा-रानी धर्म की चर्चा करते थे। राजा वैष्णव धर्म की प्रशंसा करता था और रानी जैन धर्म की कीर्ति गाथा गाती थी। राजा विचार करता था कि मेरी रानी वैष्णव धर्म को मानने लगे तो ठीक। लेकिन कब हो ? जैन धर्म ऊपर किसी तरह से अभाव हो तो। रानी विचार करने लगी कि मेरा प्रियतम राजा जैनधर्मी बने तो कितना अच्छा ! राजा जैनधर्मी हो जाय तो हम दोनों मिलकर के सुन्दर आराधना कर सकते हैं। एक दिवस सन्ध्या का समय था। राजा अपनी अगासी में चक्कर लगा रहा था। वहाँ उनकी दृष्टि सामने के वैष्णव मन्दिर में प्रवेश करते हुए जैन साधुके ऊपर पडी। राजा खुशी हुआ। सेवकों के द्वारा मालूम हुआ कि जैन साधु महाराज आज सन्ध्या के समय आयें हैं, सुबह आगे चले जायेंगे। यह सुनकर राजा खूब प्रसन्न हुआ। राजाने एक अभिनव युक्ति रची। राजा की युक्ति का अमल होनेमें कितनी देर लगती है ! राजा की आज्ञा हुई। रूपकला जैसी नगर की गणिका को जल्दी

हाजिर करो। गणिका आ गई। राजाने उसे सब बात समझा दी। वेश्याने मस्तक झुका के छुट्टी ली। राजाने दूसरी आज्ञा की, वैष्णव मन्दिर के पूजारी को हाजिर करो। आज्ञा का अमल होते ही पूजारी हाजिर हो गया।

अन्नदाता क्या हुक्म है? राजाने हुक्म किया कि मन्दिर बन्द करके मन्दिर की चावी मुझे दे जाव। पुजारी बोला जैसी आपकी आज्ञा। प्रथम प्रहर पूर्ण होने के साथमें ही मन्दिर की चावी आ गई। सोलह सिंगार सज करके गणिका हाजिर हो गई। गणिका को देखने के बाद राजा मूढ हो गया। अहा! कैसा अद्भुत रूप। देवांगना के रूपसे भी चढ जाय एसा यह कामण करने वाला रूप देख करके मुनि अवश्य पिगल जायेंगे। एसा राजाने विचार किया। मेरी योजना जरूर सफल होगी एसी राजाको प्रतीति हुई। गणिका से राजाने कहा कि मुनि का किसी भी हिसाब से पतन करना है। तेरे रूपमें समालेना। जा। इसके बाद वेश्याने मन्दिर में प्रवेश किया। बाहर का ताला लगा दिया गया। चावी राजा के शयनखंड में रख दी गई।

मन्दिर में प्रवेश करने के पीछे वेश्या देखती है तो मुनि की काया अलमस्त लगी। भर यौवन है। जो मुनिका संग हो तो वर्षों की अतृप्ति आज पूरी हो जाय। महादेव की विशाल मूर्तिके पास एक दीपक धीमे धीमे प्रकाश फैला रहा था। इस प्रकाश के तेजमें वेश्या का रूप अधिक दिप रहा था। वेश्या धीरे धीरे आगे बढ रही थी। मधुर गीतोंकी लहर गाती जाती थी। और मुनिके मनको चंचल करने के लिये अनेक तरह के हास्य

कटाक्ष करती थी। इकदम नजदीक में जाकर के मुनिको चिपक जाऊंगी एसे विचार के साथ वेश्या मंद मंद आगे चल रही थी। वहां भयंकर गर्जना हुई। खबरदार? एक कदम भी आगे नहीं वढाना। जों वढायेगी तो नुकशान होगा। भयंकर आवाज सुनकर वेश्या रुक गई। अनेक विचार चालू हो गये। अब एक कदम भी आगे वढने की हिमत नहीं रही। साधुका क्या भरोसा। क्षण भरमें भस्म करदें तो? वेश्या विचार में पड़ गई। विचारो के जालमें अटकी हुई वेश्या एक पत्थर की तरह दीवाल से टिक कर के खडी रही।

इधर मुनिवर विचार करते हैं कि सुवह मन्दिर खुलेगा। लोग मुझे और वेश्या को नजर से देखेंगे। किसी तरह के दोष के विना जैनधर्म की निन्दा होगी। इस निन्दा में से वचने के लिये क्या करना?

उत्सर्ग और अपवाद के जाननेवाले ही गीतार्थ कहलाते हैं। एसे गीतार्थ ही अकेले विहार कर सकते थे। इन मुनिराज के मनमें एक विचार सूझा। उसका अमल भी किया। शरीर ऊपर के वस्त्र सहित तमाम साधुता के उपकरणों को दियाकी सहायता से जलाकर भस्म वनाई और एक लंगोटी लगाकर के पूरे शरीर में भस्म लगा दी।

इधर राजा-रानी चर्चा कर रहे थे। राजा कहता था कि जैन साधुओं का कोई विश्वास नहीं करना चाहिये। वे तो स्त्रियों के साथ रातवास करते हैं। रानीने कहा-हे स्वामीनाथ, जैन साधु के वारेमें ऐसा कभी नहीं हो सकता है। राजाने कहा-सुवह सव वात नजर से दिखा

दूं तो? राजा-रानी अलग होकर के अपने अपने शयन गृहमें चले गये। राजा खूब ही आनन्द में था। सुबह जैन साधुकी पोल-पट्टी खुली करूँगा इसलिये जैन धर्मकी निन्दा सुन करके रानी जैन धर्म छोड़ देगी। इस तरह आनन्द ही आनन्दमें राजा निद्रादेवी की गोदमें लिपट गया।

प्रभात की झालर बज उठी। मधुर गीतों का मंगल गान वातावरण में गूँज उठा। राजा जागृत हुआ, रानी भी जागृत हुई। महादेव के दर्शन करने के लिये हजारों दर्शनार्थी आ गये थे। पूजारीने आकर के महाराजा से चाबी देने को विनंती की। राजाने कहा चलो, आज तो द्वार खोलने की धार्मिक क्रिया मैं ही करूँगा और महादेव के दर्शन करके धन्य बनूँगा।

राजा-रानी राजभवन में से बाहर आये। लोगोंने जयनाद गजा दिया। वातावरण आनन्दित बना। सबके नमस्कार झीलते झीलते राजा-रानी ठेठ मन्दिर के मुख्य द्वारके पास आए। लोगोंने फिरसे जयनाद गजा दिया। दर्शन की उत्कंठा बढ़ने लगी। वातावरण में नीरव शान्ति फैली। महाराजा ने खूब ही प्रसन्नचित्त से मन्दिर का द्वार खोला। महादेव भगवान की जयसे वातावरण गूँज उठा। एकाएक आश्चर्य फैल गया।

मन्दिर में से अलख! अलख के गगननादी आवाज करते हुए बावाजी निकल पड़े। महात्मा को आता हुआ देखकर लोगोंने रास्ता कर दिया। उस रास्तेसे महात्मा चले गये। उसी पलमें वेश्या बहार निकली। एक बन्द मन्दिरमें से महात्मा और वेश्याको बाहर आता हुआ देख कर लोक- लागणी खूब ही दुःखी हुई। सभीको घृणा हो

गई। अररर! मन्दिर में ऐसा! ऐसे बाबा साधु!!! महादेव के भक्त गमगीन (दुःखी) हो गये। राजाका चेहरा उदास हो गया। उसी पल राजा-रानी राजभवन में चले गये। वेश्या भी बाहर निकल कर चली गई।

राजा वेश्यासे पूछते हैं कि यह क्या हुआ? तूने क्या किया? वेश्याने रातकी सब बात कह सुनाई। राजा के मनमें जैन साधुके लिये मान उत्पन्न हो गया। वेश्या के चले जानेके बाद रानी राजासे बोली-महाराज ये गुरु मेरे कि तुम्हारे? यह बात सुनकर राजा खूब शरमिन्दा हो गया। प्रसंग देखकर के रानी जैन धर्म के तत्वों को राजा को समझाती है।

राजा के दिलमें से जैन धर्म के प्रति द्वेष नाश हो गया और जैन धर्म की विशिष्टता समझने से राजा जैन धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धालु बन गया और रानी प्रसन्न हो गई।

महात्मा (जैन साधु) वहांसे विहार करके गुरु महाराज समीप आये। वेश जलानेका प्रायश्चित मागने लगे।

गुरु महाराजने कहा- महानुभाव! धर्म के रक्षण के लिये की गई क्रियामें दोष होने पर भी उस दोषका पाप नहीं लगता और प्रायश्चित्त भी नहीं है।

जैन शासन का गौरव बढाने में सर्व प्रयत्नशील बने रहो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–बारहवाँ

शासन के परम उपकारी शास्त्रकार महर्षि फरमाते हैं कि साधर्मिक के सगपन के समान अन्य कोई भी सगापन नहीं है।

घरमें एक आत्मा भी धर्म को प्राप्त हो तो घर के सभी मनुष्यों कों धर्म प्राप्त करा सकता है।

समकिती आत्मा वीतराग देव और पंच महाव्रत धारी साधु भगवंत सिवाय किसी दूसरे को मस्तक नमाते नहीं हैं।

वज्रकर्ण राजा को नियम था कि सुदेव-सुगुरु और सुधर्म सिवाय दूसरे किसी को भी सिर नहीं नमाना। अपने ऊपर के राजा को किसी समय नमस्कार करने जाना पड़े तो वहां नमस्कार किये विना चलता नहीं था। और अगर नमस्कार करे तो समकित मलीन होता था। खूब विचारके अन्तमें एक युक्ति शोध निकाली। हाथकी अंगूठी में मुनिसुव्रतनाथ की मूर्ति रखना। जब उपरी राजा को नमस्कार करने जाना हो तब पासमें रक्खी हुई अंगूठी में की मूर्ति को नमस्कार करना। राजा समझेगा कि मुझे नमस्कार करता है। नमस्कार की विधि भी पल जायेगी और प्रतिज्ञा भी रह जायगी।

राजा के शत्रु बहुत होते हैं। किसी शत्रुने उपरी राजा के कान भरे। महाराज, सुनो। यह तो अंगूठी में रक्खे हुये भगवान को नमस्कार करता है। जो आपको

परीक्षा करना हो तो वज्रकर्ण जब नमस्कार करने आवे तब अंगूठी निकलवा करके नमस्कार कराना बस। राजा को जो चाहिये था, मिल गया, राजा के कान होते हैं मगर ज्ञान नहीं होती है।

एक सुअवसर में वज्रकर्ण राजा नमस्कार करने को आया। राजसभा भरी हुई थी। मंत्री, सामन्त वगैरह यथास्थान बैठे थे। वहां वज्रकर्ण राजाने सभा में प्रवेश किया। निकटमें जाकर के वज्रकर्ण राजा नमस्कार करने गया। इतने में तो राजा की भयंकर आवाज आई। अंगूठी उतार के नमस्कार करो। तुम रोज़ मुझे ठगते हो। ऐसा नहीं चलेगा। मेरी आज्ञा का पालन करो। वज्रकर्णने खूब समझाया। लेकिन महाराजा नहीं माने। वज्रकर्ण वहां से सत्वर प्रवास करके अपनी नगरी में वापस चला गया।

नगरी के दरवाजे बन्द होगये। सीमाके सैनिक सजाग बन गये। गुप्त सेना पर संदेशा भेज दिया कि सत्वर हाजर होजाओ।

चतुरंगी सेना सज्ज हो गई। युद्ध की नौबत एकाएक बज उठी। यानी युद्ध का नगारा बजने लगा। वज्रकर्ण राजाको खबर थी कि मेरा सैन्य कम है, छोटा है। इसलिये जीतने की कोई आशा नहीं है। फिर भी जाते जाते युद्ध कर लेना है। लेकिन नमस्कार नहीं करना है। धर्म की कसौटी आती है तभी मालूम होता है कि दृढ निश्चय (मक्कमता) कितनी है?

इस ओर उपरी महाराजा अपनी प्रचंड सेना के साथ हुमला करने आगये। खूनखार लडाई शुरू होगई। लेकिन दरवाजा बन्द होने से महाराजा के पक्षमें खूब खुवारी

(सैन्योंका नाश) होने लगी। और वज्रकर्ण राजा के पक्ष में अल्प खुवारी (विनाश-सैन्योंका नाश) होने लगी। जो दरवाजा एकाध महीना तक नहीं खुलें और युद्ध एसे का एसा ही चले तो खुदकी सैना खत्म हो जाय। पूर्व दरवाजाके ऊपर रहनेवाले सैनिकों के साथ नीचे रह करके लड़ाई करना कहां तक चलाया जा सकता था।

इधर वनवास में निकले हुये राम, लक्ष्मण और सीताजी वहां के दक्षिण दिशाके उपवनमें आये। किसी राहगीर से युद्ध की हकीकत उनको मालूम होती है। रामचन्द्रजीने विचार किया कि यह तो साधर्मिक ऊपर आपत्ति आई है। आपत्तिमें पड़े हुये साधर्मिक को मदद करना ये अपनी खास फरज है। रामचन्द्रजी लक्ष्मणजी से कहते हैं कि जल्दी तैयार होजाओ। अभी के अभी नगरी में जाकर के राजा वज्रकर्ण से मिलना है। तीनों चले। दक्षिण के दरवाजे से थोडी तलाश कराके नगरी में प्रवेश करके सीधे राजमहल के पास जाकर के खड़े हुये वहां से एक पत्र नौकर के द्वारा राजाके पास भेजा। पत्र वांचकर के खुद महाराजा दौड़कर आये। पैरों में गिरे। और आशीर्वाद मांगने लगे। यह दृश्य देखकर सैनिक विचार करने लगे।

वज्रकर्ण की विनती को स्वीकार करके राम, लक्ष्मण और सीताजी राजभवन में पधारे। क्षेम कुशलता के समाचार पूछने के बाद वर्तमान में हो रही लड़ाई की बातें हुई रातको दश बजे गुप्त मंत्राणा हुई। सेनापति हाजिर हुये। महामन्त्री, नगर रक्षक आदि हाजिर हुये। वज्रकर्ण राजा कहने लगे कि अपना प्रबल पुण्योदय है कि अपने आंगन में आज रघुकुल दीपक श्री रामचन्द्रजी,

अपने लघु बान्धव लक्ष्मणजी और महादेवी सीताजी के साथ पधारे हैं। अब अपने को इनकी आज्ञा के अनुसार करना है। सब फिरसे रामचन्द्रजी आदिको नमस्कार करते हैं। अन्त में शान्ति फैल गई। शान्ति का भंग करते हुये श्री रामचन्द्रजी बोले देखो और सुनो। कल सुबह छः बजे पूर्व दिशा का दरवाजा एकाएक खोलना। लक्ष्मण एक हजार सैनिकों के साथ बाहर निकलते ही दरवाजा फिरसे बन्द कर देना। और प्रतिदिन की तरह युद्ध चलने देना। लक्ष्मण अपने सैनिकों साथ सीधा महाराज के ऊपर हमला करेगा। फिर देखो मजा। योजना तय हुई। सब बिखर गये। प्रातःकाल की झालर बज उठी। छः बजे डंका बजने के साथ ही पूर्व दिशा का दरवाजा खुल गया। आदिनाथ की जय। गगने भेदी आवाजों के साथ लक्ष्मणजी सैन्य के साथ बाहर निकल गये। दरवाजा बन्द। शत्रु सैन्य में आश्चर्य की लहर दौड़ गई। एकाएक होनेवाले शत्रु के आक्रमण से महाराजा के सैन्य में बहुत चहल पहल हो गई। एक प्रहर युद्धका खेल देखकर लक्ष्मणजी ने धनुष्य चढा दिया। देखते देखते शत्रु जमीन दोस्त होने लगे। दो घड़ी में तो शत्रु सैन्य में हाहाकार मच गया। शत्रु मुठी बांधकर के भागने लगे। यह दृश्य देखकर महाराजा ने अपना रथ आगे किया। बराबर लक्ष्मणजी के सामने रथ आ गया लक्ष्मणजी ने तीर वर्षा में वेग कर दिया। पहले तीरसे महाराजा का मुकुट उडा दिया। उसके बाद दूसरे और तीसरे तीरसे तो महाराजा के रथ के दोनों घोड़े घायल हो गये। महाराज सावधान हों उसके पहले तो चौथे तीरने तो महाराजा के हाथमें रहनेवाले तीरके टुकड़े टुकड़ा कर

तुम हमारे घरमें घुसे हो अगर अब मैं तुमको नहीं निकाल दूं तो मेरा नाम शूरवीर नहीं।

भगवान आदिनाथके ९९ पुत्र भगवान से पूछते हैं कि हमारे महाराजा भरतके साथ लड़ाई करना कि आज्ञा मानना? भगवानने कहा कि तुम दोनों बातें छोड़कर प्रव्रज्या अंगीकार करो। सब दीक्षा ले लेते हैं और आत्माराधना में तदाकार बन जाते हैं।

साधुपना अंगीकार किये बिना गृहास्थाश्रम में भी वैराग्य भावसे रह करके आत्म साधन किया जा सकता है। एसा कहनेवालों को यह समझ नहीं है कि साधुपने में वीसवीसा दया पलाती हैं लेकिन कैसा भी गृहस्थी हो सवावसा दया से अधिक दयाका पालक नहीं बन सकता है। कारण कि मुनि महाराज त्रस और स्थावर इस तरह दोनों प्रकार के जीवोंकी दया पालते हैं। लेकिन श्रावक सिर्फ त्रस जीवों की दया पाल सकता है इसलिये रहा दशवसा। त्रस जीवों की दयामें भी निर्दोष को ही बचा सकते हैं, इसलियें रहे पांच वसा। निर्दोष जीव भी आरंभ-समारंभ से मारे जाते हैं, इसलिये ढाई वसा। अपने स्वजन-सम्बन्धी अगर पशु वगैरह के रोगकी दवाई करना पड़े उसमें भी जीव मारे जाते हैं इसलिये रहे सवा वसो। इस तरह कैसा श्रावक भी सवा वसो दया पाल सकता है। इसलिये विश्वके जीव सर्वविरति रूप साधु-पने को प्राप्त करके आत्म श्रेय साधें यही शुभेच्छा।
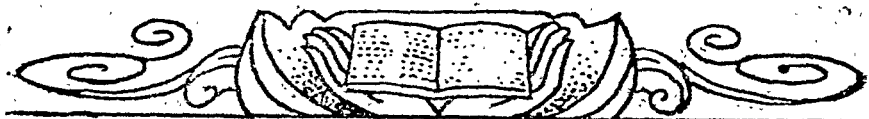
व्याख्यान—तेरहवाँ

जगत के महान उपकारी भगवान श्री महावीर देव फरमाते हैं कि जो मनुष्य आंख, कान नाक और वाणी का दुरुपयोग करता है वह एकेन्द्रिय में जाकर के उत्पन्न होता है।

उसकी दृष्टि को धन्यवाद कि जो निरंतर देवाधिदेव श्री जिनेश्वर परमात्मा की मूर्ति के दर्शन करता है।

दश वैकालिक सूत्रमें लिखा है कि जिस मकान में स्त्री का फोटो लगा हो उस मकान में साधु नहीं रह सकता है। क्यों कि उसके दृश्य से उसे विकार उत्पन्न हो सकता है। किसी को शंका होगी कि क्या जड वस्तु विकार कर शकती है? उसको समझाना चाहिये कि कर्म जड होने पर भी जीवों को संसार में रखडाते हैं। तुम्हारे किसी सगे सम्बन्धी का फोटो तुम्हारे पासमें हो तो तुम कितने आनन्द मग्न बन जाते हो।

मृत्यु को प्राप्त हुये का फोटा देखकर उस व्यक्ति के गुणोंकी स्मृति द्वारा कितने रोते हो? एसा अनुभव तुमको अनेक वार हुआ होगा। सामने सन्त महात्मा का फोटो हो तो वैराग्य उत्पन्न होता है। छट्ठे गुणस्थानक वर्ती जीवों तक को वीतराग देवके दर्शन करना चाहिये। क्यों कि वहां तक आलंबन की आवश्यकता है। और सातवें गुणठाणा से आलंबन की आवश्यकता नहीं है।

दिया। यानीं झुक्का कर दिया। और दौड़ करके लक्ष्मणजी ने महाराजा को नीचे पछाड़ दिया। अवसर के जानकार महाराजा ने शरणागति स्वीकार ली। फिर बन्धन अवस्था में महाराजा को रामचन्द्रजी के सन्मुख हाजिर किया।

रामचन्द्रजी को देखकर महाराजा घबरा गये। उनका प्रभाव जगत में फैला हुआ था। रामचन्द्रजी अब क्या करेंगे? प्राणान्त दंड करेंगे? जो होना होगा सो होगा। अब चिंता बेकार है। एसा महाराजा ने विचार कर दिया।

राजसभा में आज मानव समूह माता नहीं था। स्तुति पाठकों ने स्तुतिगान शुरू किया। और राजसभा का काम काज शुरू हुआ।

महाराजा शरम से नीचा मुंह करके खड़े थे। बोलने की जरा भी हिम्मत नहीं थी। रामचन्द्रजी ने उनसे पूछा कि तुम्हारी इच्छा क्या है? बोलो! वज्रकर्ण तुम्हें नमस्कार नहीं करेगा। कुछ भी जबाव नहीं मिला रामचन्द्रजी साधर्मिक का कर्तव्य समझाते हैं। और जैनधर्म के सम्यक्त्व स्वरूप का वर्णन करते हैं। जाओ, तुम्हें कोई भी सजा नहीं दी जायगी। ये शब्द सुनते ही सभाजनों ने जयनाद से वातावरण गजा दिया। बोलो। श्री रामचन्द्र की जय। बोलो वज्रकर्ण महाराज की जय। सभामें पूर्णशान्ति फैल गई। रामचन्द्रजी की आज्ञा जाहिर की गई कि आजसे वज्रकर्ण और तुम महाराजा समान राज्य के मालिक हो। तुम दोनो समान। जनताने फिर जयघोष किया। राजसभा विसर्जित हो गई। सब अपने अपने स्थान को चले गये।

वनमें निकले हुये रामचन्द्रजी वनमें चले गये। वज्रकर्ण राजा हमेशा रामचन्द्र को याद करने लगा। उपकारी का उपकार याद करना ये सज्जनता का लक्षण है। दुर्जन मनुष्य उपकारी को भूल जाते हैं।

ज्ञानसार में श्री यशोविजयजी उपाध्याय महाराज फरमाते हैं कि दुःख को प्राप्त होकर के दीनता नहीं करना और सुखमें अभिमानी नहीं बनना।

सिंहको जब खूब जोर से भूख लगती है तब वह गुफामें से बाहर निकलता है और जो मिले उसका भक्षण करके पुनः गुफामें चला जाता है। अधिक हिंसा अथवा अत्याचार वह नहीं करता है। लेकिन मानवी की पूरी जिन्दगी समाप्त हो इतनी मिलकत होने पर भी अनीति, अन्याय और प्रपंचमें से ऊँचा नहीं आता है।

युद्ध के नगारे बजने के समय भी अपनी नवोढा स्त्री और अमनचमन का त्याग करके लड़ाई के मैदानमें तैयार होकर के जानेवाला ही सच्चा क्षत्रिय कहलाता हैं। उस समय क्षत्रियाणी अपने रक्त से तिलक करके कहे कि-विजय प्राप्त करोगे तो मैं तैतार रहूं, और अगर मृत्यु प्राप्त करोगे तो स्वर्ग स्त्री स्वागत करेंगी। इसी तरहसे धर्म करनेवाले भी क्षत्रिय तेजवाले होना चाहिये।

आज कितनों को तप करते करते जो आनन्द आता है उससे भी अधिक आनन्द पारणामें आता है। क्यों कि पसों को अभी जैसा चाहिये वैसा तपका आस्वाद नहीं आया।

धर्मको प्राप्त हुआ आत्मा हमेशा कर्मके साथ लडाई करता है और वह कर्मों से कहता है कि अनादिकाल से

जो आत्मायें जिनागम को नित्य सुनतीं हैं उनके कान धन्यवाद के पात्र हैं।

पता की अपेक्षा माता अधिक उपकारी है इसलिये माता का उपकार निरन्तर याद करना चाहिये।

हरिभद्र नामके एक ब्राह्मण को अभिमान था कि मेरे से भी अधिक जानकार हो और जिसके अर्थ को मैं न जान सकूं एसा कोई भी मिले तो उसका मैं शिष्य बनजाऊं। यह इनके जीवन की भी एक टेक थी।

एक समय रातको फिरने को वे निकले तो साध्वीजी महाराज के उपाश्रय से पसार हो रहे थे। वहां उनके कर्णपट पर मधुर शब्द टकराये "दो चक्की दो हरीपढ में"। इस वाक्य के अर्थ को समझने में विचार मग्न उनको कुछ भी समझ में नहीं आया। विद्वत्ता का अभिमान पिगल गया। खूब परिश्रम किया किन्तु व्यर्थ। क्यों कि ये तो जैनशास्त्र के पारिभाषिक शब्द थे। अब क्या करना? अपनी टेक याद आई। जल्दी से उपाश्रय की सीढियों पर चढते हुये देखातो साध्वीजी महाराज स्वाध्याय करते हुये दिखाई दीं। उनके सन्मुख जाकर के नमस्कार पूर्वक पूछते हैं कि हे महासती। आप जो स्वाध्याय कर रहीं हो उसमें बोले गये शब्दों के अर्थ का मैंने खूब विचार किया फिर भी मुझे वह समझमें नहीं आया। मेरी प्रतिज्ञा है कि जिसका अर्थ में नहीं समझ सकूं उसका अर्थ समझाने वाले का में शिष्य बन जाऊंगा। इसलिये दया करके आप समझावो। साध्वीजी महाराज ने तुरन्त समझा दिया। वह सुन करके हरिभद्र खूब प्रसन्न हुये। शीघ्र ही शिष्य बनाने की विनती की।

साध्वीजी महाराज ने उनको अपने समुदाय के आचार्य भगवान के पास भेज दिया। हरिभद्र ने वहां जाकर के दीक्षा ले ली। बुद्धि तीव्र होने से अल्प समय में ही दार्शनिक विषय के निष्णात बन गये। उनने दीक्षा लेने के बाद चौदह सौ चवालीस ग्रन्थों की रचना की। ग्रन्थ रचना में अपने उपकारी साध्वीजी महाराज को नहीं भूलते हुये हरेक ग्रन्थ में उनने "या किनी महत्तरा सूनु" तरीके ही उनका परिचय दिया है। जैन शासनमें ख्याति को प्राप्त हुये वे महापुरुष हरिभद्र सूरिजी के नामसे पहचाने जाते हैं।

समकिती आत्मा का लक्ष्य यही होना चाहिये कि धर्म सिवाय चक्रवर्तीपना भी मिले तो भी नहीं चाहिये।

ढाई द्वीप में रहनेवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के भाव को जान सकें उसका नाम है "मनः पर्यय ज्ञान"।

केवल ज्ञानी को पहले समय ज्ञान और दूसरे समय दर्शनोपयोग होता है।

श्रुतज्ञान पढ़नेका उद्यम करने से ज्ञानावरणीय कर्मों का भुक्का उड़ जाता है (नाश होजाते हैं)।

शराब के नशे में चकचूर बने हुये मानवी के मुखमें गिरता हुआ कुत्ते का मूत (श्वान मूत्र) नशा ग्रस्त को अशुचिवंत मालूम नहीं होता उसी तरह मोहनीय कर्म के नशा में चकचूर बने हुये मनुष्य को अच्छे और बुरे का कुछ भी मान नहीं होता है।

संसारी जीवोंने मोह को मित्र माना है। जब कि अनन्त ज्ञानियोंने उसको आत्मा का कट्टर दुश्मन कहा है। चौदह पूर्व के धारक आत्माओं को भी मोह दुश्मन ने निगोद में धकेल दिया है।

आत्मा दो प्रकार के होते हैं :- (१) भवाभिनन्दी (२) आत्मानन्दी ।

संसार में मजा माने, पौद्गलिक वस्तु का रागी बना रहे, स्वार्थ के लिये लडाई करे और संसारी संबंधों में विलास करे उसका नाम है-भवाभिनन्दी ।

परमार्थ का चिंतन करता हो, आत्म-जगत की खोज करनेवाला हो-अकेला आया हूं और अकेला ही जाना है जगत में कोई किसीका नहीं है एसे विचारों में मस्त हो उसे-आत्मानंदी कहते हैं ।

पांच इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, आयु, मनबल, वचन-बल, और कायबल इन दश प्राणों का वियोग हो उसका नाम है "मरण"। धर्म नहीं प्राप्त किये जीवों ने एसें अनन्त मरण किये हैं ।

यह दुर्लभ मनुष्य भव मिला है तो मोह की यारी छोड़के धर्म की मित्रता करो ।

महा नैयायिक उपाध्याय श्री यशो विजय जी महाराज साहब फरमाते हैं कि परवस्तु की इच्छा करना ये महा दुःख है । संसार की तमाम इच्छाओं को अल्प करने के लिये ही धर्म है ।

जरूरत से अधिक परिग्रह नहीं रखना चाहिये। ऐसी प्रतिज्ञा आनन्द और कामदेवने ली थी । इस नियम के आधार से बारह वर्षमें सब त्याग करते हैं ।

आनन्द और कामदेव रातकी प्रतिमा में खड़े रहते हैं तब देवोंने परीक्षा की लेकिन चलायमान नहीं होते हैं। तब भगवान महावीर परमात्माने उनकी समवशरण में

प्रशंसा की। भगवान महावीर परमात्मा उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे गौतम, साधुओं की उपेक्षा भी ये महानुभाव अधिक कष्टको सहन करके अडिग रहे हैं।

जैन शासन के अजोड प्रभावक जैनाचार्य श्रीमद् विजयपादलिप्तसूरिजी महाराजने आठ वर्षकी बाल्यवय में दीक्षा ली। सोलह वर्षकी वयमें आचार्य पदवीसे अलंकृत हुए थे। उनकी विद्वता और प्रवचन कुशलता चारों तरफ व्यापी हुई थी। वे पृथ्वीतल को पावन करते करते एक नगरमें पधारने वाले थे। उस नगर में ब्राह्मणों का जोर अधिक था। सब ब्राह्मण विचार करते हैं कि जो ये आचार्य महाराज गाँवमें पधारेंगे तो अपने अनुयायी घट जायेंगे। बड़ा तोफान होगा। इसलिये नहीं आवें तो ठीक। ऐसा विचार करके उनने एक युक्ति रची। एक घीका कटोरा पूर्ण भरके आचार्य महाराज के सामने भेज दिया। इस कटोरे के द्वारा ऐसा सूचन करने में आया कि जैसे यह कटोरा घी से पूर्ण भरा होने से जरा भी अवकाश नहीं है उसी तरह यह नगर पण्डितों से भरा होने से जगह के अभावमें आपको यहाँ पधारने की कोई जरूरत नहीं है।

आचार्य महाराजने विचार करके शिष्य के पास एक हरे कांटे की शूल मंगाई। उस शूल को घीसे भरे कटोरे में बीचोंबीच खोंस करके वही कटोरा उनको पीछे भेज दिया। इसके द्वारा सूचन किया गया कि कटोरा में जैसे शूल समा जाती है इसी तरह आपके नगर में मैं भी समा जाऊंगा। इस तरह यह कटोरा पीछे आने पर सब ब्राह्मण शरमिन्दा हो गये। और समझ गये कि आने वाले आचार्य

सामान्य नहीं हैं। लेकिन महा पंडित हैं। यह है जैनाचार्य की प्रभावकता, समय सूचकता और कार्य कुशलता। नगरजनोंने ठाठ से उनका नगर प्रवेश कराया। और जैन शासन की भारे प्रभावना हुई।

तुम्हें अग्निका जितना भय है उतना अविरतिका भय है?

वीतराग के कहे हुये धर्म में शंका लाने वाला मिथ्यात्व मोहनीय कर्म बांधता है।

बीच के बाईस तीर्थंकरों के साधुओं को चार महाव्रत होते हैं क्यों कि वे ऋजु और सरल होते हैं। लेकिन पहले और अन्त के तीर्थंकरों के साधुओं को पांच महाव्रत होते हैं।

साधु दो प्रकार के हैं। (१) स्थविर कल्पी (२) जिन कल्पी। वस्त्र पात्र और संयम के उपकरण रक्खें वे स्थविर कल्पी कहलाते हैं। वस्त्र, पात्र न रक्खें वे जिन कल्पी कहलाते हैं।

जिनका पहला संघयण हो, साडे नव पूरवका ज्ञान हो, अन्तर्मुहुर्तमात्र में साडा नव पूरव का परावर्तन कर सकते हों, छः महीना तक आहार पानी नहीं मिले तो भी चला सकते हों ये सब शक्तियां जिनमें हो वे ही जिन कल्प स्वीकार सकते हैं।

स्थविरकल्पी साधुका एक कपड़ा रह गया हो तो साडेपांच माइल तक फिर से लेने जाने की विधि है।

जिन मन्दिर बंधवाने वाला श्रावक अच्युत देवलोक में जाता है। भगवान की वाणी सुनने से संसार का पाप रूपी जहर उतर जाता है।

तंदुलिया मत्स्य बड़े मत्स्य की आंख की पलक में (पांपण में) उत्पन्न होता है। मात्र चावल के दाना बराबर उसकी काया होती है। वह हजार योजन की कायावाले मत्स्य को देखकर विचार करता है कि मेरी काया जो इतनी बड़ी होती तो एक भी छोटे मत्स्य को जिन्दा नहीं रहने देता। सबको खाजाता। वह खा नहीं सकता है फिर भी इस तरह की विचारणा मात्रसे मर के सातवी नरक में जाता है।

तप करने की शक्ति होगी तो मृत्यु के समय समाधि रहेगी। इसलिये तप करने की टेव (आदत) पाडनी चाहिये।

पाप-व्यापार का त्याग करना उसका नाम है सामायिक। धन कमाना कीचड़ में हाथ डालने जैसा है और दान देनेमें उस धनका सदुपयोग करना कीचड़से लथपथ हाथको धोने के समान है।

लक्ष्मी वेश्या के समान है। पूर्वका पुण्योदय होगा तबतक लक्ष्मी रहनेवाली है और पुण्य खत्म होने पर वह चली जानेवाली है। जैसे वेश्या पैसा के आधीन है। पैसा मिले वहाँ तक ग्राहक को संभालती है। उस ग्राहक के पास पैसा खलास हो जायें तो दूसरे पैसादार ग्राहक के पास चली जाती है। इसी तरह लक्ष्मी अंगे पुन्याधीनता की हकीकत समझना।

क्रिया बिना का ज्ञान चन्दन के बोझ (भार) के समान है। कल्याण कारी आत्माको ज्ञान के साथ क्रिया का सुमेल साधना चाहिये। अष्टक जी में लिखा है कि धर्म करने के लिये धन नहीं कमाना है। परन्तु धनकी मूर्च्छा उतारने के लिये धर्ममें धन को खर्च करना है।

खाने पीने में जो मुक्ति मानता है वह मिथ्यात्वी है। खाने पीने की तमाम वस्तुयें जिन मन्दिरमें रखनी चाहिये। अपने द्रव्य से धर्म करने वाले जीवों को लाभ पूर्ण मिलता है।

एक नगर में अभयंकर नाम के शेठ थे। उनके दो नौकर थे। एक नौकर घर का कचरा वगैरह सफाई का काम करता था और दूसरा नौकर ढोर चराने जाता था। शेठ शेठानी धर्मी होने से रोज भगवान की पूजा करने के लिये जिन मन्दिर जाते थे। वे भी पूरे आडंबर से जाते थे। एक दिन नौकर बैठे बैठे बातें करते थे। अपने शेठ शेठानी कितने पुन्यशाली हैं कि रोज प्रभुकी पूजा करने जाते हैं। अपन को भी मन तो बहुत होता है लेकिन अपन तो नौकर कहलाते हैं इसलिये अपन से कैसे जाया जा सकता है?

इन दोनोंकी बात शेठ और शेठानीने सुन ली। दूसरे दिनके प्रातःकाल शेठ-शेठानीने आज्ञा दी कि आज तुम दोनों हमारे साथ पूजा करने को आना। यह आज्ञा सुन करके तो दोनों नौकर आश्चर्य करने लगे और विचार करने लगे कि रातकी बात सुनकर अगर गुस्सासे कहते होंगे और अगर नौकरी में से निकाल दिया तो? इस तरह अनेक विचारों में दोनो जने शेठ शेठानी के साथ पूजा करने गये। वहां बहुत से धनिक पूजा करने आये थे। सबको अपने द्रव्य से पूजा करता देखकर ये दोनो विचार करने लगे कि पूजा तो स्वद्रव्य से ही होना चाहिये। शेठ नौकरों को पूजा करने के लिये केसर की कटोरी देता है। तब दोनों नौकर लेने को ना कहते हैं। और कहते हैं कि हे शेठ! आपके द्रव्य से पूजा करें तो

हमको क्या लाभ? इसलिये हम अपने द्रव्य से ही पूजा करेंगे। एक नौकर के पास दो रुपये थे। उनके पुष्प लेकर वे अति भावपूर्वक प्रभु की पुष्प पूजा करता है। दूसरे नौकर के पास कुछ नहीं था इसलिये दुखी होकर देखता रहा था। पूजा करके शेठ शेठानी उपाश्रय आये। वहां गुरु महाराज को वंदन करके शेठ शेठानीने उपवास का पच्चक्खाण लिया। तब इस नौकरने पूछा कि हमारे शेठानीने क्या किया? गुरु महाराजने कहा कि आज चौदश है इसलिये तुम्हारे शेठने उपवास किया है। नौकरने पूछा उपवास का क्या मतलब है? गुरु महाराजने समझाया कि-एक दिन और रात का आहार त्याग करना। उसमें भी रात को तो आहार पानी दोनो का त्याग करना उसका नाम उपवास। यह सुनकर के जिसके पसा नहीं थे वह नौकर विचार करने लगा कि मेरे पास द्रव्य नहीं था इसलिये मैं पूजा नहीं कर सका। और यह तो बिना द्रव्य के हो सकता है पसा है। सब घर आते हैं। भोजन का समय होते ही दोनो नौकरों को जीमने के लिये भोजन की थाली आयी। एक नौकर जीमने लगता है। वहां दूसरा नौकर विचार करने लगा कि मेरे तो आज उपवास है। यह भोजन मेरे लिये ही आया होने से इसका मालिक मैं हूं। इसलिये अगर कोई सुपात्र आवे तो वहोरा कर के लाभ लेलूं।

इतने में एक महात्मा वहोरने को पधारे। इस नौकरने अपने लिये आये हुये भोजन को महात्मा को वहोरा दिया। यह देखकर शेठानीने उसे दूसरा भोजन दिया। तब नौकरने कहा कि मेरे तो उपवास है। यह सुनकर शेठ शेठानी प्रसन्न हुये।

दो रुपये के पुष्प लेकर भगवान की पूजाकरने वाला

नौकर परभव में दो करोड सोने का अधिपति बनता है। और मुनि को दान देनेवाला नौकर परभव में राजा बनता है।

इस से बोध लेना है कि शेठाई हो तो एसी हो।

जैन शासन को समझे हुयें गृहस्थी के घर में रहने वाले नौकर वर्ग भी धर्म के संस्कार से रंग जायें। एसों की शेठाई ही वास्तविक शेठाई कहलाती है। एसे श्रावक ही भावश्रावक कहलाते हैं।

एसे भी श्रावक (नामधारी) होते हैं कि अपने नौकर तो क्या लेकिन घरके बालक भी वैरागी न बन जायें इस की तकेदारी रखते हैं। एसों की भावना धर्मी बनने की अपेक्षा धर्मी कहलाने की ज्यादा होती है।

एक आचार्य महाराज हर रोज तब व्याख्यान देते थे जब एक प्रसिद्ध शेठ श्रावक आ जाते थे। जब तक वे श्रावक नहीं आते तब तक व्याख्यान भी चालू नहीं होता था। एक दिवस टाइम से भी अधिक समय व्यतीत हो गया फिर भी शेठजी के नहीं आने से व्याख्यान शुरू नहीं हुआ। अन्य श्रोता ऊंचे नीचे होने लगे। जिससे गुरु महाराजने व्याख्यान शुरू कर दिया। व्याख्यान पूरा होने को थोड़ा समय बाकी था कि वे शेठजी आये जब आचार्य महाराजने देर से आने का कारण पूछा तो शेठने प्रत्युत्तर में कहा कि साहब, मेरा छोटा बाबा व्याख्यान में आने की हठ लेके बैठा था। उसे समझाने में देर हो गई। उसको साथ में लेकर आऊं और आपका प्रभाव उस पर पड़े तो वह दीक्षा लेले।

आचार्य महाराज समझ गये कि यह तो नाम के ही श्रावक हैं। इसलिये तुम सब भावश्रावक बननेका प्रयत्न करना यही मनः कामना।

व्याख्यान—चौदहवां

वात्सल्यमूर्ति भगवान् श्रीमहावीर देव फरमाते हैं कि हे गौतम, जगत के जीव वीर्यपना से कर्म करते हैं और मोहनीय कर्म को बांधते हैं।

वीर्य तीन प्रकार के हैं।

(१) बालवीर्य (२) बालपंडितवीर्य (३) पंडितवीर्य।

अविरतिपना ये बालवीर्य है। सम्यग्दर्शनपूर्वक संयम हो वह पंडितवीर्य। व्रतधारी श्रावक हो वह बालपंडित-वीर्य है।

मानव जैसे मानव बनके भी व्रत अंगीकार नहीं करते एसों को ज्ञानियोंने हिराया ढोरके समान कहा है। व्रत ये मनुष्य के सिर पर अंकुश है। हाथी जैसे बड़े प्राणी को भी अंकुश की जरूरत होती ही है। तो फिर मनुष्य को अंकुश बिना कैसे चल सकता है? घोड़े को लगाम होती है। लगाम खेंचने के साथ ही घोड़ा सीधा हो जाता है। इस तरह से जीवन में व्रत लेने से बहुत से पापकर्मों से बचा जा सकता है।

श्रावक में द्रव्य दया और भावदया दोनो होती है। लेकिन साधु में सिर्फ भावदया ही होती है।

आवश्यक क्रिया में सूतक नहीं लगता है कारण कि यह तो नित्य करना है। जन्म सूतक और मरण सूतक में भी आवश्यक क्रिया छोड़ना नहीं है।

व्यवहार के दो प्रकार हैं : (१) धर्मघातक (२) धर्मपोषक ।

धर्मघातक व्यवहार के त्यागी बने बिना धर्मपोषक व्यवहार जीवन में नहीं आ सकता है ।

सच्चे सुख का मार्ग अपने को खोजना पड़ेगा । चार गति रूप संसार में सच्चा सुख नहीं है । सारा संसार सुख का अर्थी है । धर्म के अर्थी कम हैं । इसलिये सुख नहीं मिलता है । जो सुख चाहिये तो धर्म का अर्थी बनना पड़ेगा ।

देवगति में बहुत सुख होने पर भी मरना तो जरूर होने से वह सुख दुखकारी है । जगत के जीव सुख के रागी और दुख के द्वेषी हैं । सुख प्राप्त करने के लीये जीवन में सदाचारी बनना पडेगा । नव नारद ऋषि, मोक्ष में अथवा स्वर्गमें गये हैं क्यों कि उनके जीवन में सदाचार सुन्दर था । राजा के अन्तःपुर में जानेकी उनको छूट थी । राजाओं को और दूसरों को उनके सदाचार की खात्री थी विश्वास था ।

दशरथ राम आदि महा पुरुष महान हो गये । क्यों कि इनके जीवन में सदाचार था । सदाचार का आदर्श इनने जगतको बताया था । दशरथ महाराजा साकर (मिश्री) की मक्खी जैसे थे । इनके अंतरंगमें संसार के प्रति जरा भी मान नहीं था । संसार में कर्म संयोग से रहे जरूर, परन्तु मन बिना ही रहे थे ।

दूध में से घी तैयार करना हो तो कितनी क्रियायें करनी पडती हैं ? इसी तरह अपना आत्मा भी दूध जैसा है । इस आत्मा को घी जैसा बनाना है । कब बने ? खूब

क्रियाओं करें तव क्रिया भी तारकों की आज्ञा के अनुसार करें तव आत्मा घी जैसा वन सकता है। शरीर नाशवन्त है। कव पड़ जायगा इस की कोई खवर नहीं है। आत्मा स्थिर है। सुस्थायी है। फिर भी अपन को आत्मा की अपेक्षा शरीर ऊपर राग अधिक है।

शरीर चिन्तक मिटके आत्म चिन्तक वनना पडेगा। सदाचारी जीवन पूर्वक श्रद्धा से आगे वढो। मोक्ष का यह राजमार्ग है।

दशरथ राजा के चारों पुत्र प्रातःकाल में पायवन्दन करते थे इस का नाम सदाचार।

श्री हेमचन्द्र सूरिजी महाराज फरमाते हैं कि जीवन में मैत्री भाव विकसाओ। जगत में कोई पाप न करो और जगत में कोई दुखी न रहो। एसी मैत्री भावना तो जिस के हृदय में धर्म वस गया हो उसी के हृदय में जागती है।

घर में जो सास काम करने लगेगी तो वहू के दिलमें जरूर काम करने की इच्छा होगी। और ये कहेगी कि सासुजी आप आराम करो। यह काम तो मैं कर लूंगी। लेकिन यह कव वने जव सास पहले करे तो। आज तो सास वहू से कहती है कि तू एसा कर तो वहू कहती है कि तुम्ही कर लो। भूतकाल में वहू को कहना पड़ता ही नहीं था। अपने आप ये कर लेती थी। क्यों कि उस समय कुल के संस्कार उत्तम मिलते थे।

आज की शालामें पढनेवाले विद्यार्थियों के पास पुस्तकों का ढेर है। परन्तु ज्ञान नहीं है। आज दुनिया में भौतिकता का जो पवन वा रहा है उसकी तरफ अपनको नहीं जाना है। जो गये तो आत्मा का विगड जायगा।

हनूमानजी को एक हजार स्त्रियां थीं। एक समय आकाश की तरफ एक टक देख रहे थे। वहां बादल आके बिखर गये। यह द्रश्य देखकर हनूमान जी को वैराग्य आता है। जिस तरह ये बादल इकट्ठे हो के बिखर गये इसी प्रकार अपना ये मानव जीवन भी बिखर जायगा। इस लिये धर्म की साधना कर लेना यही उत्तम है।

दशरथ राजा के कुटम्ब में रानियां दूसरी रानियों के पुत्र को भी अपने पुत्र के समान गिनती थी। इसीलिये अपन दशरथजी के कुटुम्ब को याद करते हैं। इस कुटुम्ब के संस्कारों में से थोडे भी संस्कार अपने कुटुम्ब में आ जायें तो क्लेश और कंकाशका नाश हुये बिना नहीं रहेगा।

दशरथ राजा को वैराग्य आ गया। दीक्षा की तैयारी करने लगे। और रामचन्द्रजी को राजगादी सोंपने की तैयारी करने लगे। महोत्सव चालू हो गया। वहां कैकेयी विचार करने लगी कि मेरा पुत्र भरत अगर दीक्षा ले लेगा तो मेरा कौन? चलो ने भरत को राज्य मांगू। भरत राजा बनेगा तो मैं राजमाता कही जाऊंगी।

दशरथ के पास आकर के युद्ध में दिये हुये वचनों को याद कराया। दशरथने कहा कि एक दीक्षा को छोड़कर तुझे जो मांगना हो मांग ले।

भरत को राज्य दो। मांग लिया। दशरथने कहा कि जाओ दिया।

अब रामचन्द्रजी को बुला के दशरथने सब बात कही। तब रामचन्द्रजीने कहा कि हे पिताजी, इसमें पूछने की जरूरत नहीं है। आपको योग्य लगे उसे दे सकते हो। मैं जिस तरह से आपकी सेवा करता हूं उसी तरह से

उनकी भी सेवा करूंगा। देखो, खुद हकदार हैं, वारसदार हैं, योग्य हैं, और प्रजाप्रिय भी है। अगर चाहें तो युद्ध करके भी ले सकते हैं। इतनी ताकत है। फिर भी पिताजी को कहते हैं कि आपकी इच्छा हो उसे आप खुशीसे दे दो। मैं उसकी सेवा करूंगा। विचारो कि रामचन्द्रजी में कितनी योग्यता है? कितनी पितृभक्ति है? कैसे सुसंस्कार हैं? यह आदर्श लेने जैसा है। आज तो दो सगे भाई अलग हों तो नहीं जैसी (तुच्छ) वस्तु के लिये भी लड़ाई करें। कोर्ट में मुकदमा करें। और नाश हो जायें। यह है आजकी संस्कृति।

मिट्टी की मटकी एक हो और भाई दो हों तो एक मटकी को फोड़के दो टुकड़े करना पड़े ये आज की दशा है। कैसा विचित्र युग आया है? विचारो! यह प्रगति का जमाना कहा जाय कि अवनतिका? आमदनी का दरजा कम और खर्च का दरजा ज्यादा? इन दोनो के बीच में लटक के जिये इसका नाम आजका मानव।

राज्यपाट, धन, माल मिल्कत के लिये नहीं लड़ो। वह तो सब पुन्याधीन है। हक मांग के नहीं लिया जा सकता है। ये तो योग्यता से ही मिलता है। उसमें हक मारा मारी नहीं होती है।

क्या किसी जन्मांध बालक को परिभ्रमण स्वातन्त्र्य का हक दिया जा सकता है? क्या किसी व्यभिचारी को आचार स्वातन्त्र्य का हक दिया जा सकता है? क्या नादान बालक को मतदान देने का हक दिया जा सकता है? नहीं। तो समझो कि हक योग्यता से ही मिलता है। इसे मांगने की जरूरत नहीं है। मांगने से मिले हक को

पचाया नहीं जा सकता है। हक की मारामारी छोड़ दो। पुण्य में होगा तो मिल जायगा। पुण्य ऊपर श्रद्धा रक्खो। धर्मी के घर में धन के अथवा स्वार्थ के झगड़े नहीं होते ? वहां तो आत्म कल्याण के झगड़े होते हैं। तुम्हारे घर में किसके झगड़े हैं ?

सच्चे सुख का प्रश्न अनादि काल से पूछा जा रहा है और आगे भी पूछा जानेवाला है। तुम सच्चे सुखके हिस्सेदार बनो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–पन्द्रहवाँ

अपने परम उपकारी अरिहंत भगवंत पृथ्वी पर विचरते हैं और पृथ्वी के जीवोंको धर्ममार्ग में लगाते लगाते मोक्ष जाते हैं।

बहु आरंभी, बहु परिग्रही और मोह-माया से भरे जीव नरकमें जाते हैं।

श्रेणिक महाराजा कहने लगे कि जगत में पापी कम हैं और धर्मी अधिक हैं। तब अभय कुमारने कहा कि धर्मी कम और पापी बहुत हैं। लेकिन राजा इस बातको मानता नहीं था। परीक्षा करने के लिये दो तम्बू बंधाये, एक काला और एक सफेद। राजगृही में डांडी पिटाई यानी घोषणा करादी कि जो धर्मी हों वे सफेद तम्बू में जायें और जो पापी हों वे काले तम्बू में जायें। राजा सबका स्वागत करने लगा। राजा की आज्ञा सुनकर के नगरीमें दौड़ादौड़ होने लगी। सभी मनुष्य सफेद तम्बू में जाने लगे, लेकिन काले तम्बू में कोई जाता नहीं था। उनमें दो सच्चे धर्मी थे जो धर्म ही करते थे किन्तु सर्व विरति नहीं ले सकते थे। वे विचार करने लगे कि अपन पाप करने वाले हैं, इसलिये अपनको काले तम्बू में ही जाना चाहिये। एसा विचार करके ये दोनों काले तम्बूमें गये। अब राजा और अभयकुमार पहले सफेद तम्बू की मुलाकात लेने गये। वहां रहनेवालों से पूछने लगे। तब

हम धर्मी हैं एसा सब कहने लगे। वास्तविक बात तो ये थि कि उनके जीवन में धर्म का छींटा भी नहीं था। धर्मी बनना नहीं है किन्तु धर्मी कहलाने की इच्छावाले हैं।

उसके बाद काले तम्बू की मुलाकात लेने पर वहां रहनेवाले दोनों भाविकों से पूछने पर प्रत्युत्तर मिला कि हम पापी कहलाते हैं इसी लिये इस काले तम्बू में हम आये हैं।

अभयकुमार कहने लगा कि–हे महाराज, परीक्षा हो गई ना? श्रेणिक महाराज समझ गये कि अभयकुमार के कहे अनुसार जगत में धर्मी कम और पापी बहुत हैं। सच्चा कहा जाय तो ये दोनों ही धर्मी हैं।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चारों को हर पखवारे (पक्ष) में एक उपवास करने की आज्ञा है। जो न करें तो प्रायश्चित्त लगे।

जो आदमी देव द्रव्यका भक्षण करता है, गुरु महाराज की निन्दा करता है और परदारा लम्पट है वह नरकमें जाता है।

एक लाख नवकार जप विधिपूर्वक गिनने से तीर्थंकर नामकर्म बन्धता है।

पहली	नारकीमें उत्पन्न होनेको	३० लाख	स्थान हैं
दूसरी	,,	२५	,,
तीसरी	,,	१५	,,
चौथी	,,	१०	,,
पांचवीं	,,	३	,,
छट्ठी	,,	१	,,
	,,	५	,,

स्त्री छट्ठी नरकसे आगे नरकमें नहीं जाती है क्योंकि स्त्रीमें स्वाभाविक मार्दवता होती है इसलिये वह सातवीं नरक में जाने जैसे कर्म नहीं बांधती है।

चक्रवर्ती का स्त्रीरत्न मरके अवश्य नरकमें जाता है क्योंकि उसमें कामवासना अधिक दीप्त होती है। उस स्त्रीरत्न को सन्तान नहीं होती है और चक्रवर्तीके सिवाय दूसरा उसे कोई भी भोग सकता नहीं है। चक्रवर्ती के सिवाय अगर दूसरा कोई भोगे तो मृत्यु को प्राप्त होता है। स्त्रीरत्न कामवासना की प्रबलता से दीक्षा नहीं ले सकती इसलिये मृत्यु प्राप्त करके नियम से नरक में ही जाती है।

अभवी जीव संयम लेते हैं किन्तु उनका संयमपालन सिर्फ देवलोक के सुखकी अभिलाषा से ही होता है इस लिये मोक्षप्राप्ति उनको होती ही नहीं है। जम्बूद्वीप को छत्र और मेरू पर्वतको दंडा बनानेकी शक्ति धारण करने वाले देवों को भी मोक्षकी साधना के लिये मनुष्यगति में ही जन्म लेना पड़ता है।

जब भूख लगती है तो सूखा रोटला भी मीठा लगता है।

त्रेसठ शलाका सिवाय के सभी स्थानों में अपन उत्पन्न हुए हैं। वहां नहीं जानेका कारण अभी तक अपनमें समकित नहीं आया।

मरूदेवी माता का जीव निगोदमें से केले के पत्ते में और वहांसे मरुदेवी हुई। मोक्षमें गयीं। वे दूसरी किसी भी जगह नहीं गईं।

श्रावक को अगर अपनी संतानों की शादी करना

पडे तो समान कुल, समान लक्ष्मी, समान धर्म आदि समान हों वहां विवाह-सम्बन्ध करना चाहिए।

देवलोक में भी ईर्ष्या आदि जहरीले तत्व होते हैं इसलिये वहां भी शान्ति नहीं है।

दशवें गुण ठाणा से आगे नहीं जायें तब तक कषाय रहेगी ही। दशवें गुण ठाणा में सिर्फ सूक्ष्म लोभ ही है।

ज्ञानी कहते हैं कि अगर हंसते हंसते मरना है तो जीवन सुधारना पड़ेगा। जन्म लेते समय कैसे जन्म लेना वह अपने हाथ की बात नहीं है। परन्तु मरना किस तरह यह तो अपने हाथ की बात है।

जीवन में किये हुये कुकर्मों का फल प्रत्यक्ष मिलता है। एक नगर में एक राजा था। वह प्रजाप्रिय और न्यायी होने से लोगों का उसके प्रति अति सद्भाव था। परन्तु राजा का फौजदार आचारहीन और दुष्ट था। गाँव में कोई भी लग्न करके स्त्री लावे तो उस स्त्री का शील वह फौजदार लूटता था। इस तरह से उस दुष्टने सैकड़ों स्त्रियों का शील लूटा। फौजदार जुल्मी होने से कोई भी उसके सामने नहीं बोल सकता था। लेकिन एसा अत्याचार कबतक चल सकता था। एक समय एक धर्मनिष्ठ कन्या लग्न करके गाँवमें आई। इस कन्या के रूपकी चारों तरफ होरही प्रशंसा को सुनकर के फौजदार विचार करने लगा कि आज महान लाभ होगा। जीवन सफल हो जायगा। आधी रातको वह फौज़दार उस नवपरिणीत बाई के गृहांगण में आया। फौजदार को देख कर स्त्री का पति अपनी स्त्री को सब बात कर के चला गया। स्त्री विचार करने लगी कि इस तरह से दूसरों के हाथ शील क्यों

लुटाया जाय? उसने एक योजना बनाई। फौजदार आकर के चैन चाडा करने लगा। तब स्त्री कहने लगी कि फौजदार साहब, आज तो मेरे ब्रह्मचर्य का नियम है। इस लिये आज माफ करो। और कल आना। फौजदार विचार करने लगा कि आवती काल आने को कहती है इसलिये बलात्कार करना ठीक नहीं है। एसा विचार के चला गया। अब स्त्री अपनी योजना के अनुसार वहां से बाहर निकल करके राजभवन के पास जाकर के रूदन करने लगी। हैयाफाट रुदन सुनकर के राजा की ऊंघ उड़ गई। राजा विचार करने लगा कि आधि रातको स्त्री क्यों रो रही है? यह विचार कर के राजा नीचे आकर के स्त्री से पूछने लगा। कि तू इस समय क्यों रो रही है? स्त्री कहने लगी कि महाराज। आप के राज्य में स्त्रियों की लाज लूटी जाती है। उसकी भी आप खबर रखते नहीं हैं। राजा पूछने लगा कि बात क्या है? तब स्त्री कहने लगी कि सुनिये इस नगरी में किसी भी नव परिणीत स्त्री को फौजदार के कुकर्म में फंसना पडता है। इस तरह से सैकड़ों स्त्रियों के शील इस दुष्टने लूटे हैं। मेरा लग्न गई काल ही हुआ है। इस तरह से सभी हकीकत उसने राजासे कह दी। अब आपको जो योग्य लगे सो करो। राजा ज्यों ज्यों यह बात सुनता जाता था त्यों त्यों उसके मनमें बहुत गुस्सा आता था। उसके बाद राजा राज्य सभामें आकर के विचारने लगा कि आवती काल फौजदार को राज सभा में बुलाना, गुन्हा की कबूलात कराना उसके बाद कड़क में कड़क सजा देना।

दूसरे दिनका प्रभात हुआ। यथासमय राज्य सभा भरी। महाराजा सिंहासन ऊपर बैठे परंतु हमेशा की

अपेक्षा आज राजा का चेहरा उग्र था। रोज की विधि होने के बाद सभामें शान्ति फैल गई।

शान्ति का भंग करते हुए महाराजा बोले कि, मन्त्रीश्वर! राज्य के सब कर्मचारी हाजिर हैं? जी हाँ। फोजदार को हाजिर करो। राजाज्ञा होते ही फोजदार हाजिर हुए। स्वप्न में भी फोजदार को ख्याल नहीं था कि मेरी पोल राजा जान जायगा। क्रोधावेश में लाल चोल बने हुए महाराजाने फौजदार से पूछा कि तुम प्रजा का रक्षण ठीकसे करते हो? जी हाँ! तुमने किसी प्रकार की भूल तो नहीं की? जी ना! तुम्हारी फरियाद है कि स्त्रियों का शील लूटते हो ये बात सच है? जो सच हो तो सत्य बोल जाओ। जो बातको छिपावोगे तो इस राज्य सभाके बीच तुम्हें सख्त में सख्त सजा के द्वारा सच कबूल करना पडेगा। फौजदारने भूल कबूल की। राजा का कडक हुक्म हुआ। हथकड़ी पहना के जेलमें भेज दो। जेलमें उसे नमकके पानीसे भिजाए गए पचास फटका लगाना। मेरी आज्ञाके विना उसे खानेको भी नहीं दिया जाय।

राजाके द्वारा दी गई फौजदार को हुई सजा से प्रजाजनों को खूब सन्तोष हुआ। और लोग राजा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे। छ मास तक कैद में पूर कर के रोज पचास फटके की सजा सहन करते करते फौजदार की काया बिलकुल क्षीण हो गई। शरीर में से खून बहने लगा। शरीर की एसी दशा देख कर के उस के कुटुम्बी जनों को खूब दुख हुआ। इस लिये उसके माँ-बाप राजा को प्रार्थना करने लगे। हे राजन्, हमारे लड़के को छोड़

दो। प्रजा भी कहने लगी कि अब तो विचारे को छोड़ दो। उसे उसके पाप के सजा मिल गई।

अब एसा कुकर्म कभी भी नहीं करेगा कि कबूलात से फौजदार को छोड़ दिया गया। और नौकरी से निकाल दिया।

चौदहवें गुणठाणा का काल पांच ह्रस्वाक्षर बोलो इतना है। जीव एक समय में यहां से मोक्ष जाता है।

जैसे क्षीर नीर एक एक हो जाते हैं। इसी तरह आत्मा और कर्म एक होकर के संसार खड़ा करते हैं। जब कर्म नाश होते हैं तब आत्मा परमात्मा बनता है।

संसार आधि, व्याधि और उपाधि से भरपूर है। मनकी चिन्ता, संकल्प, विकल्प ये आधि कहलाती है। शरीर में रोगादि होते हैं वह व्याधि कहलाती है। और संसारी प्रवृत्तियों का जंजाल उपाधि है। उक्त तीनों से संसार सुलग रहा है। उसका त्याग करनेवाले सच्चे साधु हैं। साधु चक्रवर्ती से भी अधिक सुखी होते हैं।

तप दो प्रकार के हैं। (१) बाह्यतप (२) अभ्यंतर तप। बाह्य तप की अपेक्षा अभ्यन्तर तप की महिमा अधिक है।

मन भूत के समान है। ध्वजा के समान चंचल है। उस मन को वश में करने के लिये अभ्यन्तर तप की ज़रूरत है। स्वाध्याय अभ्यन्तर तप है। जो साधु साध्वी स्वाध्याय में तदाकार होते हैं उनको अशुभ विचार नहीं आ सकते हैं। एसे चंचल मनको स्थिर बनाने के लिये प्रयत्नशील बनो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–सोलहवाँ

अनन्त उपकारी तारक जिनेश्वर देव फरमाते हैं कि आकाश (लोकाकाश) के प्रदेश असंख्यात हैं। अपना जीव सभी आकाशप्रदेशों में उत्पन्न हो के आया है।

पर भव में एक ही साथ मिलकर के एक समय में बांधा हुआ पाप वह सभीको दूसरे भव में उदय में आता है। अकस्मात्–जलरेल (बाढ) भूकम्प, ट्रेन दुर्घटना वगैरह निमित्तों के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुये सभी जीवों को सामूहिक पाप का उदय गिना जाता है।

सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र अष्टापद गिरि की रक्षा का प्रयास करते थे तव अग्निकुमार के देवोने उन सभी साठ हजार को मार डाला था। उसमें साठ हजार का पापोदय माना जाय। परन्तु तीर्थरक्षा के लिये मृत्यु पाये होने से साठ हजार सद्गति में गये।

वनस्पति को काटने के पहले विचार करो कि इस वनस्पति में मैं भी उत्पन्न होकर आया हूं। और आज मैं उसे काटने की प्रवृत्ति करता हूं। इस लिये मुझे फिरसे वनस्पति में उत्पन्न होना पडेगा। एसा विचार करते करते काटो तो अल्प कर्म बंधता है।

सात नय हैं। उनमें से एक को भी नहीं माने उस का नाम मिथ्यात्व है। सातों नयको माने उसका नाम है समकिती।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि मध्यान्ह समय सूर्यके सामने दृष्टि लगाके ध्यानमग्न खड़े थे। उस समय श्रेणिक महाराजा भगवान श्री महावीर देव को वन्दन करने जा रहे थे। मार्गमें इन राजर्षि को देखकर श्रेणिक महाराजाने उनको वन्दन किया। उसके बाद भगवान के पास गये। भगवान को वन्दन करके पूछने लगे कि हे भगवन्, मार्ग में जो राजर्षि ध्यान धर रहे हैं वे कौन गतिमें जायेंगे? भगवान ने कहा "अगर अभी मरें तो सातवीं नरक में जायें। यह सुनकर के श्रेणिक राजाको बहुत दुःख हुआ। क्षण भरके बाद पूछा कि हे भगवन, अब अगर वे मरें तो कहाँ जायें? भगवानने कहा कि सुनों! देवदुंन्दुभि बज रही। राजर्षि केवलज्ञान को प्राप्त हो गये हैं। यह सुनकर के श्रेणिक राजाके मुखसे धन्य धन्य के शब्द निकल पडे। इन राजर्षि की गति के विषयमें ऐसा क्यों बना होगा? यह हकीकत समझने जैसी है। राजर्षि को जिस समय भगवानने नरक में जानेको कहा उस समय राजर्षि कृष्ण-लेश्यावंत थे। परंतु क्षणभर में लेश्यापरिवर्तन पाकर के शुक्ल लेश्यावंत वे हो जानेसे केवलज्ञान को प्राप्त हुए।

तीर्थ दो प्रकार के हैं। स्थावर और जंगम। गिरनार आदि तीर्थों को स्थावर तीर्थ कहते हैं और साधुमहाराज तीर्थंकर आदि जंगम तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थ की सेवा कम हो तो परवाह नहीं किन्तु अशातना तो नहीं होना चाहिये।

पांचों इन्द्रियों में आँख की कीमत बहुत है। अगर वह न हो तो जीवन पराधीन बन जाय। जिन मनुष्योंने जीवदया नहीं पाली, छ कायाकी रक्षा नहीं की वे चक्षु-हीन होते हैं।

भोजन के चार भांगा (श्रेणी) हैं। (१) दिनमें बनाना, दिनमें खाना (२) दिनमें बनाना और रातको खाना (३) रातको बनाना और दिनको खाना (४) रातको बनाना और रातको खाना। इनमें से पहला भांगा भक्ष्य हैं और शेष तीन भांगा अभक्ष्य हैं।

सिद्ध के जीव लोकाकाश के अन्तमें स्थित रहते हैं। अलोक में नहीं जा सकते। क्योंकि अलोक में केवल आकाशास्तिकाय है। धर्मास्तिकायादि शेष द्रव्य नहीं हैं। इसलिये धर्मास्तिकाय विना लोकाकाश से आगे गति नहीं हो सकती है।

जो आदमी जिस गतिमें जानेवाला हो उस गति के योग्य लेश्या उसके मृत्यु के समय होती है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नरकमें जानेवाले थे इसलिये मरते समय वे अपनी पट्टरानी कुरूमति का स्मरण करते थे और स्मरण करते करते नरकगति में गए। यह है अन्त समय की मतिका प्रभाव। जैसी गति वैसी मति होती है और जैसी मति वैसी गति।

जराकुमार के हाथ कृष्ण की मृत्यु होना है ऐसा भविष्य कथन सुनकर के जराकुमार जंगल में चला गया जिससे स्वयं मृत्यु का निमित्त नहीं बने। परन्तु क्या भवितव्यता मिथ्या हो सकती है? द्वारिका नगरीका ध्वंस होने के बाद कृष्ण और बलभद्र परिभ्रमण करते करते जहां जराकुमार रहता था वहां गये। तृषातुर बने कृष्णजी को बलभद्रजी नजदीक के सरोवर से जल लेने गये। इतने में दूरसे श्रीकृष्णजी के पैरमें रहते पद्म के तेजको कोई जानवर मान करके श्रीकृष्ण के आगमन से अनजान ऐसे

जराकुमार के द्वारा छोडे गए वाणसे ही श्रीकृष्णकी मृत्यु हुई थी। जराकुमार भी मनुष्य की चीस सुनकर के तुरंत दौडा। श्रीकृष्णजी को देखकर के कल्पांत करने लगा। लेकिन अव क्या हो सकता था? भावि मिथ्या नहीं होता। जराकुमार की आँखों में से अश्रुधारा वहने लगी। उस समय कृष्ण महाराजा कहने लगे कि भाई! अव कल्पांत करना व्यर्थ है। भावि मिथ्या कैसे हो सकता है? जो होना था सो हो गया। परंतु तू यहाँ से अव चला जा, नहीं तो अभी वलभद्र आयगा और तुझे मार डालेगा। जराकुमार चला गया। थोड़ी देरके वाद वलभद्रजी आये। कृष्णजी की मरणान्त स्थिति देख करके वलभद्र विचार करने लगे कि एसी स्थिति करने वाला कौन दुष्ट है? मुझे वतावो तो इसी समय उसे खत्म कर दूँ। वहाँ तो कृष्णजी के विचारों में भी परिवर्तन हुआ। कृष्ण लेश्या आई। जीव जिस गतिमें जानेवाला हो उस गतिकी लेश्या तो अवश्य आयेगी ही। थोड़ी देरमें तो कृष्णजी की लेश्या में कैसा पलटा हो गया? कृष्णजी वोलने लगे कि दुष्ट जराकुमार! मुझे वाणसे वींध करके, घायल करके...... तू कहाँ चला जा रहा है? यहाँ आ। मैं तेरी भी खवर ले लूँ।

यह सुनकर के वलभद्रजी समझ गये कि यह मृत्यु और किसी के हाथ नहीं हुई किन्तु जरा कुमार के हाथ से ही हुई है।

नरक का विरह काल कितना? पहली नरक में चौवीस मुहूर्त। दूसरी में सात अहोरात्री। तीसरी में पन्द्रह अहोरात्री, चौथी में एक महीना, पांचवीं में दो महीना, छट्ठी में चार महीना, सातवीं में छः महीना।

जघन्य से अन्तर पड़े तो एक समय का पड़े। एक समय में असंख्यात जीव नरक में उत्पन्न होते हैं।

नरक की वेदनाओं के बारे में विचार करते हुये शास्त्र में बताया है कि (१) प्रति समय आहारादि पुद्‌गलों के साथ जो बन्धन होता है वह प्रदीप्त अग्नि से भी अधिक भयंकर होता है। (२) गधेकी चालकी अपेक्षा नारकी की चाल अति अशुभ होती है। तपी हुई लोहेकी धरती पर पैर रखने से जो वेदना होती है। उसकी अपेक्षा नारकी को नरक की धरती पर चलते हुये अनंत गणी वेदना होती है। जो असह्य है। (३) जिसके पंख काट दिये गये हैं एसे पक्षी की तरह अत्यन्त खराब हुंडक संस्थान होता है। (४) वहां भीत के ऊपर से खिरनेवाले पुद्‌गलों की वेदना शस्त्रकी धारसे भी अधिक पीडाकारी होती है। (५) नारकावास अंधकारमय, भयंकर और मलिन होते हैं। वहां के तलिया का भाग श्लोभ विष्टा मूत्र और कफ वगैरह बीभत्स पदार्थों से जाने कि लीप दिया गया हो एसा होता है। मांस केश नख, हड्डियां, दांत और चमडा से आच्छादन हुई श्मशान भूमि जैसी होती है। (६) सडे हुये बिलाड़ा (बिल्ली) वगैरह के मृत कलेवरों के गंधसे भी अति अशुभ होती है। (७) वहां का रस तो नीम वगैरह के रस से भी अधिक कडवा होता है। (८) वहां का स्पर्श तो अग्नि और बिच्छू के स्पर्श से भी अधिक तीव्र होता है। (९) वहां का परिणाम तो अगुरु लघु है परन्तु अतीव व्यथा करनेवाला है। (१०) वहां के शब्द तो पीडा से तडपते हुये जीवों का करुण कल्पान्त जैसा जो सिर्फ सुनने से ही दुःखदायी होता है।

दूसरी तरह से नरका वासकी वेदनाओं के स्वरूप को दिखाते हुये जैन शास्त्रकार कहते हैं कि पूषका महीना हो, रातमें हिम गिरता हो, वायु सुसवाटा वन्ध वाता हो उस समय हिमालय पर्वत के ऊपर रहनेवाले वस्त्र विना मनुष्य को जो दुख होता है इन सबसे भी अधिक शीत (ठंडक) का अनंत गुना दुख नारक को होता है।

भर ग्रीष्मकाल हो उसमें भी मध्यान्ह हो यानी दो प्रहर का समय हो सूर्य माथा पर यानी सिरके ऊपर तपता हो दिशाओं में अग्नि की ज्वालायें सुलगती हों और कोई पित्तरोगी मनुष्य जैसी वेदना अनुभवता है उससे अनंतगुणी उष्णताकी वेदना नारकी के जीवको होती है।

ढाई द्वीपका समग्र धान्य खाले फिर भी भूख नहीं मिटे एसी भूख की वेदना नारकियों को हमेशा के लिये होती है। समुद्र सरोवर और नदियों का इच्छा मुजब पानी पिया जाय फिर भी नारकी के जीव का गला, तालू और ओंठ सूखे रहते हैं।

शरीर पर छुरी से खणे फिर भी खणज मिटती नहीं है। एसी खणज नारकियों को होती है। अर्थात् छुरी से खुजावें फिर भी नारकियों की खुजली मिटती नहीं हैं। नारकी हमेशा परवश ही होते हैं। मनुष्य को अधिक से अधिक जितनी डिग्री का ताव (बुखार) आता है उससे भी अनना गुला ज्वर नारकी को हमेशा होता है।

अन्दर से हमेशा जलते ही रहें एसा दाह नारकी को हमेशा होता रहता है। अवधिज्ञान और विभंग ज्ञानसे वे आनेवाले दुखको जान लेते हैं। इससे सतत भयाकुल

रहते हैं। परमाधामी का और दूसरे नारकों का भय लगा ही रहता है। और भयसे हमेशा शोकातुर रहते हैं।

जैसे एक कुत्ता दूसरे कुत्ताको देखकर टूट पड़ता है। उसी तरह एक नारकी दूसरे नारकी को देखकर धमधमा के टूट पड़ता है। और युद्ध करता है। वैक्रिय रूप करके क्षेत्र भावसे प्राप्त हुये शस्त्रों को लेकर वे एक दूसरे के टुकड़े कर डालते हैं। मानो कतलखाना हो। क्रोध के आवेश से परस्पर पीडा करते होने से खूब दुख अनुभवते हैं। और खूब कर्म बांधते हैं।

सम्यग् द्रष्टि नारक दूसरों के द्वारा उत्पन्न की गई पीडा को तात्विक विचारणा से सहन करते हैं। और मिथ्यादृष्टि नारकों की अपेक्षा कम पीडावाले और कर्मक्षय करनेवाले होते हैं। फिर भी मानसिक दुख की अपेक्षा ये समकिती नारक बहुत दुखी होते हैं। क्योंकि पूर्वकृत कर्मों का संताप जितना उनको होता है उतना दूसरों को नहीं होता है।

इस प्रकार क्षेत्र वेदना और परस्पर कृत वेदना भोगने के उपरांत नीचे मुजब परमाधामी कृत वेदना भी भोगते हैं :—

नारक के जीवों को परमाधामी देव धधकती लोहे की गरम पुतली के साथ भेट कराते हैं। खूब तपाये हुये सीसा का रस पिलाते हैं। शस्त्रों से धाव करके उसके ऊपर क्षार डालते हैं। गरम गरम तेलसे नहाते हैं। भट्ठी में भूंजते हैं। भालाकी नोक पर पिरोते हैं। कोल्हू में डालकर पीलते हैं। करवत से चीर डालते हैं। अग्नि जैसी रेती पर चलाते हैं। उल्लू, वाघ, सिंह वगैरह

के रूप करके कदर्थना करते हैं। मुर्गों की तरह परस्पर लड़ाते हैं। तलवार की धार जैसे असिपत्र के वनमें चलाते हैं। हाथ, पैर कान, ओठ, छाती, आंख वगैरह भालासे छेद डालते हैं।

ये परमाधामी नारकियों को जब कुंभी में डाल कर पकाते हैं तब अति दारुण यातना से वे नारकी पांचसौ योजन तक उछलते हैं। और जब नीचे गिरते हैं तो गिरने के साथ ही वाघ सिंह वगैरह सब विकुर्वी उन जीवों को खत्म कर डालते हैं। (फिर भी ये जीव मरते नहीं हैं)। जीवों की यह कदर्थना (बुरी दशा) देखकर के परमाधामी खूब प्रसन्न होते हैं।

पंचाग्नि तप वगैरह अज्ञान कष्ट करनेवाले मनुष्य मरके अतिनिर्दय और पापात्मा परमाधामी बनते हैं। वे दुखी दीन और तड़फते नारकियों को देखकर खूब खुश होते हैं। खुश होकर के अट्टहास्य करते हैं। एसी कुतूहल वृत्ति से नारक के जीवों को दुख देकर के आनन्द में मग्न बनने वाले पमाधामी देव मरकर के "अंडगोलिक" नाम के जल मनुष्य होते हैं। उनको उनके भक्ष्य का लालच देकर के उनके शिकारी किनारे लाते हैं और यन्त्र में डालकर के छ महीना तक पीलते हैं। इस प्रकारकी घोर कदर्थना सहन करके वे मृत्यु प्राप्त कर के सीधे नरकमें जाते हैं। और वहां वे भी दूसरे परमाधामीयों के द्वारा बड़े दुःख प्राप्त करते हैं।

नारकीयों को सदा दुःख और दुःख ही होता है। फिर भी शाताकर्म के उदय से, जिनेश्वर भगवंत के जन्म कल्याणक आदि प्रसंगमें, अरिहंत वगैरह के गुणों की

अनुमोदना करके, सम्यक्त्व की प्राप्तिके समय, और दो मित्र हों उनमें एक मर कर के देव हो और दूसरा मर कर के नरक में जाय तो पूर्वभव के स्नेह से देव उस नरक में गये मित्र की पीडा को देव शक्ति से कुछ समय तक उपशमाते हैं। तव कहीं उस नारक को सुखानु भव होता है।

एसी नारकीयों की वेदना को समझ कर के समझ दार आत्माओं को स्वयं नरक गति में नहीं जाना पड़े इसलिये हिंसा, रौद्रता. आदि पापों से वचने के लिये प्रयत्नशील वने रहना चाहिये।

इन नारकीयों के दुखों की अपेक्षा भी अनंत गुने दुःखों का एक दूसरा स्थान है :- कि जिसके अन्दर यह जीव अनन्तानन्त काल तक रह कर के और अथाग वेदना सहन करके आया है। उस स्थान के वारे में समझाते हुये शास्त्रकार महाराजा फरमाते हैं कि :-

"जं नरए नेरइया दुहाइं पावंति घोर अणंताइं
तत्तो अणंत गुणियं निगोअमज्झे दुहं होइ।"

अर्थात् नरक में रहने वाले नारकी जीव घोर अनन्ता दुखों को पाते हैं। उन नरकों के दुखों से भी अनन्ता गुना दुःख निगोद में रहनेवाले जीव भोग रहे हैं।

पौद्गलिक वासना के आधीन वने हुये कितने वहुल कर्मी जीव नीचे उतरते उतरते ठेठ निगोद तक पहुंच कर के अनन्त दुःखों के आधीन हो जाते हैं। अनादि काल से सूक्ष्म निगोद में रहते जीव परिभ्रमण कर के पीछे सूक्ष्म निगोद में गये जीवों के दुःख में विलकुल फेरफार नहीं है। सिर्फ भवभ्रमण करके ठेठ सूक्ष्म निगोद में गये वे

व्यवहारिक जीव कहलाते हैं। और अनन्त काल से किसी दिन बाहर नहीं निकले हुये अव्यवहारिया कहलाते हैं।

निगोद जो चौदह राज लोक में ठूंस ठूंस कर के भरी हुई है उस निगोद के असंख्यात गोला हैं। एकेक गोले में उन निगोद के जीवों के असंख्याता शरीर हैं। और एकेक शरीर में अनंता जीव हैं। जो केवली भगवन्त की ज्ञान दृष्टि के सिवाय दूसरे किसी से भी देखे जा सकें एसे नहीं हैं।

निगोद में अनन्ता जीवों को रहने का एक शरीर होने से बहुत ही सकरे स्थानमें तीव्र वेदना भोगनी पड़ती हैं। उस निगोद के अन्दर कर्म के वश हुआ तीक्ष्ण दुखों को सहन करता, एक श्वासोच्छवास जितने अल्प काल में सत्रह भव अधिक भव करने पड़ते हैं। और इनके द्वारा जन्म मरण की बहुत वेदना सहन करते करते "अनंता पुद्गल परावर्तन तक जीव रहा है।

असंख्यात वर्ष का एक पल्योपम। दश कोटा कोटि पल्मोपमक। एक सागरोपम, वीस कोडा कोडी सागरोपम की उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिल के एक कालचक्र अनंताकाल चक्र का एक पुद्गल परावर्तन एसे अनन्ता पुद्गल परावर्तन काल तक उस निगोद में रहने वाले जीव ऊपर मुजब अति अल्प समय का एक भव इस तरह वारं-वार जन्म मरण करने के द्वारा भव करते करते काल व्यतीत कर अनंतानंत दुख भोगे।

इस प्रकार सूक्ष्म निगोद में अनंतकाल निकाल कर के अकाम निर्जरा के द्वारा यह जीव बादर निगोद में उत्पन्न हुआ। वहां आलू, गाजर, मूला (मूरा) कांदा (प्याज)

सकरकंद (सकला) थेग, हरा आदा वगैरह वगैरह-जिसमें अनन्त जीवों के वीच एक ही शरीर है एसी अनन्त काय वनस्पति वादर निगोद में प्रवेश कर के वहुत रझला (फिरा) वहुत वेदना भोग कर के वहां से भी अकाम निर्जरा के योग से पुण्य की राशि वढने से अनुक्रम से यह मनुष्य भव प्राप्त किया।

इतना तो सव कोई समझ सकता है कि एक दफे जिस काम को करने से वहुत वेदना हों, जिससे पारावार (वेशुमार) नुकशान हुआ हो, और जिससे मरणांत कष्ट हुआ हो उस कार्य में मूर्ख मनुष्य भी प्रवृत्ति नहीं करता है। तो फिर समझदार और सुज्ञ मनुष्य तो एसी प्रवृत्ति करेगा ही क्यों? फिर भी जो एसे अघोर पाप करके निगोद के स्थानमें जाने जैसी प्रवृत्ति करे तो उसे कैसा समझना? उसका भव्य जीवों को स्वयं विचार करना चाहिये।

ये वचन श्री सर्वज्ञ प्रभुके हैं। सर्वज्ञ प्रभु के राग और द्वेष मूल से नाश हो गये होते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातीकर्म के वन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता की कर्म प्रकृति मूल से नाश होने के कारण आत्मा की अपूर्व शक्ति प्रगट होने से केवलज्ञान के द्वारा यथास्थित वस्तु जैसे स्वरूप में है उसी तरह से देख करके भव्य जीवोंको वताते हैं। लोकालोक का स्वरूप समय समयमें उनके केवलज्ञान में प्रकाशित हो रहा है। इसलिये उनके द्वारा वताये हुए निगोदादि अतीन्द्रिय पदार्थों में लेश मात्र भी शंका करने जैसी नहीं है। इस कारणसे "तमेव सच्चं जं जिणे हि भासियं।" वही सच्चा है जो जिनेश्वर देवने भाखा है।

इसमें हे आत्मा, लेशमात्र भी शंका नहीं करना। तेरी बुद्धि अल्प है, परमात्मा के ज्ञानके सामने लेशमात्र भी तेरी बुद्धि काम नहीं कर सकती है। ये स्वाभाविक है। यह तो जैन शासन है। जैन शासन के प्रणेता श्री तीर्थंकर परमात्मा हैं। केवलज्ञान प्राप्त होते ही वे परमात्मा चतुर्विध संघकी स्थापना करते हैं और त्रिपदी के द्वारा विश्वके पदार्थों का स्वरूप दिखाते हैं। उन त्रिपदि को सुनकर गणधर उसकी सूत्र रचना करते हैं। जो जैनागम तरीके पहचानी जाती है। महा पुन्यशाली आत्मायें ही श्री तीर्थंकर देवों की वाणी का समूह रूप जैनागमों का श्रवण कर सकते हैं।

मानव जीवन मोक्षमें जाने के लिये जंकशन है। जिस प्रकार जंकशन से अनेक लाईनें निकलती हैं। हरेक स्थल गाड़ी जानेके लिये फाँटें तो जंकशन से ही पड़ते हैं। उसी प्रकार मानवजीवन में से अनेक लाईनें निकलतीं हैं। दंडक सूत्रमें कहा है कि-"सव्वत्थ जंति मणुआ।"

तुम्हारी इच्छा किस लाइन में जाने की है?

मोक्ष में जाना हो तो अपने हाथ की बात है। क्योंकि मोक्षमार्ग की आराधना इस मानव भवके सिवाय होनेवाली ही नहीं है। देव के शरीर की अपेक्षा मानव का शरीर दुर्गन्ध की पेटी के समान है। फिर भी मोक्षकी साधना को तो अनुत्तर वासी देवों को भी मनुष्य भव लेना पड़ता है। लेकिन साथ साथ इतना जरूर समझ लेना कि मानव भवकी महत्ता भौतिक अनुकूलता की प्राप्ति में नहीं है। यह दुर्लभता तो संयम साधना की अनुकूलता को अनुलक्ष करके ही मानी गई है। इसीलिये

तीर्थंकर परमात्मा के जीव राज्य ऋद्धि के भंडारों को ठुकरा करके चल निकलते हैं।

निगोदादि के शरीर जैसे शरीर चर्मचक्षु से नहीं देखे जा सकते। उनको देखने के लिये तो केवलज्ञान और केवल दर्शन ही चाहिये। इसलिये केवलज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति का प्रयत्न करो।

जो जीव निगोद में से एक वक्त बाहर निकलता है उसे व्यवहार राशिवाला कहते हैं। अनादिकाल से निगोद में से जो निकला ही नहीं है। वह अव्यवहार राशिवाला कहलाता है। अपना नंबर व्यवहार राशि में है। सम्पूर्ण दिनमें आत्मा कितनी बार याद आती है? तुम तो आत्मा के ही पुजारी ह जो आत्मा का पुजारी हो वही आत्मा को याद करता है।

तिजोरी में धन रखते हुये जितना आनन्द आत्मा को आता है उसकी अपेक्षा अनेक गुना आनन्द तिजोरी में से निकाल के धर्ममार्ग में उपयोग लाने के टाइम आवे तभी हृदय में धर्म बसा कहा जा सकता है।

कोई चन्दा (टीप) आवे उस समय दूसरोंने बड़ी रकम दी है एसा जान करके अपनेको भी एक सौ रुपया देना ही पडेंगे। एसा मान करके एक सौ देना पडेंगे की गिनती से पचास देनेकी बात से शुरू करे। सामनेवाला आदमी पचास के बदले साठ देनेका कहे तब साठ मंडा करके मनमें चालीस बचने के आनन्द का अनुभव करने वालेको समझना चाहिये कि तेरे चालीस बचे नहीं किंतु साठ भी गँवा दिये हैं। क्योंकि साठ खर्चने की अनुमोदना मनमें नहीं है।

इस संसार में मोह का साम्राज्य अधिक है। जो मोहकी पराधीनता में आनन्द मानता है उसे आत्मा का पूजारी कह ही नहीं सकते। मोह का साम्राज्य एसा है कि तुम उपाश्रय में रहते हो वहां तक तुम्हें धर्म याद आता है परंतु घरमें जाने के वाद वैराग्य टिकता नहीं है। जैसे गधे को सौमन सावून से नहलाया जाय किन्तु जहाँ राखका ढेर देखे कि आलोटे विना नहीं रहेगा इसी प्रकार संसारी जीव धर्म स्थानक में से वाहर जाय तो संसार में रमे विना नहीं रहेगा।

जिन वस्तुओं में अपन सुख मानतें हैं उनमें दुख भरा हुआ है। निर्ग्रन्थ मुनि संयम साधना द्वारा भवको रोकनेवाले होत हैं सुन्दर कोटि की आराधना करने से संसार की तकलीफें दूर होती हैं। जिसने जीवन में धर्म किया है। उसका संसार अटक जाता है।

रस गारव, ऋद्धि गारव और शाता गारव इन तीनों के जो त्यागी होते हैं वे साधु कहलाते हैं।

जगत के जीव संसारी कार्यों में जितनी मेहनत करते हैं अगर उतनी धर्मकार्यों में करते हो जायें तो श्रेय दूर नहीं है।

भगवान को आंगी इसलिये की जाती है कि वालजी व धर्म को प्राप्त हो जायें और वोधिको प्राप्त करें। भगवान को मुकुट पहनाइये तव उनकी राज्य अवस्था को याद करना है। वे राजवी होने पर भी राज्य को त्याग करके दीक्षा ली थी।

कोल्हू के वैल के समान संसार में चक्कर लगाते

फिरना है। यह परिभ्रमण अटकाने के लिये भगवान की तरह अपन को भी त्यागी बनना पडेगा।

सदाचार पूर्वक का रूप प्रशंसा करने लायक है। दुराचार पूर्वक का रूप निंद्य है। रूप किसी बाह्य उपचार से नहीं मिलता है। किन्तु पूर्व की आराधना से मिलता है।

कर्म के हिसाब से जो स्थिति अपन को मिली हो उसमें संतोष मानना चाहिये। उस स्थिति को सुधारने के लिये धर्म करना चाहिये।

मगधाधिपति श्रेणिक महाराजा पुन्य के भेद को समझने वाले थे। वे राज्य सभामें बैठके कहते थे कि राज्य का पुन्य अच्छा है। परन्तु सच्चे पुन्यशाली तो शालिभद्रजी हैं। मेरे राज्यमें एसे पुन्यशाली जीव हैं उनके प्रताप से मेरा राज्य शोभता है।

पुन्यशाली शालिभद्र को देखने का राजा विचार करने लगे। परन्तु राज्यकार्य में तल्लीन बने रहने से फिर भूल जाते हैं।

इस तरफ किसी व्यापारीने प्रयत्न कर के सोलह रत्न कम्बल तैयार कीं। उन रत्न कंबलों को बेचने के लिये विविध नगरों में फिरते थे। किन्तु व्यापारियों की रत्न कंबल बहुत ही मूल्यवान होने से खपती नहीं थी। परन्तु स्थान स्थान में मगधाधिपति श्रेणिक महाराजा की होने वाली प्रसंसा से आकर्षा कर के वे व्यापारी राजगृही नगरी में आये। और एक पांथशाला में उतरे। सुबह स्नान कर के शुभ शुकन देखकर के वे व्यापारी श्रेणिक महाराजा के पास आकर के नमस्कार करने लगे।

महाराजाने पूछा कि हे महानुभाव, कहां से आये?

क्या समाचार हैं? कुशल तो है? एसे मिठाश भरे वचन सुनकर सौदागर प्रसन्न हो गये। और कहने लगे कि महाराज, आप की प्रशंसा सुन कर के ही यहां तक आये हैं। आपके अन्तःपुर के लिये कई नूतन वस्त्र लाये हैं। क्या लाये हो? महाराजा ने पूछा। रत्न कंवल लाये हैं। रत्न कंवल? हां महाराज। कितनी लाये हो? महाराज, सोलह लाया हूं। कितनी कींमत? महाराज, एक की कीमत एक लाख सोनामहोर है। पेटी (बोक्स) खोल के रत्न कंवल दिखाये। श्रेणिक महाराजा देखकर के प्रसन्न हो गये। लेकिन विचार करने लगे कि एसी महा मूल्यवान रत्न कंवल लेकर के क्या करना है। इतनी सुवर्ण मुद्रायें गरीबको दें तो उसका उद्धार हो जाय। निर्णय कर लिया कि बस। नहीं चाहिये। व्यापारियों को उद्देश्य करके बोले महानुभाव, एसी अति मूल्यवान कंवल लेने की मेरी इच्छा नहीं है। यह शब्द सुनकर के व्यापारी निराश वन गया। मनमें निर्णय कर लिया कि इतने देशोंमें फिरने पर भी मेरी कला का सन्मान नहीं हुआ। वह सचमुच में मेरे पुन्य की कचाश है। महाराजा को नमस्कार कर के व्यापारी चला गया। श्रेणिक महाराजाने वहां से उठ कर अपनी प्रिय पट्टरानी चेल्लणा देवी के पास जाकर रत्न कंवल की सब बात की। बात सुनकर के चेल्लणा देवीने कहा कि कितनी भी महंगी हो फिर भी मुझे चाहिये। श्रेणिक महाराजाने महारानी को खूब समझाया लेकिन ये तो स्त्री हठ। नहीं प्रियतम। मुझे तो चाहिये चाहिये चाहिये। इस लिये ला के दो। ठीक। तलाश करा के खबर दूंगा। एसा कह के महाराजा वहां से निकल गये।

इस तरफ व्यापारी निराशा वदन से पीछे फिरने

लगा। धीरे धीरे राज मार्ग से गुजर रहा था। वहां सात मजला वाले प्रासाद के तीसरे मजले पर बैठीं महादेवी भद्रा शेठानी की द्रष्टि इस व्यापारी के ऊपर पड़ी। व्यापारियोंने एसी भव्य महलात देख कर प्रासादके द्वारपाल से पूछा यह महान इमारत किसकी है? द्वारपाल ने प्रत्युत्तर दिया कि यह भवन गोभद्र शेठ के सुपुत्र शालिभद्र जी का है। वे अपार वैभवशाली हैं।

व्यापारी को जरा आशा बंधी। देखूं तो जरा प्रयास तो करूं। लग गया तो तीर नहीं तो तुक्का।

सौदागर कहने लगा कि मेहरबान, मुझे इस भवन के संचालक के पास जाना है। तो उनके पास मुझे लेजाने की कृपा करो। द्वारपाल इस सौदागर को भद्रा माता के पास ले गया। नमस्कार कर के सौदागर एक आसन पर बैठा। भवन की शोभा देखकर के सौदागर विचार करने लगा कि एसी शोभा कहीं भी नहीं देखी। राज्यभवनकी भी एसी शोभा नहीं थी। सचमुच में महा सम्पत्ति शाली लगता है। जो पुन्य हो और आशा फले तो ठीक।

मौन का भंग करते हुई भद्रमाता कहने लगीं कि महाशय! कहां से आये हो? क्या लाये हो?

माता जी, मगधाधिपति की कीर्ति सुन कर आशा से आया था। परन्तु आशा में निराशा परिणमी।

क्यों क्या हुआ? शेठानी ने पूछा। प्रत्युत्तर में सौदागर ने सब हकीकत कह दी। और साथ साथ कंबल की कीमत भी समझाई। रत्न कंबल देख कर के भद्रा माता विचार करने लगी कि आशा भरा आया हुआ सौदागर इस नगर से निराश होकर जाये ये ठीक नहीं है। एसा

विचार कर के बोली कि देखो महाशय, मेरी बत्तीस पुत्र वधुयें हैं। इस लिये तुम बत्तीस कंवल लाये होते तो ठीक होता। लेकिन खेर। जो लाये सो ठीक। भंडारी, जाओ ये सोलह कंबल लेकर उनकी कीमत की सुवर्ण मुद्रा ये सौदागर कहे उतनी उसको चुकादो। जैसी आज्ञा। एसा कहके भंडारी ने व्यापारी को साथ ले जाके कीमत चुका दी। व्यापारी के हर्ष का पार नहीं रहा।

भद्रा माताने सोलह कंवल के बत्तीस टुकड़ा करके बत्तीस पुत्रवधुओं को एक एक टुकड़ा दे दिया। इन पुत्र वधुओंने भी स्नान करके शरीर पोंछकर रत्नकंवलों को डाल दीं।

चेलणारानी की अति हठके कारण श्रेणिक महाराजाने सेवकों द्वारा कंवल के सौदागर की तलाश कराई। तो उनको मालूम हुआ कि सोलह कंवल भद्रा माताने खरीद ली हैं और पुत्रवधुओंने उनका उपयोग केवल शरीर लूछने तक ही करके कंवलों के टुकड़े फेंक दिये हैं। श्रेणिक महाराजा को दिलमें गौरव उत्पन्न हुआ कि ऐसे वैभवशाली भी हमारे नगरमें बसे हुए हैं। इसके ऊपरसे समझना है कि भारत के राजा अपने नगरजनों को वैभवशाली बना हुआ देखकर के उनका वैभव छुड़ा लेनेकी बुद्धि नहीं रखते थे किन्तु अपने राज्य का गौरव मानते थे। क्योंकि उस समय के भारत के राजा भी आस्तिक संस्कारों से रंगे हुए थे। जिसे जो कुछ मिलता है वह उसके पुण्य से ही मिलता है। पुण्योदय से मिली लक्ष्मी को छुड़ा लेने पर भी पापोदयवालों के पास टिकती नहीं है और पुण्य-शालियों की कम नहीं होती है। इसलिये पुण्यशालियों

को समृद्धिवंत देखकर ईर्ष्या की ज्वालामें जलते रहने की कुसंस्कृति उस समयके भारतवासियों में नहीं थी।

श्रेणिक राजा विचार करने लगे कि एसे पुण्यशाली शेठ के मुझे भी दर्शन करना चाहिये। दूसरे दिन मंगल प्रभातमें श्रेणिक महाराजा शालिभद्र के भवन में पधारे। भद्रा माता और पुत्रवधूओंने श्रेणिक महाराजा को सच्चे मोतियों से सत्कार किया। भद्रा माता सविनय मगधाधिप से पूछने लगी कि हमारे जैसे रंक के घर आपके पुनीत चरण कैसे अलंकृत किये। श्रेणिक महाराजाने कहा कि मेरे नगरमें वसते महापुन्यशाली श्रेष्ठि शालिभद्र के दर्शन करने आया हूं। वे कहाँ हैं? शेठानीने कहा कि वे सातवें मंजिल पर हैं। आप तीसरी मंजिल पर पधारो मैं उनको बुलाती हूँ। महाराजा तीसरी मंजिल पर पधार कर एक भव्य आसन पर विराजे। भवनकी शोभा देखकर महाराजा तो विचार में पड़ गये कि मेरे दिवानखाने की ओर राज सभाकी भी एसी शोभा नहीं है जैसी शोभा इस भवनकी है, तो सातवीं भूमि की शोभा तो कैसी होगी? एसे विचार तरंगोंमें मग्न श्रेणिक राजा विराजमान थे।

भद्रा माताने सातवीं मंजिल पर जा के अपने प्रिय पुत्र शालिभद्र से कहा कि हे पुत्र, अपने घर श्रेणिक महाराजा आये हैं। उन्हें तेरे दर्शन करना हैं इसलिये तू नीचे आ।

सुख के वैभव में उछरे हुए शालिभद्रजी को ये भी मालूम नहीं था कि महाराजा का मतलब क्या होता है। नगरके, देशके मालिक! सत्ताधीश। वे तो महाराजा का मतलब किसी प्रकार का माल किराना। एसी समझपूर्वक

कहने लगे कि माताजी, मुझे नीचे आनेका क्या काम है? जो आया हो उसे वखारसें (गोदाममें डाल दो)। पुत्र के एसे प्रत्युत्तर से माता कहने लगी कि हे पुत्र, ये कोई वखार में डालने की चीज नहीं। ये तो मगधाधिपति महाराजा श्रेणिक हैं। अपने मालिक हैं, अपने स्वामी हैं। अपन तो इनकी प्रजा कहलाते हैं। इसलिये उनकी आज्ञा अपनको पालनी ही चाहिये। एसा समझा के माता अपनें पुत्रको तीसरी मंजिल पर लाती है। चार मंजिल की सोपान श्रेणी उतरते उतरते तो शालिभद्र श्रमित बन गये। गुलाव की कली जैसे सुकोमल मुखारविन्द पर मोती जैसें पसीने के बिन्दु झलकने लगे। कोमल काया वहुत ही श्रमित वन गई।

राजहंस जैसी गतिसे चलते हुए शालिभद्रजी श्रेणिक महाराजा के पास आकर के वैठे। श्रेणिक महाराजा प्रसन्न हो गये। औपचारिक वातचीत करके महाराजा विदाय हो गये।

महाराजा विदाय होलेके वाद स्वस्थाने गये शालिभद्रजी का मन विचार के संकल्प विकल्प में चकडोले चढ़ गया (चक्कर खानें लगा)। "पुत्र, ये तो अपने स्वामी हैं।" इस प्रकार श्रेणिक महाराजा का परिचय कराता हुआ पूर्वोक्त वाक्य शालिभद्रजी की दृष्टि के सामने स्थिर वन गया। वस! जवतक मेरे ऊपर स्वामी हैं तवतक मेरा इतना पुन्य कम। शालिभद्र इस प्रकार विचार करने लगे।

अपना पिता गोभद्र शेठ देवपने में उत्पन्न होने के वाद पुत्र प्रति वात्सल्य भावसे प्रतिदिन निन्यानवें पेटियाँ धनकी यहाँ सातवीं मंजिल पर भेजता था। शालिभद्रजी

की बत्तीस पत्नियाँ और माता भद्रा शेठानी ये सब पुन्य शाली आज पहने हुए वस्त्र और अलंकार दूसरे दिन नहीं पहनते थे। भोजनमें नित्य नयी नयी रसवती जीमते थे। पानी मांगने पर दूध हाजिर होता था। सेवा करनेवाले दासदासी प्रति समय हाजिर रहते ही थे। सात भूमि प्रासादमें से कभी भी नीचे उतरने का काम नहीं था। दर्शन करने के लिये जिन मन्दिर भी प्रासादमें ही था।

इस प्रकार मानवलोक में बसने पर भी देवत्व के गुण का आस्वाद मानते मानते वर्षों बीत गये। फिर भी खबर नहीं हुई कि काल कहां गया। सदा प्रफुल्लित वदने रहते अपने पुत्रको देखकर माता भी सन्तुष्ट रहती थी। परन्तु आज उदासीनता में गमगीन मुखार विन्दवाले अपने पुत्रको देखकर माता पूछने लगी कि हे बेटा, एसा तुझे क्या दुख लग गया कि तू उदास है। कुछ नहीं माताजी! ना, एसे नहीं चलेगा। जो हो उसका खुलासा करे। माताने आग्रह पूर्वक कहा तब शालिभद्र कहने लगे कि माता, इस संसार में से मेरा मन उठ गया है। पुत्रका एसा जवाब सुनकर स्तब्ध बनी हुई भद्रामाता पूछने लगीं कि एसा क्यों? एका एक क्या हुआ? माताजी "ये तो अपने स्वामीं हैं। ये आपके शब्दों ने ही मुझे वैराग्य वासित बना दिया है। जबतक मेरे सिर पर स्वामी हैं तबतक मेरे पुन्य की कमी है। स्वामी है। इस स्वामी को टालने के लिये ही मुझे संसार छोड़ना है। शालिभद्रजी ने माता के पास स्पष्ट खुलासा कर दिया। यह बात सुनते ही भद्रामाता बेबाकला (बावरी) बन गईं। खूब दुखी हो गईं। हे दैव, ये तूने क्या किया? श्रेणिक को मेरे घर क्यों भेजा? मेरे सुख के रंग में भंग क्यों पडा? क्या करूं? क्या ना करू?

भद्रामाता अपने पुत्रको खूब समझाने लगीं। फिर भी शालिभद्रजी अपने निर्णय में अडिग रहे इस बात की खबर उनकी बत्तीस स्त्रियोंको और दासदासियों को होते ही वे सब अनेक रीत से शालिभद्रजी की सेवामें तल्लीन बन गईं जरा भी प्रमाद किये बिना इशारे से काम करतीं हो गईं। अगर भूले चूके प्रियतम को दुख होगा तो चले जायेंगे। इस कारण से उनको खुश करने में खूब सावधान बन गईं।

थोड़े दिन तक विचार करने के बाद शालिभद्र ने एक योजना निश्चित की ये योजना जाहिर होते ही सबके हृदय में भारे वेदना उद्‌भवी। यह योजना छोड़ा देने के लिये अनेक प्रयत्न किये अनेक युक्तियां अजमाई फिर भी शालिभद्रजी की मक्कमता (दृढ निश्चय) में जरा भी फर्क नहीं हुआ। योजना एसी बनाई कि क्रम क्रमसे सबका त्याग।

रोज एक पत्नी और एक पलंग का त्याग। बत्तीस दिनमें योजना की पूर्णता हो। तेतीसवें दिन भवन का भी त्याग करके श्रमण भगवान श्री महावीर देव के चरणकमल में जीवन को समर्पण करके सर्व त्याग रूप साधुपने का स्वीकार करना।

उनकी इस योजना से भवन में बजती संगीत सुधावली अदृश्य हो गई। नये नये गानतान बन्द हो गये। दास-दासियों के हँसते चेहरे उदास हो गये।

बत्तीस ही बत्तीस पत्नियों ने रोना शुरू कर दिया। योगी भी चलित हो जायें एसा आक्रन्द भरा सदन सुनाई देने लगा। भद्रामाता उदास चेहरे से ये सब देखतीं रह गईं।

इस तरफ शालिभद्रजी के बहनोई धन्नाजी स्नान करने बैठे। इनके भी आठ सुपत्नियां थीं। एक एक से चढे एसी और आज्ञांकित थीं। और अपार लक्ष्मी थी। एसा वैभव शाली जीवन धन्नाजी भी विता रहे थे। किसी बातकी उनको कमी नहीं थी। देखो वहां प्रेम, उत्साह और आनंद नजर दिखाई देता था।

ये धन्नाजी और शालिभद्रजी साले बहनोई के संबन्धसे जुड़े थे। पुन्य शालियों के संबन्ध पुन्य शालियों से ही होते हैं। धर्मीयों के संबंध धर्मीयों से ही होते हैं। तुम तुम्हारे पुत्र-पुत्रियों के लग्न धर्मीयों के साथ करने का प्रयत्न करते हो कि धनवान के साथ? (सभाको उद्देश्य करके)। साहेब, धन होगा तो सुखी होगा। इसलिये हम धनवान को बहुत पसंद करते हैं। (सभामें से)।

लेकिन क्या तुमको खबर नहीं है? कि धर्म के आधार पर धन है अथवा धनके आधार पर धर्म है? यह बात समझलोगे इसलिये तुम्हारी सान ठिकाने आ जायगी।

धन्ना और शालिभद्र दोनो तो धर्मात्मा थे। और पुण्यात्मा थे। सरस जोड़ी बनी थी। इतनी पुण्यकी सामग्री मिलने पर भी इसमें फंसे नहीं थे। इसीलिये शास्त्रकारों ने एसे पुन्य शालियों के उदाहरण शास्त्रमें टांके हैं। तुम्हें भी तुम्हारा नाम शास्त्रों में लिखाना हो तो जीवन को धर्ममय बनाने के लिये तत्पर हो जाओ।

पहले के समय में पत्नियां अपने प्राणनाथ को स्नान करातीं थीं। धन्नाजी को उनकी आठों पत्नियां स्नान

करा रही थीं। वहां उनमें से शालिभद्रजी की वहन के आँख में से दो आंसू धन्नाजी की पीठ पर टपक पड़े। स्नान शीतल जलसे चलता था। वहां शरीर पर गिरे अश्रुकी गरमी से धन्नाजी इकदम चमक उठे। यह क्या है। शीतल जलसे किये जा रहे स्नान में उष्णता कहां से ऊंचे देखने लगे। देखा कि शालिभद्रजी की वहन रो रही है। धन्नाजी उनसे रोनेका कारण पूछने लगे। पत्नी प्रत्युत्तर में कहने लगी कि स्वामीनाथ मुझे दूसरातो कोई दुःख नहीं है परन्तु मेरा भाई शालिभद्र इस संसार से वैरागी बना है। और रोज रोज एक पत्नी का त्याग करता है। वत्तीस दिनमें सब छोड़ देगा इसलिये मैं रो रही हूं।

धन्नाजी कहने लगे कि इससें क्या हुआ? त्याग यही आर्य संस्कृति का भूषण है। तेरा भाई कायर है। इसलिये धीरे धीरे छोड़ता है। छोड़ना और फिर धीरे धीरे किस लिये? जो त्याग करना है तो एकी साथ छोड़ देना चाहिये।

पति के ये वचन सुनकर पत्नी ने कहा कि स्वामीनाथ। कहना तो सरल है मगर करना बहुत कठिन है। आठों पत्नियां एक हो गईं। सब समझती थीं कि हमारे मोह में जकड़े हुये प्रियतम हमें छोड़कर कहां जानेवाले हैं? इसलिये आठों कहने लगीं कि स्वामीनाथ। विरोध वोलने में नहीं किन्तु करना मुश्किल है।

पतिने कहा कि करने में भी मेरे मनसे तो जरा भी मुश्केली नहीं है।

वहां तो पत्नियोंने कहा कि करके वताओ तो हम मानें बस! एसे निमित्त की जरूरत थी।

तेजीको टकोर बस होती है। बोलो तुम्हें कबूल है? पत्नियाँ समझीं कि स्वामिनाथ, मजाक कर रहे हैं। यों कहीं चले जानेवाले नहीं हैं। इसलिये उनने कहा हां, हां कबूल है।

तब धन्नाजीने कहा कि लो इतनी ही देर! ये चला। उसी समय सबको त्याग करके चल निकले।

फिर तो आठों की आठ खूब विनती करने लगीं। कालावाला करने लगी मतलब गिड़गिड़ा ने लगीं ओर हंसते हुए कहा गया उसको माफी मांगने लगी। लेकिन अब माने तो धन्ना नहीं। आगे धन्नाजी चले जा रहे हैं। पीछे देवांगना जैसी आठों पत्नियाँ रूदन करती हुई भूलकी माफी मांग रही थीं।

धन्नाजी आये शालिभद्र के भवन के बाहर। वहाँ खड़े हो के आवाज करने लगे कि हे शालिभद्रजी, एसे तो कहीं त्याग होता होगा? चलो मेरे साथ! मैं तो एकी साथ त्यागके आया हूं। दोनों सर्व त्यागके पंथ चले गये।

"धन्नो शालिभद्र गुणवंता त्यागी लक्ष्मी अपार।
एके त्यागी आठ तींहा तो दूजे बत्रीस नार॥"

दोनों पुण्यात्माओंने श्रमण भगवान श्री महावीरदेव के चरणकमल में जीवन समर्पण कर दिया।

अमृत झरती भगवान की मधुर देशना सुनके दोनो खूब प्रसन्न हुये। देशना पूरी हुई। सब बिखरने लगे। लेकिन ये दोनो पुण्यशाली बैठे ही रहे।

प्रभुको हाथ जोड़ के कहने लगे कि भगवन्त, हमारा मनोरथ दीक्षा लेनेका है। तो कृपा कर के हमको दीक्षा देकर धन्य बनावो।

प्रभुने दोनो को दीक्षा दी। दीक्षा ग्रहण करके दोनो ने अपना जीवन धन्य बना लिया।

आज नूतन वर्ष के प्रारंभमें चौपडा खाता में जैन लिखते हैं कि "धन्ना शालिभद्र की वृद्धि हो" इस का सच्चा रहस्य यह है कि "ये दोनो महात्मा पुन्यात्मा अढलक ऋद्धि और भौतिक सामग्री के मालिक होने पर भी ये साहबी में मोह को नहीं प्राप्त हुये। और त्याग के पंथ में जल्दी से निकल पड़े। इस लिये हमारे पुन्योदय से हमें भी एसी ऋद्धि मिल जाय तो भी ये प्राप्त ऋद्धि के संबंध से आसक्त नहीं बनकर के इन दोनों पुन्यात्माओंकी तरह त्याग के पंथ में विचरने की हमारी भावना बनी रहे यही हमारी इच्छा है।

विश्व के तमाम प्राणी भौतिक सामग्री के प्रति वैरागी बनके आत्म हितके ही चिन्तक बनो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान—सत्रहवां

मानव जीवन को सफल करने के लिये अनन्त उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि चौदह क्षेत्र में शत्रुंजय तुल्य कोई तीर्थ नहीं है। इस तीर्थ की एक नव्याणुं (निन्यानवे) यात्रा और इस तीर्थ में एक चौमासा अवश्य करना चाहिये।

पंडित मरण से मरने वाला अपना संसार अल्प करता है। और बाल मरण मरने वाले का संसार बढता है।

बाल मरण बारह प्रकारका है।

(१) वलाय मरण—वलोपात कर के मरना।

(२) वसार्त मरण—इन्द्रियों के वश होकर मरना।

(३) अनंतो सल्य मरण—शल्य पूर्वक मरना।

(४) तद् भव मरण—पुनः वहीं होने के लिये मरना।

(५) गिरि पडण मरण—पर्वत के ऊपर से गिर के मरना।

(६) तरु पडण मरण—इड़ि (वृक्ष) के ऊपर से गिर के मरना।

(७) जलप्रवेश—जल में डूब के मरना।

(८) अग्नि प्रवेश जल के मरना।

(९) विप भक्षण—जहर खाके मरना।

(१०) शस्त्र मरण—शस्त्र से मरना।

(११) वेह मरण—फांसो खाके मरना।

(१२) गीध पक्षी मरण—गीध आदि पक्षी से मरना।

गुरु सेवा करने वाले शिष्यों में भी कईक गुरुद्रोही होते हैं।

एक राजाने नगर में ढिंढोरा पिटाया कि उदायी राजाको मारे उसे एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा इनाम। एक आदमी ने उस बीडा को झडप लिया। और करार नक्की (पक्का) किया। अब तो उसे एक ही लगनी लगी कि राजाको किस तरह मारना।

उसने एक सुन्दर योजना बनाई। उस योजना के अनुसार उस आदमी ने आचार्य महाराज के पास जाके दीक्षा ली। साधुपने का उसका नाम विनय रत्न रखने में आया।

इस विनय रत्न साधुने साधु अवस्था होने पर भी ओघा में छुपी रीत से एक छुरा रक्खा। और इस बातकी किसी को भी खबर नहीं हो इसकी वह निगाह रखने लगा।

ओघा की पडिलेहण रोज करता था परन्तु छुरे का किसी को ख्याल नहीं आने देता था। अपनी बुरी इच्छा की सफलता के लिये आचार्य महाराज की सेवामें तल्लीन बन गया। गुरुकी वैयावृत्य और विनय इतनी सुन्दर रीतसे करता था कि उसकी तुलना में कोई साधु नहीं आ सकता था। आचार्य महाराज के निकलते वचन को झील लेना ये उसका कर्तव्य बन गया था। गुरु की सेवा में जरा भी खामी न आवे इसकी वह पूरी तकेदारी रखता था

इस तरह वर्षों के वर्ष बीत जानेसे आचार्य महाराज का वह पूर्ण विश्वासपात्र बन गया। एसे उस शिष्य पर गुरुका अगाध प्रेम था।

एक समय वे आचार्य महाराज एक नगरीमें पधारे। उस समय चतुर्दशी के दिन उस नगरके राजा उदायी को पोषध आराधना कराने के लिये राजाकी विनतीसे अपने विश्वासपात्र शिष्य विनयरत्न के साथ आचार्य महाराज राजभवन में पधारे। विनयरत्न को दीक्षा लिये उस समय बारह-बारह वर्ष का लम्बा समय बीत चुका था। फिर भी अभीतक उसे अपनी धारणामें सफलता की, अनुकूलता नहीं प्राप्त हुई थी। अपनी तय की हुई योजना अमल में लाई जा सके एसे सुन्दर संयोग आज मिल जाने से विनयरत्न खूब ही हर्षित बन गया था।

सम्पूर्ण दिन राजाको धर्माराधना करा के सायंकाल प्रतिक्रमण भी कराया। संथारा पोरिसी पढाई।

अंतमें स्वाध्याय करके आचार्य महाराज, विनयरत्न और उदायी राजा एक रूममें सोने लगे। पूरे दिन के परिश्रम से श्रमित बनें आचार्य महाराज और उदायीराजा निद्रादेवी की गोदमें इकदम लिपट गये।

धर्मा राधन में तदाकार बने महाराज उदायी को ये खबर नहीं थी कि आज उनकी मोत है। और वह भी एक गुप्तचर और वह भी साधु वेषमें रहे एक दुष्ट मानवी के हाथ से।

एसी अशुभ कल्पनो राजाने की भी नहीं थी। और करे भी क्यों?

रात्रिका अंधकार पूर्ण रीत से प्रसर गया था। निद्रादेवी का पूर्ण साम्राज्य जम गया था। उस समय पूर्ण बारह बजे के करीब कृत्रिम निद्रामें वश हुआ विनय रत्न उठा, ओघा को खोला। बारह बारह वर्ष जितने

समय तक खूब सावधानी पूर्वक संग्रह करके रखी हुई तीक्ष्ण धारवाली छुरी उसने निकाली। हाथमें छुरी धारण करके वह विनयरत्न धीरे कदम रखते हुए उदायी राजा के पास आया और अपना काला कृत्य करने के लिये तैयार हुआ परंतु राजाकी भव्य सुखमुद्रा देखकर क्षणभर तो विनयरत्न काँप उठा। फिर भी मनको अंतमें मजबूत बनाके दूसरे ही पल एक ही झटकामें हाथमें ली हुई छुरी राजा उदायी की गरदन पर चला दी। राजा के मस्तक और धड़ दोनों अलग अलग हो गये। खूनकी धारा वहने लगी। दुष्ट विनयरत्न एक पलका भी विलंब किये विना द्वार खोल करके राजभवन के बाहर निकल गया गृहस्थ-पनेके अपने वतन तरफ तुरंत पहुंचजाने के लिये शीघ्र प्रवासमें वह चलने लगा।

राजा के शरीर में से निकलती लोही की धारा आचार्य महाराज के संथारा तक पहुंच गई। आचार्य भगवन्त की कायाको लोही स्पर्श गया। प्रवाही पदार्थ कायाको स्पर्श करने से आचार्य महाराज जग गये। दृष्टि फेंक कर देखने लगे कि राजा के शरीर में से धाराबद्ध लोही (खून) वह रहा है।

दूसरी तरफ देखा तो विनयरत्न देखने में नहीं आया। विचक्षण आचार्य भगवन्त समझ गये कि यह कार्य दुष्ट एसे विनयरत्न का ही है। इसकी सेवामें मैं भान भूल के इस दुष्ट को मैं यहां लाया। सचमुचमें बड़ा अन्याय हो गया। सुबह नगरी में हाहा कार मच जायगा। लोग कहेंगे कि आचार्य महाराज ने विनयरत्न के हाथ से राजा का खून कराया। अरे! शासन की बहुत निन्दा होगी।

क्या करना? क्या हो? किसी तरह निन्दा नहीं होनी चाहिये। उत्सर्ग और अपवाद के जाननेवाले आचार्य महाराज ने कल्पना कर ली। जिस छुरी से राजा का खून हुआ उसी छुरी से मैं मेरी काया का त्याग करूं। सुबह लोग कहेंगे कि दुष्ट ऐसा विनय रत्न ही राजा को और आचार्य महाराज को मार के चला गया। बस। फिर जैन धर्म की निन्दा नहीं होगी।

आचार्य महाराज ने खून से लथपथ छुरी हाथमें ली। नवकार मंत्र का स्मरण किया। चार शरण स्वीकार किये। फिर आचार्य महाराज ने स्वहाथ में रही छुरी अपने गले पर फेर दी। धड और मस्तक विभिन्न हो गये। आचार्य महाराज का अमर आत्मा अमरलोक में चला गया। शासन का चमकता सितारा सदा के लिये अस्त हो गया। एक ही रात में राजा और आचार्य महाराज विदा हो गये।

प्रातःकाल की झालर रणक उठी (बजने लगी)। मंगल चालु हुए। रूमके बाहर खड़ा रक्षक राह देखने लगा। परंतु रूममें से कोई बाहर नहीं आया। ऐसा क्यों? रूमके पास जाकर के रक्षक देखने लगा। अंदर से कोई भी आवाज नहीं आया। क्या? अभी तक सब निद्राधीन होंगे। थोड़ी देर राह देखी। इतनेमें तो आचार्य महाराज के शिष्य गुरुमहाराज को लेने आ गये। महाराजा को लेने के लिये पट्टरानी वगैरह स्वजन आये। द्वार रक्षकके पास से सब बात सुनकर के सबको आश्चर्य हुआ। द्वार खोलने का प्रयत्न किया परंतु निष्फलता। अन्दर से बन्द दरवाजा कैसे खुले? यथायोग्य कारवाई करके दरवाजा खोला गया। रूममें दृष्टि पडते ही देखने वालों के हृदय

घिर गये। आँखोंमें से श्रावण भादरवां शुरू हुआ। इस रूदन के चीत्कार से राजभवन का वातावरण थंभ गया। राजभवन में रोककल (रोना) शुरु हुआ। नगरी में यह वात जाहेर होते ही जन समुदाय के समूह के समूह अपने प्रिय राजा के और आचार्य भगवन्त के दर्शन करने आने लगे। सम्पूर्ण राज्य में शोक जाहिर हुआ। मंत्री समझ गये कि दुष्ट विनयरत्न ही आचार्य महाराज और महाराजा का खून कर के चला गया। सचमुच में। इसमें किसी गुप्तचर का काम है। तलाश के चक्र गतिमान हुये। श्मशान यात्रा का कार्यक्रम जाहेर हुआ। पूर्ण मान से दोनो महा पुरुषों की अन्तिम विधि हुई।

राज्य की तमाम प्रजा की आँखों में से चोधार अश्रु वह रहे थे। सूर्य भी वादल के पीछे छिप गया। पक्षी दूर सुदूर वनमें चले गये। राज्य में एक महीना का पूर्ण शोक जाहिर हुआ। ध्वज अर्ध कांठी फरका दिया गया।

लोगों के मुख से एक ही वात सुनने मिलती थी कि विनयरत्न यह भयंकर खून कर के चला गया। जैन शासन के लिये आचार्य महाराज ने अपने प्राणो की आहुति दी तो जैन शासन की निन्दा नहीं हुई।

मनुष्य मरण पथारी (मृत्युशय्या) पर पड़ा हो उस समय उसकी इच्छा हो उसी प्रमाणे काम करना चाहिये जिस से उसका आत्मा आर्तध्यान से वच जाय।

मन को वश में करने के लिये स्वाध्याय करने की आज्ञा है। कर्म रूपी काष्ट को जलाने के लिये तप अग्नि समान है। जिस आदमी ने जिंदगी में खूब धर्म क्रिया की वह मृत्यु समय हंसते हंसते मरता है। और जिसने

जीवन में पाप बहुत किये हों वह मृत्यु समय रोते रोते मरता है।

भगवान ने जो छोड़ने को कहा है उसे अपन अच्छा कहें तो मिथ्यात्व कहलाता है।

जीवन में धर्म होगा तो धन पीछे पीछे आयगा। लेकिन धन के पीछे पड़ने से धन नहीं मिलता है। इस लिये मनुष्य का पुरुषार्थ धन की अपेक्षा धर्म में अधिक होना चाहिये।

अनंतानु बंधी कषाय चतुष्क और दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति इस तरह सात कर्म प्रकृतियों के क्षयोपशम समकित होता है। इन सातों प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक समकित होता है।

अनंतानु बंधी का उदय वाला मरते समय अपने कुटुम्ब को कहता है अमुक के साथ अपना संबन्ध नहीं है। इस लिये तुम उस से नहीं बोलना। और उसके ओटले पैर नहीं रखना।

राग द्वेष की गांठ को ग्रन्थी कहते हैं। और वह गांठ अकाम निर्जरा से पिगलाई जा सकती है।

जीवन में कभी भी जो परिणाम नहीं आये हों वैसे परिणाम जागना उसका नाम अपूर्व करण है। इस अपूर्व करण के समय ही ग्रन्थी भेद होता है। अनिवृत्तिकरण से समकित आता है। समकित एक बार भी आजाने से उस जीवका संसार अर्द्ध पुद्गल परावर्तन बाकी रहता है।

बन सके तो ज्ञानी की सेवा शुश्रूषा करो। जो न बन सकें तो मौन रहो। लेकिन ज्ञानी की निन्दा, कुथली,

अवर्ण वाद कभी भी बोला नहीं । जो अवर्ण वाद बोलोगे तो भवान्तर में जीभ नहीं मिलेगी । खाने पीने के लिये अन्न पानी भी नहीं मिलेगा । बोलो तो तोल के बोलो और करो तो जयणा से करो ।

अर्थ और काम की ज्वाला में दुनिया सुलग रही है । जन्म मरण की जंजाल में से दुनिया ऊंचीं नहीं आती है । यह है जगत का सनातन चक्र ।

आचारांग सूत्र में लिखा है कि जगत के जीव बकरा (बोकडा) की तरह वें वें करते हैं । यह कुटुम्ब मेरा । स्त्री मेरी । धन मेरा । इत्यादिक मेरा मेरा कर रहे हैं ।

पांच प्रकार के प्रमाद दुर्गति में ले जाते हैं । जन्तुओं के रक्षण के लिये देख के चलना उसका नाम है ईर्या समिति । गाडाकी धुरा के समान दृष्टि रख के चलना चाहिये । तभी जीवों की रक्षा हो सकती है ।

ज्यों त्यों देखते देखते नहीं चलना चाहिये । भगवान की पूजा भी सूर्योदय होने के पीछे ही हो सकती है । पहले नहीं । क्यों कि जीव दिखायें इस तरह से यह कार्य करना है । पाप से रहित और सामनेवाले जीव को दुःख नहीं हो एसी भाषा बोलना चाहिये । उसका नाम भाषा समिति है ।

गोचरी के ४० दोष टाल के आहार पानी लावे उसका नाम एषणा समिति है । उपयोगपूर्वक वस्तु लेना उठाना उसे आदान निक्षपणा समिति कहते हैं । फेंकने लायक वस्तु को जयणापूर्वक फेंकना उसका नाम पारिष्ठायनिका समिति है ।

साधु महाराज आहार लेते हैं वह भी संयम के लिये

लेते हैं। शरीर के लिये नहीं लेते। आहार मिले तो संयम की पुष्टि मानें और नहीं मिले तो खेद नहीं करके तपवृद्धि का आनंद अनुभवते हैं।

साधु की बारह प्रतिमा और श्रावक की ११ प्रतिमा शास्त्र में कही है। अब ये प्रतिमायें धारण करने की आज्ञा नहीं है।

पहली प्रतिमा एक मास की, दूसरी प्रतिमा दो मास की, इसी तरह सातवीं प्रतिमा सात मासकी है।

प्रतिमा में सात प्रहर स्वाध्याय करने का है। और एक प्रहरकाल आहार, निहार तथा विहार के लिये है। आठवीं, नववीं और दशवीं प्रतिमा सात अहोरात्रि की है।

बारहवीं प्रतिमा साधु महाराज को ही करना है। श्रावकों की ग्यारह प्रतिमा में दर्शन, व्रत, सामायिक पौषध आदि करने का विधान है।

प्रतिमाधारी श्रावक आरंभ समारंभ का काम नहीं करता है। और दूसरों से भी नहीं कराता है। अपने लिये बनाया हुआ भोजन नहीं ले सकता है। सभी वस्तुयें साधु की तरह मांग कर के सगा कुटुम्बी के यहां से ले आ के गोचरी की तरह आहार करने का है।

संयम में कोई अतिचार आदि दोष लगे हों तो उसकी शुद्धि के लिये अन्तिम समय फिर से महाव्रत उच्चराने की विधि है। क्यों कि उस से परभव सुंदर होता है। परभव को उज्वल बनाने को भाग्यशाली बनो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–अठारहवाँ

परम उपकारी शास्त्रकार महर्षि फरमाते हैं कि आज्ञामें धर्म है। श्री जिनेश्वर देव की आज्ञा के अनुसार एक पोरिसी का तप करे और आज्ञारहित मास क्षमण करे। इन दोनों में से आज्ञापूर्वक पोरसी के तपका फल बढ़ जाता है।

मृत्यु की तैयारी हो उस समय भी साधुपना लिया जा सकता है और हो सके तो बारह व्रत भी लिये जा सकते हैं।

वीतराग के शासन को प्राप्त हुआ आत्मा मृत्यु को महोत्सव मानता है। किये हुए धर्म की कसौटी अन्त समय होती है।

अठारह देश के मालिक कुमारपाल महाराजा को शत्रुओंने जहर खिला दिया। कायामें विष फैल गया। जहर उतारने की जड़ी बूटी मंगाई परंतु शत्रुओंने वह भी ले ली थी इसलिये नहीं मिल सकी।

मन्त्री एकत्रित हुए। राज्यभवन के मुख्य संचालक हाजिर हुए। सबकी आँखोंमें से अश्रु बहने लगे।

राजवैद्य भी गमगीन चेहरे से बैठे थे। सबके दिलमें एक ही भावना थी कि कुमारपाल महाराजा बच जायें तो ठीक। लेकिन भावि के आगे किसी का भी चलता नहीं

है। महाराजा मनमें समझ गये कि अब बचने की कोई आशा नहीं है। उस समय सभीको आश्चर्य उत्पन्न करे एसी मधुर भाषामें महाराजा कुमारपाल बोले :—

हे सज्जनो! तुम क्यों उदास होते हो? प्रसन्न हो जाओ। चिन्ता करनेकी कुछ भी जरूरत नहीं है। अठारह दूषण रहित परमात्मा मिले। कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य जैसे गुरु मिले और वीतराग प्रभुका दयामय धर्म मिला। जीवनमें करने योग्य धर्मकी आराधना भी की है इसलिये अब मृत्यु भले आवे चिन्ता करने जैसा कुछ भी नहीं है। अच्छे कृत्यों की अनुमोदना और दुष्कृत्यों की निन्दा करता हूँ। एसे सुन्दर वचन सुनके सब मुग्ध हो गए और मनमें विचार करने लगे कि धन्य है कुमारपाल महाराजा को।

नगरीमें समाचार वायुवेग की तरह फैल गए। राज्य भवन के बाहर लोग जमा हो गये। चारों तरफ से एक ही आवाज आने लगी कि कहाँ गया दुश्मन? जिसने महाराजा कुमारपाल को जहर दिया। उसे पकड़ के हाजिर करो।

अपने राजा के ऊपर प्रजाका कितना प्रेम है? जो राजा प्रजावत्सल और सत्यनिष्ठ हो उसके ऊपर ही प्रजा का प्रेम प्रवर्तता है।

राजभवन का विशाल पटांगण मानव समूह से खचाखच भर गया। आशा-निराशाके झूलेमें सब झूल रहे थे। किसीको बोलने की हिंमत नहीं थी। इतने में तो महाराजा के मुखमें से एक अरेराटी निकल गई। सबके दिल धड़क उठे। इतनेमें तो दूसरी अरेराटी! शरीर में

विषका प्रभाव खूब व्याप्त हो जाने से काया नीलमणि जैसी हरी बन गई थी। अरिहंत, अरिहंत का मधुर शब्दका उच्चार महाराजा करने लगे।

अति अल्प समयमें अरिहंत अरिहंत का अस्खलित उच्चारण करते करते महाराजा का अमर आत्मा नश्वर देहका त्याग करके चला गया।

प्रजाजन रोने लगे। पक्षी भी रोने लगे। गरीब भी आक्रन्द करने लगे। धर्मी प्रजा हतोत्साही बन गई। साधु सन्तोंने भी खूब खूब दुःख अनुभवा।

राजाशाही ठाठसे पूरे अदबसे स्मशानयात्रा निकली। विशाल चतुरंगी सेना स्मशान यात्रा में संमिलित हो के चलने लगी। पाटण के विशाल राजमार्ग संकरे बन गए। नगर के बाहर पवित्र भूमिमें अग्निसंस्कार हुआ।

प्रजाने अपने प्रिय राजवीके अन्तिम दर्शन कर लिये। प्रजाजन हिचकियां लेकर रोते रहे। जीवदया प्रेमी महाराजा चले गये। यह है कर्म की गति।

कितना अच्छा समाधिमरण कहा जाय? वह इस घटना से समझने जैसा है। इसलिये रोज अपने "जय वियराय" सूत्र द्वारा प्रभुके पास मांगते हैं कि "समाहि मरणं च बोहिलाभो।"

भावश्रावक पंखा डालके हवा नहीं खाता है। वह तो शरीर से कहता है कि हे शरीर! तू क्यों आकुल होता है? नरकादिगतियों में जरा भी हवा नहीं मिलेगी। माता के पेटमें नव नव महीना तक ओंधे सिर लटका वहाँ हवा कहाँ से मिली थी? इसलिये हे शरीर! तू हवा का शौख नहीं कर।

समुद्रघात सात हैं :—(१) वेदना (२) कषाय (३) मरण (४) वैक्रिय (५) तैजस (६) आहारक (७) केवली ।

दुखको वेठ करके वेदना सहन करना उसका नाम है समुद्रघात ।

बांधे हुये कर्मों का सामना करना उसका नाम है कषाय समुद्रघात ।

आयुष्य कर्मकी उदीरणा करना उसका नाम है मरण समुद्रघात ।

वैक्रिय शरीर करके कर्म खिपाये जायें उसे वैक्रिय समुद्रघात कहते हैं । इसी प्रकार तैजस और आहारक समुद्रघात विषे समझ लेना । केवलज्ञानी ज्ञानमें देखें कि चार अघातिकर्मों में आयुकर्म सिवाय शेष तीन कर्मों की स्थिति आयुकी अपेक्षा दीर्घ हो तो उसे आयु के समान करने के लिये केवली परमात्मा जो प्रयत्न करते हैं उसे केवली समुद्रघात कहते हैं ।

नरक में जानेकी किसी को इच्छा नहीं है? परन्तु नरक के योग्य कर्म वन्धन के कारणों को नहीं छोड़नेवाले को नरक में जाना ही पड़ेगा ।

इन्द्रियों के विषय ग्रहण की अधिक में अधिक शक्ति दिखाते हुये शास्त्रकार महर्षि कहते हैं कि कानकी बारह योजन, चक्षु की एक लाख योजन, नासिका की नव योजन ।

भाषा वर्गणा के पुद्गल समग्र लोकाकाश में व्याप्त हो जाते हैं ।

जो मनुष्य रसना का त्याग करता है उसे विकार अल्प होता है । जो रस झरते पदार्थ खाता है । उसे

घोड़ाकी तरह विकार उत्पन्न होता है। अहिंसा का पालन संयम के पालन बिना नहीं हो सकता है। साधु और श्रावक दोनो को प्रतिदिन एक विगई का त्यागी तो होना ही चाहिये।

जैसे संसार का बोझ उठाने के लिये दिनरात यत्न करना पड़ता है। उसी प्रकार धर्म करने में भी प्रयत्न करना चाहिये।

धर्म चालू होने पर भी जिसके हृदय में संसार जीवंत है एसे को धर्मका वास्तविक लाभ प्राप्त नहीं हो सकता है।

संसार का त्याग न हो फिर भी संसार के प्रति वैराग्य भाववाले बने रहनेवालों को धर्म में कोई अपूर्व ही आनन्द आता है।

संसार में भटकने के दो स्थान हैं। घर और पेढी (दुकान)। स्थिर होने के स्थान दो हैं। देरासर (मन्दिर) और उपाश्रय।

संसार के सुखी जीव सामग्री के सद्भाव से सुखी हैं। और रागादि से दुखी हैं। जबकि दुखी मनुष्य रागादि से भी दुखी हैं और सामग्री के अभाव से भी दुखी हैं।

जिस श्रावक के घरमें से किसी भी सभ्यने दीक्षा नहीं ली वह घर श्मशान के तुल्य है। एसा शास्त्रों में लिखा है। इसलिये अगर कोई अपने घरमें दीक्षित नहीं हुआ हो तो किसी को दीक्षित बनाने के लिये प्रयत्न करो।

भले कीतनी भी सामग्री हो फिर भी रागादि से दुखी और असन्तोषी आत्मा मम्मण शेठ की तरह दुखी ही है।

मगध देशकी राजधानी राजगृही है। वहां श्रेणिक

महाराजा वर्षा ऋतुमें नदी तट ऊपर आये हुये राजभवन में महाराजा श्रेणिक और रानी चेलना सो रहे थे। पासमें खल खल करती नदी बह रही थी। मध्यरात्रि का समय था। उस समय एक मनुष्य लंगोट लगाके नदीमें गिरके काष्ठ (लकड़ियां) निकाल रहा था।

यह द्रश्य देखकर चेलना विचार करने लगी कि अहा! श्रेणिक महाराज का राज्य होने पर भी एसे दुखी मनुष्य भी राज्य में हैं। जो स्व जीविका के निर्वाह के लिये रातको नींद भी नहीं लेते। और मध्यरात्री में वर्षा की सख्त ठंडी में काष्ठ लेने के लिये नदीमें कूदते हैं।

प्रजा दुखी हो और राजा आनन्द में मग्न रहे वह योग्य नहीं है। एसी विचार तरंगों में महासती चेलनादेवी जागृतावस्था में सो गई।

प्रातःकाले महाराजा श्रेणिक जागृत हुये। प्रातःकर्म से निवृत्त होकर राजसभा में जाने के पहले महाराजा श्रेणिक चेलनादेवी के हाथसे दुग्धपान करने आये। दुग्धपान कराते समय चेलनादेवी बोली कि महाराज! आपके जैसे न्यायी और प्रजावत्सल राजा के राज्यमें प्रजाको कितना दुख सहन करना पड़ता है। एसा कहके रातको देखी हकीकत राजाको कह सुनाई।

राजाने कहा एसा दुखी मेरे राज्यमें कौन है। उसकी मैं जांच करूंगा। एसा कहके महाराजा राज्य सभामें चले गये।

राज्य सभाका कार्य पूरा करके महाराजाने पूछा कि हे मन्त्रीश्वर! गई काल रातमें नदीमें गिरके काष्ठ

(लकडियां) कौन निकाल रहा था? उसकी जांच करा के उस आदमी को अभी हाल हाजिर करो।

जांचके लिये चारों तरफ सेवक चले। दो घडीमें एक सेवक इस मनुष्य को लेकर हाजिर हुआ।

फटे तूटे वस्त्रों में कंपता हुआ वह मनुष्य एक तरफ खडा हो गया। मगध पतिने खूब अच्छी तरह से देखने के वाद उससे पूछा महानुभाव! गई काल रातके समय काष्ठ लेने के लिये तुम पड़े थे? उस मनुष्यने कहा जी हां।

महाराजा ने कहा कि इतना अधिक कष्ट उठाने का क्या कारण? तव वह कहने लगा कि साहेव! मेरे यहां दो वैल हैं? उसमें एक वैलको एक सींग खूटता है। तो ये सींग पूरा करने के लिये प्रयत्न करता हूं।

राजा आश्चर्य चकित हो के कहने लगा कि मूर्ख! एक सींग के लिये इतना अधिक प्रयत्न करने की कोई जरूरत नहीं है। मेरी पशुशाला में से तुझे चाहिये उतने दो चार वैल ले जाना।

तव वह मनुष्य वोला कि महाराज! ये वैल दूसरे। और मेरे वैल दूसरे! मेरे वैल जो देखना हों तो मेरे घर पधारो।

महाराजा कहने लगे कि तेरे वैल एसे तो कैसे हैं? तू जरा वात तो कर। उसने कहा—ना महाराज! उसका वर्णन मुखसे हो सके एसा नहीं है! आप आकरके प्रत्यक्ष देखो तभी आपको खवर होगी। कितने ही मन्त्रीश्वरों को लेकर श्रेणिक राजा उस वैल के मालिक के घर वैल को प्रत्यक्ष देखने के लिये गए। वहाँ वह मनुष्य राजा और मन्त्रीश्वरों को अपने भवन के अन्दर के रूममें ले गया।

गुप्त रूमका द्वार खोला। रूमके द्वारों में अथवा दीवालों में कहीं भी छिद्र नहीं था, फिर भी पूरा कमरा प्रकाश के समूह से चमक रहा था।

इस दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित बने राजा के सन्मुख उस मकान मालिकने उस रूम में रक्खे हुए दो वैलोंके ऊपर आच्छादित कर रक्खा हुआ वस्त्र दूर किया।

वस्त्र दूर करने के साथ ही सच्चे हीरा-मोती पन्ना और नीलम के बने हुए वृषभ युगल को देखकर ही राजा और मन्त्री विचारमें लयलीन हो गए।

रातके समय में लंगोटी लगाके काष्ठ खेंच लाने के लिये नदीमें गिरने वाला और जिसके घर महाराजा वैल देखने के लिये आये वह एक गरीव नहीं किन्तु एक धनिक वनिया था।

फिर भी उसको चिंथरेहाल स्थितिमें देखकर महाराजा को विचार आया कि क्या इतनी बड़ी सम्पत्ति इस वनिया की मालिकी की होगी? विचारमग्न महाराजा को उद्देश्य करके वह वनिया कि जिसका नाम मम्मण शेठ था, वह वोला कि हे महाराजा! इन दोनों वैलोंमें से एक बैल को एक सींग नहीं है। वह पूरा करना है तो किस तरह पूरा करूँ? आप पूरा कर देंगे?

प्रत्युत्तर में महाराजा कहने लगे कि अरे भाई! मेरा राजकोष भी पूरा कर दूं फिर भी उसका यह एक अंग पूरा होगा कि नहीं, उसकी मुझे शंका है।

मम्मण शेठ ने हाथ जोड़कर कहा आप यहाँ पधारे तो मेरा भवन पावन हो गया। अव आप कृपा कर के भोजन आरोगने के वाद पधारो।

मगधाधिपति ने विचार किया कि जिस के पास इतनी अढलक सम्पत्ति है वह कैसी कैसी वानगी वाली रसवती जीमता होगा वह भी देखना जरूरी है। एसा विचार कर के उन श्रेणिक ने मम्मण शेठ की विनती का स्वीकार कर लिया। एक घटिका में भोजन के थाल हाजिर हो गये।

आये हुये थाल में वफे हुये चना और तेल की कटोरी देखकर महाराजा चौंक पड़े शेठ से पूछने लगे कि क्या आप एसी ही रसोई हर रोज जीमते हो? मम्मण शेठ ने खुलासा करते हुये कहा इन दो चीजों के सिवाय दूसरा कुछ भी जो मैं जीमूं तो मैं बीमार हो जाता हूं।

कुछ भी चर्चा किये विना मगधाधिपति वहां से विदा हुये। राज्यभवन में आ के अपनी प्रिया महारानी चेलना से मिलने के लिये चले गये। रानी से उस कंगाल की परिस्थिति की स्पष्टता करते हुये वहां की तमाम हकीकत का निवेदन किया।

धन की मूर्च्छा में आसक्त बना वह मम्मण शेठ मर के सात वीं नरक गया।

देव और मानवको ज्ञानियोंने प्रायः सुखी कहा है। परन्तु असन्तोष की धधकती ज्वाला में जल कर भरथा बनकर कभी भी सुखी हो सकते नहीं है। पूरी दुनिया की साहबी का ढगला उसके पास करदो फिर भी उसको सन्तोष नहीं होने से वह कभी भी आन्तरिक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। इसी लिये ही ज्ञानियों ने कहा है कि "खाडी मनोरथ भट्ट तणी वणझारा रे, पूरण नुं नहि व्याम अहो मोरा नायक रे"।

सुखी और दुखी दोनो आत्माओं की दया चिन्तवन कर के अरिहन्त के जीव अरिहंत बने।

दुनिया के तुच्छ सुखों की प्राप्ति की वांच्छा से धर्म करने वालों को उच्च कोटि की पुन्य प्रकृति बंधती ही नहीं है।

उच्च कोटि की पुन्य प्रकृत्ति खुद को और दूसरों को तार देती है। हलकी कोटि की पुन्य प्रकृति दोनो को डुबा देती है।

उच्च में उच्च कोई भी पुन्य प्रकृति है तो वह है तीर्थंकर नाम कर्म।

सविजीव करूं शासन रसी की उच्चकक्षा का भावनाशील व्यक्ति यह तीर्थंकर नामकर्म बांधता है।

तीर्थंकर नामकर्म के उदय से तीनों जगत का पूज्य बनता हैं। परन्तु वह पुन्य प्रकृति बांधने के समय बांधनेवाले की भावना त्रिजगत्पूज्य बनने की नहीं होती किन्तु त्रिजगतको तारने की होती है।

समग्र विश्व का कल्याण करनेवाली अगर कोई कर्म प्रकृति है तो वह सिर्फ तीर्थंकर नामकर्म है।

विश्व में जो कुछ भी अच्छा है वह इस तीर्थंकर नामकर्म का ही प्रभाव है।

बांधनेवाला और भोगनेवाला कोई भी एक व्यक्ति हो परन्तु वह कर्म तीनों जगत का उद्धारक है। इसीलिये कहते हैं कि "नमो अरिहंताणं"।

देवलोक में भी अटकचाला देवों को दुख आता है। यहां से तप करके जाओ इतना ही सुख देवलोक में मिलता है। अधिक लेने की इच्छा हो तो भी नहीं मिल सकता। जो अधिक लेने की इच्छा करे तो दुखी रहे।

और अधिक लेने का प्रयत्न करे तो इन्द्र महाराजा उसे सजा करें।

दुख आवे तब रोने को बैठना ये कायर का काम है। सच्ची समाधि का उपदेश देनेवाले तीर्थंकर हैं। सुन्दर परिणाम पूर्वक की क्रिया को ही आराधना कहते हैं। तुम्हें जो खराब लगता है उस पर तुम्हें राग नहीं होता है।

सगा लडका भी सामना करे तो तुम्हें उस पर राग न हो यानी तुम्हारा उस पर राग नहीं टिके उस पर राग नहीं टिके उसमें हरकत नहीं परन्तु उसके ऊपर से जानेवाला राग अपन को द्वेष सौंपके जाता है। वह ठीक नहीं है।

तुम संसार में बैठे हो इसलिये तुम्हें भोगी कह सकते। परन्तु वास्तव में तो चक्री और देव भोगी है।

कर्म के साथ मेल रखनेवाले को मुक्ति नहीं मिल सकती।

कर्म के साथ युद्ध करे उसे ही मुक्ति मिल सकती है।

जन्म होने के साथ ही मुक्ति मिले तो ठीक एसी तीर्थंकरों की इच्छा होने पर भी कर्म उनको शीघ्र मोक्षमें नहीं जाने देता।

अच्छे आदमी का प्रेम और गुस्सा दोनो भला करते हैं। किन्तु दुष्ट मनुष्य का प्रेम और गुस्सा दोनो बुरा करते हैं।

जीवन को सफल बनाने के लिये जैनशासन को समझने की परम आवश्यकता है।

हरेक जीव जैनशासन के रसिया बने यही शुभ भावना
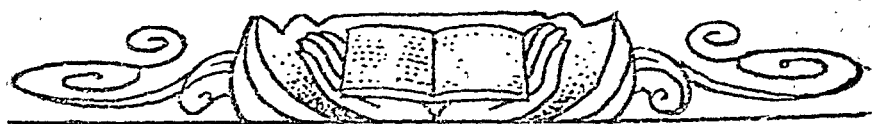
व्याख्यान–उन्नीसवाँ

अनंत उपकारी श्री शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि असार एसे संसारमें मानव जीवनकी प्राप्ति पुन्यके विना नहीं हो सकती।

मनुष्य स्त्रियोंका गर्भकाल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से बारह वर्ष है। बारह वर्षका गर्भकाल माता और बालक दोनोंको महा दुःखी बनाता है। एक के एक स्थानमें जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से चौवीस वर्ष भी रह सकता है। जैसे कि एक जीव मरके फिर पीछे वहीं का वहीं अर्थात् उसी गर्भस्थान में उत्पन्न हो एसे जीवके लिए चौवीस वर्ष कहे हैं। ये तत्वकी बातें सुनकर वैराग्य आना चाहिये लेकिन भारे कर्मीको नहीं आता है।

एक समय के विषयभोग में जघन्य से एक दो अथवा तीन जीवों की हानि होती है और उत्कृष्ट से नव लाख जीवों की हानि होती है।

एक मनुष्य ब्रह्मचर्य पाले और दूसरा सुवर्ण मन्दिर बनवावे तो उन दोनोंमें ब्रह्मचर्य का लाभ बढ़ जाता है। ब्रह्मचर्य को सागर और दान को नदी कहा है। सभी व्रतोंमें ऊँचे में ऊँचा व्रत ब्रह्मचर्य है। नव नारद ऋषियों की सद्‌गति ब्रह्मचर्य के हिसाबसे ही होती है।

एक समयके विषय संभोगमें उत्पन्न होनेवाले लाखों

जीवों में से एकाद अथवा दो बच जायें वे सन्तान तरीके जन्म पाते हैं।

एक मनुष्य रूई की नलिका बनावें और चकमक से उसे सुलगावे तो इकदम वह जल जाती है उसी प्रकार एक वक्त के संभोगमें लाखों जीवोंकी हिंसा होती है।

धर्मपरायण एसे तुंगिया नगरीके श्रावकों के गुणगान महापुरुषोंने गाये हैं। उन श्रावकोंके पास अढलक संपत्ति थी। ऋद्धि सिद्धि की कोई कमी नहीं थी।

सेवक वर्ग सेवा के लिये तत्पर था। फिर भी वे जीवन में मुख्यतया तो धर्म को ही मानते होने से उनका वर्णन पवित्र एसे भगवती सूत्र में किया है।

पुण्य नाम के शेठ संपत्ति संबंध में सुखी नहीं होने पर भी साधर्मिक को जिमाये विना जीमते नहीं थे वे अनर्थ दंड के व्यापार से मुक्त थे।

जो आत्मा जीवा जीवादि तत्व को नहीं जानता वह संयम को क्या जान सकता है?

मनवाले जीव को संज्ञी कहते हैं और मन विना के जीव को असंज्ञी कहते हैं।

आहार, शरीर इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन ये छः पर्याप्ति हैं। ये छः पर्याप्ति जीव गर्भ में पूरी करता है।

अन्त मुंहूर्त के असंख्याता भेद हैं। नव समय को एक जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। और दो घडीमें एक समय न्यून कालको उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। आंख मींचके खोलें इतने में तो असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं।

मक्खन छाश (मठ्ठा) से भिन्न हो तो अभक्ष्य हो जाता है। विगई दश हैं। उनमें छः भक्ष्य और चार अभक्ष्य हैं।

दूध, दही, घी, तेल गोर (गुड़) और तली वस्तु ये छ भक्ष्य विगई हैं। इन्हें लघु विगई कहते हैं। मद्य, मदिरा, मांस और मक्खन ये चार अभक्ष्य विगई हैं। इन्हें महाविगई कहते हैं। अभक्ष्य विगई त्याज्य हैं।

नित्य पूजा, प्रतिक्रमण करनेवाले श्रावकों को इस क्रियामें सूतक नहीं लगता है। जन्म सूतक अथवा मरण सूतक आवश्यक क्रियामें नहीं लगता है।

हीर प्रश्न और सेन प्रश्नमें लिखा है कि जिसके घर सूतक हो वहाँ साधु-साध्वी दश अथवा बारह दिवस वहोरने (गोचरी लेने यानी आहार लेनेको) नहीं जाते हैं। प्रसूतिवाली बहन सवा महीना तक पूजा नही करसकती है।

इस्पिताल (अस्पताल, होस्पिटल) सुवावड (सोर, बालक जन्म, प्रसूति) हुई हो तो वहां से सूतक घर नहीं आ सकता। आज अस्पताल अथवा बाहरगाँव की प्रसूति का भी सूतक माना जाता है क्या? अस्पताल में से उठ के घर सूतक आता है? बम्बई में हुई प्रसूति का सूतक क्या यहां आ सकता है? तो फिर सूतक किस का?

भवाभिनंदी आत्मा दीनता को करती है। और आत्मानंदी दीनता का त्याग करती है।

मिथ्यात्व पांच प्रकार का है। पाचों प्रकार के मिथ्यात्व का त्याग करने में प्रगति शील बनना चाहिये।

कर्मबन्ध के चार प्रकार हैं। (१) प्रकृतिबन्ध (२) स्थितिबन्ध (३) रसबन्ध (४) प्रदेशबन्ध।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये मोक्ष जानेका राजमार्ग है।

पर्व दो प्रकारके हैं :-(१) लौकिक (२) लोकोत्तर। संसारी जीव पर्व के दिनोंमें खानेपीने में मस्त रहता है। धर्मी मनुष्य पर्वके दिन धर्मध्यान की आराधनामें तदाकार बनते हैं।

ज्ञानीयोंने लक्ष्मी को वेश्या जैसी कहा है। ध्वजाके समान चंचल है, अस्थिर है। जैसे वेश्याको अपने ग्राहक के ऊपर हृदय का प्रेम नहीं होता किन्तु लक्ष्मी के ऊपर

उपमिति प्रपंच कथामें लिखा है कि मोक्षके अर्थीको मोक्ष दे और संसार के अर्थीको संसार दे उसका नाम धर्म है।

श्री जिनेश्वर भगवंत के धर्मकी श्रद्धा के ऊपर से भ्रष्ट करने के लिए तुंगिका नगरी के श्रावकों के ऊपर देवोंने खूब प्रयत्न किए लेकिन ये श्रावक श्रद्धासे भ्रष्ट नहीं हुए। स्फटिक के जैसे निर्मल मनवाले वे श्रावक धन्यवाद के पात्र हैं।

योगशास्त्र में बताया हुआ मैत्रीभाव का वर्णन सुनने जैसा है। वह यह है कि जगतमें कोई भी जीव पाप नहीं करो। कोई दुःखी न हो और जगत के सब जीव संसारसे मुक्त बनें।

मनमें कुछ, वचनमें कुछ और प्रवृत्ति में कुछ अन्य प्रवृत्ति करे उसका नाम शठ।

अपने घरमें जो मोह घर करके बैठा है, उसे दूर करने के लिये धर्म है। धर्मी श्रावक खुद तिरे और कुटुम्ब के सभीको तारने का प्रयत्न करे।

राग तीन प्रकारका है । :-

(१) काम राग (२) स्नेह राग (३) द्रष्टि राग । इन तीनों प्रकार के राग दूर करने के लिये धर्म साधना है। इन तीनों में से द्रष्टि राग को निकालना महा कठिन है।

काल, स्वभाव, भवितव्यता पूर्वकृत और पुरुषार्थ इन पांच कारण को माने उसका नाम समकिती ।

ठाणांग सूत्र में लिखा है कि माँ–बाप के उपकार का बदला चुकाने पर भी नहीं चुकाया जा सकता है ।

चारित्र रूपी जो कमल है उसे क्रीडा करने के लिये बावडी के समान एसे साधु भगवन्तों को नमस्कार है ।

संसार की लटपट में नहीं गिरे उस का नाम साधु। कल्याण प्रवृत्ति में हमेशा मस्त रहे उसका नाम साधु ।

समता, मोक्ष की अभिलाषा, देव गुरु की भक्ति दया आदि गुण समकिती आत्मा में होते हैं ।

रात के समय नींद उड़ जाय तो भाव श्रावक मनोरथ करे कि इस संसार के सभी संयोगों से मैं मुक्त कब होऊँ? जीर्ण शीर्ण वस्त्र का पहनने वाला कब बनूं ?

माधुकरी भिक्षा को ग्रहण करने वाला कब बनूं ? एसी उत्तम भावना माने की है ।

जैसे भ्रमर फूल के ऊपर बैठ के फूल का रस चूंसता है फिर भी फूल को हैरानगति नहीं होती है। इसी प्रकार गृहस्थ के घर से भिक्षा लेने पर भी गृहस्थ को हैरान गति न हो इस तरह से ही साधु को भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये । इसे माधुकरी भिक्षा कहते हैं ।

हे भगवन् । भव भव में आप के चरण कमल की

सेवा मुझे दो एसी प्रार्थना तुम नित्य करते हो? लेकिन हृदय में एसी भावना आवे तभी सच्ची प्रार्थना कही जा सकती है।

जिस दिन शरीर बिगड़ा हो उस दिन खूब भूख लगी हो फिर भी खाना नहीं। लेकिन पानी अधिक पीना। जिस से अन्दर का मैल पलट कर के (भींज कर के) साफ हो जाय।

नव लाख नवकार का जाप विधि पूर्वक करने से दुर्गति का द्वार बंद होता है। एक लाख नवकार मन्त्र का जाप करने से तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है।

मिथ्या दृष्टि का परिचय और प्रशंसा करने से समकित मलिन होता है।

वृद्ध चार प्रकार के हैं:-(१) संयम वृद्ध (२) तपवृद्ध (३) श्रुत वृद्ध (४) आयु वृद्ध। चारित्र में बड़ा हो वह चारित्र वृद्ध। तपमें आगे हो वह तप वृद्ध। शास्त्रों का जानकार हो वह श्रुत वृद्ध और उम्रमें बड़ा हो वह आयु वृद्ध कहलाता है।

श्रावक को सात धोतियां रखनेका विधान है लेकिन साधुको एक चोल पट्टा रखना है। इस चोल पट्टासे सब क्रिया होती है।

गृहस्थ के घर बहुत पड़ा हो लेकिन उसको इच्छा हो वही दे फिर भी साधु मांगके नहीं ले सकता है।

दश वैकालिक में कहा है कि "बहुं परघरे अत्थी, इच्छा दीज्ज परो न वा।"

जो वस्तु एक वक्त भोगी जासके उसे भोग कहते हैं और बारंबार भोगी जासके उसे उपभोग कहते हैं।

अभवि आत्मा मोक्षका इच्छुक नहीं होता। वह संयम लेने के बाद उत्कृष्ट संयम पाले, तप करे लेकिन वह सब देवलोक के सुखकी प्राप्ति के लिए ही करता है। किन्तु मोक्षके लिये नहीं करता है।

भरत महाराजाने अष्टापद ऊपर चौवीस तीर्थंकरोकी मूर्तियाँ उन उन भगवान के अन्तिम भवके देह प्रमाण, शुद्ध रत्नों की बनाईं थीं।

रावण और मन्दोदरी अष्टापद तीर्थकी यात्रा करने के लिये आये। तब भगवानों की मूर्तियाँ देखकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तवाले बन गए और भक्ति करने बैठे।

प्रभुके सन्मुख रावण वीणा इतनी सरल रीतसे बजाने लगा कि मानो विश्वका श्रेष्ठ में श्रेष्ठ वीणावादक! इस तरहसे उज्वल भावको पैदा करे इस तरहसे वीणा बजाने लगा। उसके साथ रावण की पट्टरानी मन्दोदरी नृत्य करने लगी।

मन्दोदरी अनेक प्रकार के हावभाव युक्त नृत्य करने में तल्लीन थी।

मनुष्य जब नृत्यमें एकाकार हो जाता है तब मानवी का सिर नहीं दिखता। ये नृत्यका प्रभाव है।

यहाँ नृत्यमें मन्दोदरी एकतान बन गई थी। उस समय एकाएक रावण की वीणाका एक तार टूट गया।

स्वरलहरी को अस्खलित टिकी रखने के लिये, प्रिया के नृत्यमें खामी नहीं आने देने के लिये, प्राप्त भक्ति में बाधा नहीं होने देने के लिये तुरंत ही अपनी जांघमें की नस काटके वीणाके टूटे हुए तारकी जगह रावणने सांध दी।

भक्तिके रसमें तरबोल (तल्लीन) अवस्थावंत मनुष्य को शारीरिक पिडायें अनुभव में भी नहीं आतीं। वे तो भक्ति रसमें इतने मशगूल बन जाते हैं कि परमात्मा के सिवाय दूसरी कोई भी वस्तु उनके लक्ष में भी नहीं आती है।

एसी भक्ति ही मुक्ति की दाता बनती है।

प्रभुके सामने किया गया नृत्य जो केवल आनंदप्रमोद के लिये और जनरंजन के लिये किया जाता हो तो उस नृत्य की प्राप्ति आत्महित के लिये लेश मात्र भी नहीं होती। आज तो साप गया और लीसोटा (लकीरें) रह गई जैसी स्थिति में आजकी नृत्य मंडलियाँ काम कर रहीं हैं।

भक्तिरस से भरपूर मन्दोदरी का नृत्य और रावण की अस्खलित वीणाकी सुरावली देखने के लिये देव भी वहाँ आकर खड़े हो गए। सब एक ही नजरसे इस भक्ति के प्रोग्राम को देख रहे थे।

भक्ति की तल्लीनताने रावण के अनेक पापोंको चूर चूर कर दिया और उस समय विश्वोद्धारक तीर्थंकर नाम कर्मके दलीया को इकट्ठा किया। भक्ति का प्रोग्राम पूरा करके रावण और मन्दोदरी जिन मन्दिर के बाहर आये। तब देव विनती करके कहने लगे कि हम आपकी भक्ति से प्रसन्न हुए। इसलिये हमारे पास से जो मांगोंगे उसे हम देनेको तैयार हैं।

रावणने कहा कि गुणानुरागी देव! हमने हमारी कर्म निर्जरा के लिये भक्ति करी इसलिये हम्हें दूसरी किसी वस्तु की स्पृहा नहीं है। एसा कहके वहाँसे विदा हुआ।

उनको देवोंकी संतुष्टता का हर्ष नहीं था किन्तु भक्ति की एकतानता का हर्ष था।

समकिती आत्मा को देव प्रसन्नता की कोई कीमत नहीं होती।

आज तो जरा भी देव चमत्कार दिखाई दे कि लोग प्रभुभक्ति का लक्ष चूक करके देव चमत्कार के प्रचारक बन जाते हैं। क्योंकि सच्ची भक्ति की पूर्णता अथवा सफलता में अधिष्ठायक देवके चमत्कार का ही लक्ष बन्ध गया है।

जिसे चारित्र लेने की भावना नहीं है वह श्रावक नहीं है।

कोई पूछे कि भाई! क्यों चारित्र नहीं लेते हो? तब कहे कि क्या करूँ? भारे कर्मी हूं इसीलिये चारित्र मेरे हृदय में नहीं आता है। हृदय में जल्दी कब आवे उसके लिये प्रयत्न करता हूं।

श्रावक तुच्छ फलका त्यागी होता है। जिसमें खाने का थोड़ा हो और फेंक देनेका बहुत हो उसे तुच्छ फल कहते हैं।

बेगन (रींगणा) आदि बहुबीज है। आकाश में से जोकरा (ओले) गीरते हैं वे अभक्ष्य हैं। मिर्च, नींबू वगैरह अथाणा (अचार) बराबर सुखाये बिना हों तो वे नहीं खाना चाहिये।

मुरब्बा आदि चासनी कर के किया हो तो वह खपे (यानी खाने लायक है)। उस के अलावा अगर खांड (शक्कर) मिला के तैयार किया हो तो वह सात दिन से अधिक दिन का नहीं खपता है। अभक्ष्य वस्तुओं में दो इन्द्रिय जीव हो जाते हैं इसलिये वह खाने लायक नहीं हैं।

गरम किये शीशा को पीना अच्छा है किन्तु मांस का भक्षण करना अच्छा नहीं है। कन्दमूल अनन्त काय कहलाते हैं।

जिनको मोक्षमार्ग की साधना करना हो उनको मनको द्रढ बनाना पडेगा।

मन मजबूत होने के बाद संसार में मजा नहीं आता है। स्वाध्याय ये संयम का अंग है।

उपधान करने वाले भाई बहन चालू उपधान में जिन मन्दिर में दर्शन करने जाने के टाइम अथवा दूसरे कहीं जाने को निकलते समय गीत नहीं गा सकते। एसा सेन प्रश्न में लिखा है। क्यों कि चलने के समय गीत गाने से ईर्या समिति का भंग होता है।

चोरी चार प्रकारकी है :– (१) स्वामी से छिपा रखना (२) गुरु से छिपा रखना (३) तीर्थंकर से छिपा रखना (४) जीवको मार डालना।

तप का फल अनाश्रव है। ज्ञान का फल विज्ञान विज्ञान का फल पच्चक्खाण पच्चक्खाण का फल विरति, विरति का फल कर्म निर्जरा और निर्जरा से मुक्ति मिलती है।

ग्लान की सेवा करने से महालाभ होता है।

हृदय में नम्रता का धारण करने वाला ही दूसरों की सेवा कर सकता है।

सांसारिक अनुकूलता की झंखना करना उसका नाम आर्तध्यान है। सब जीव दुर्ध्यान के त्जागी बनो यही मनोकामना।

व्याख्यान–बीसवां

अनंत उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि जिसे श्री जिनेश्वर देव की वाणी अच्छी नहीं लगती वह जीव समकिती नहीं कहा जा सकता है।

धर्म सुनने पर भी, धर्म समझने पर भी धर्म करने वाला जो समकित रहित हो तो वह वास्तविक धर्म नहीं है।

अपनी भावना दुखमुक्त होनेकी नहीं रखके कर्म मुक्त होने की रखनी चाहिये।

संसार दुखी था और है। तथा दुखी रहनेवाला भी है।

जीव की लायकात प्रगट हुये विना जीव का कभी भला होने वाला नहीं है।

निन्दा को खमना (माफ करना) सरल है किन्तु प्रशंसा को पचाना मुश्किल है।

तीर्थंकर परमात्मा का आत्मा सर्वोत्तम और शिरोमणि है।

समकिती देवों को तीर्थंकर परमात्मा का सहवास इतना अच्छा लगता है कि वे देव पशु, पक्षी अथवा बालक आदि का रूप कर के आकर के खेल जाते हैं।

अपनी पायमाली (विनाश) तो खास कर के पापानुबन्धी पुन्य से हुई है। जैन शासन में शास्त्रयोग की अपेक्षा सामर्थ्य योग की महत्ता है।

दशवें गुणठाणा से ग्यारहवें जाने वाले आत्मा नियम से पड़ते हैं। दशम से बारहवें में जाने वाले नहीं गिरते हैं। क्यों कि दशम से सीधे बारहवें गुणठाणा के भाव प्राप्त करने वाले क्षपक श्रेणी वाले हैं। मोहनीय कर्म की प्रकृतियों को उखाड़ के फेंकते फेंकते वे आगे बढे हैं।

दशम से ग्यारहवें का भाव प्राप्त करने वाले तो उपशम श्रेणी वाले हैं। वे मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का क्षय नहीं कर के आत्मा में उपशम रूप में रख के आगे बढ़े हैं। बिलकुल उपशमिक वे प्रकृतियां हो जायें इस लिये वे जीव ग्यारहवाँ गुणस्थान वर्ती गिनाते हैं।

परन्तु सम्पूर्ण उपशम हो जाने के पीछे वह उपशमता दीर्घ टाइम टिकती नहीं है। और उपशमित उन प्रकृतियों में से धीरे धीरे उपशमता दूर होती जाती है। वैसे वैसे आत्मा नीचे पडता जाता है।

आरंभ-समारंभ का जिसे डर नहीं है वह समकिती नहीं है। आरंभ-समारंभ का प्रेम हो उसमें समकित होता ही नहीं है।

मानव जन्म में आना हो उसे गर्भ के और जन्म के दुख सहन करने ही पडते हैं।

तुम्हारे जीवन में गुप्तपाप चालू हैं। उन्हें कोई जानता नहीं हैं। उसका भी तुम्हें आनन्द है। लेकिन इस से तुम्हारा आत्मा कर्म से अधिक भार वाला बन रहा है। इसकी तो तुम्हें खबर तो होगी ही?

तुम्हारे गुप्त पापों को जान सकने वाले तुम्हारे प्रति अनुकम्पा वुद्धि से मानलो कि ना भी कहें लेकिन इस से तुम्हारे दुष्कृत्य का फल नष्ट होने वाला नहीं है।

समय पकने पर कर्म राजा तुम्हारे ऊपर वारंट काढके चक्रवर्ती व्याज सहित तुम्हारे पासका बदला मांग लेगा। उसमें किसीकी भलामण अथवा दया नहीं चलेगी। पाप करके आज भले खुशी हो जाओ लेकिन रोते रोते ऋण तो चुकाना ही पड़ेगा।

तुम्हारा पापानुबन्धी पुन्य बढ़ गया इसीलिये साधुओं का वर्चस्व तुम्हारे ऊपरसे घट गया।

तीर्थंकरों को छद्मस्थ अवस्था में भी संसारी सुखकी संगति अच्छी नहीं लगती।

तीर्थंकरों के गृहस्थ जीवनको भी इन्द्र धन्यवाद देते थे और नमस्कार करते थे।

यह तो तुम्हें मालूम होगा ही कि कितने ही मनुष्य अग्नि को हाथमें रखने पर भी जलते नहीं हैं। इसी तरह संसार में रहने पर भी संसारी जीव संसार से जलते नहीं हैं।

जीवको पुन्यानुबन्धी पुन्य पाप करने से अटकाता है (रोकता है) और पापानुबन्धी पुन्य पापको ज्यादा कराता है।

जब तीर्थंकर वर्षीदान देते हैं तब उस समयके जीवों को ऐसा लगता है कि पैसाकी कोई कीमत नहीं है।

तीर्थंकरों के दानका पैसा जिसके हाथ में जाता है उसको पैसा का राग नष्ट हो जाता है। इस दान का पैसा भवीजीवों के हाथमें ही जाता है।

दान देनेसे लक्ष्मी कभी भी कम नहीं होती है। जैसे हजारों पक्षी सरोवर का पानी पीते हैं लेकिन फिर भी सरोवर का पानी कम नहीं होता है।

कुवाका पानी ज्यों ज्यों वपराता है त्यों त्यों बढ़ता जाता है। इसी तरह दानेश्वरी की लक्ष्मी घटती नहीं है, बल्कि बढ़ती है।

तीर्थंकर जब दीक्षा लेते हैं तब जगत के जीवों को ऐसा ही लगता है कि हम हार गए। सच्चा मार्ग तो एक दीक्षा ही है, ऐसा लगे बिना नहीं रहेगा।

दीक्षा लेने के बाद जबतक केवलज्ञान नहीं होता तब तक तीर्थंकर भूमि पर पैरों से सुखपूर्वक बैठते नहीं हैं।

तीर्थंकरों के समान संयम कोई भी नहीं पाल सकता है। जिनकल्पी भी नहीं पाल सकता है।

जैसे बाइयाँ घर के कचरे को हण देती हैं उसी तरह तीर्थंकर भी भोग सुख को हण देते हैं। और चले जाते हैं। वे अतुलबली होते हैं। फिर भी दीक्षा लेने के बाद उन्हें विहार में छोटा बालक कंकर भी मारे तो भी वे कुछ भी नहीं बोलते हैं। भगवान ये सब कष्ट इस लिये सहन करते हैं कि सहन किये बिना मोक्ष मिलने वाला नहीं है। दुख का सामना करने के लिये ही संयम लेना है।

ज्ञानी पुरुष दुख के स्थानों से दूर नहीं भागते हैं। किन्तु उदीरणा के द्वारा कर्मों का चूरा। करने के लिये उपद्रव स्थानों में ही जाते हैं।

भगवान ऋषभदेव के हजार वर्ष के संयमकाल में प्रमादकाल तो सिर्फ २४ घंटे का ही है।

जिसे भगवान का साधु जीवन नित्य याद आता है। और ऐसा साधु जीवन में कब जीऊंगा ऐसी भावना वाले तमाम साधु बन जायें तो साधु जीवन निर्मल बने बिना नहीं रहेगा।

तीर्थंकरों के जैसी पुन्य प्रकृति दूसरे किसी को भी नहीं होती है।

भाषा चार प्रकार की है। (१) सत्य भाषा (२) सत्यासत्य भाषा (३) निश्चित भाषा (४) व्यवहार भाषा।

पूरा संसार परमें रमता है। जब तक आत्मरमणता नहीं आवे तब तक कल्याण नहीं हो सकता है।

देवों के चार भेद हैं:- (१) भुवन पति (२) व्यंतर (३) ज्योतिषी (४) वैमानिक।

संसार का रस घटे विना धर्म का रस जगने वाला नहीं है। समकित की हाजिरी में आयुष्य का बंध हो तो वैमानिक देवलोक में जाता है।

महा निशीथ सूत्र में लिखा है कि जिन मन्दिर बनवाने वाला प्रायः बारहवें देवलोक में जाता है। देवलोक में शास्वत जिन मन्दिर हैं। उसकी पूजा देव नित्य करते हैं।

धर्म विन्दु में लिखा है कि वालजीव बाहर के आचार विचार को देखते हैं: "बालः पश्यति लिंगम्"। बाल जीवों को सुधारने के लिये बाहर के आचार शुद्ध रखना चाहिये।

अमर चंचा नाम की राजधानी में इन्द्र राज्य करते हैं। उस राजधानी का वर्णन इसलिये किया गया है कि पुन्यशाली जीव पुन्य के योग से कैसी भोग सामग्री प्राप्त करते हैं।

अष्टक प्रकरण में हरिभद्र सूरि जी महाराजा फरमाते हैं कि धन कमाना यानी कादव में हाथ डालना जैसा है। उस धन को धर्म में खर्च करना यानी विगडे हुये हाथ को धोना जैसा है।

अपने पुन्य से व्यापार में अगर धन मिल जाय तो उस धनको धर्म में खर्च करना है। परन्तु धर्म में खर्चने के लिये धन नहीं कमाना है।

कलि काल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्र सूरीश्वर जी महाराज योग शास्त्र में फरमाते हैं कि गृहस्थाश्रम में रहते गृहस्थों को धन कमाना पड़े तो न्यायनीति पूर्वक कमाना है।

शास्त्र को वांचने वाला विवेकी होना चाहिये। जो शास्त्र को वांचना नहीं आवे तो शास्त्र शस्त्र बन जाता है। तारक शास्त्र भी मारक बनता है। इसी लिये कहा है कि शास्त्र का वांचने वाला गीतार्थ और गंभीर होना चाहिये।

बिना पैसे भी धर्म होता है।

हमारे साधुभगवंत पैसा बिना पूर्ण धर्मको आराधना करते हैं।

जम्बूद्वीप, घातकी खंड और पुष्करार्ध ये ढाई द्वीप और दो समुद्रको समवाय क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्रमें से ही मोक्षमें जाया जा सकता है।

सिद्ध शिला ४५ लाख योजन की है। आठ योजन मोटी (जाडी) है किन्तु अंतमें मक्खी के पंख की तरह पतली है और स्फटिक जैसी है। सिद्ध-शिला से एक योजन दूर लोकाकाश का अग्र भाग है। वहाँ सिद्ध के जीव रहते हैं।

सर्वार्थ सिद्ध विमान मोक्षका विसामा (विश्राम) है। वहाँ से एक भव करके मोक्षमें जाया जाता है।

सर्वार्थ सिद्ध विमानमें तेतीस सागरोपम का आयुष्य है। वहाँ सभी अहमिन्द्र ही रहते हैं। वे पुष्प शय्या में सोते रहते हैं। सोते सोते तत्वचिन्तन करते रहते हैं।

जब उसमें किसी प्रकार की शंका हो तब महाविदेह क्षेत्रमें विराजमान सीमंधर स्वामीसे मनसे पूछते हैं और भगवान भी उनके मन की शंका का समाधान करते हैं। ये देव निर्मल अवधिज्ञान से केवली भगवान के मन के परिणाम जान सकते हैं।

पुष्करवर के अडधे भाग में मनुष्य वसते हैं। बाकी के आधे पुष्करवर में मनुष्य नहीं हैं। ढाई द्वीप के बाहर साधु भगवन्त नहीं होते हैं।

युगलियों के मातापिता रहें वहां तक भाईबहन का संबन्ध। और मातापिता मृत्यु को प्राप्त करें। उसके बाद पतिपत्नी का संबन्ध हो जाता है। युगलीक मर के देवलोक में ही जाते हैं।

गर्भ से (मातापिता के संयोग से) उत्पन्न होने वालों को गर्भज कहते हैं।

मनुष्य के ३०३ भेद हैं। उसमें कर्मभूमि के क्षेत्र पन्द्रह हैं। इस भूमि में शस्त्र, व्यापार और खेती के कर्मो द्वारा ही जीवन की आजीविका चलती होने से उसे कर्मभूमि कहते हैं।

बाकी की तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तर्द्वीप इन भूमियों में युगलिया वसते हैं।

वहां आजीविका के लिये व्यापार खेती वगैरह कुछ भी नहीं करना पडता है। कल्पवृक्षों से ही आजीविका चलती है।

इस तरह पन्द्रह कर्मभूमि के मनुष्य, तीस अकर्मभूमि के मनुष्य और छप्पन अन्तर्द्वीप के मनुष्य कुल १०१ क्षेत्र के मनुष्य हुये। १०१ गर्भजपर्याप्ता १०१ गर्भज अपर्याप्ता

और १०१ संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मिल के कुल ३०३ भेद मनुष्य के हुये।

ढाई द्वीप में विचरते तीर्थंकरो की संख्या उत्कृष्ट १७० और जघन्य २० की होती है। हाल में २० तीर्थंकर हैं। वे महाविदेह में विचरते हैं।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में जब श्री अजितनाथ भगवान विचरते थे तब शेष चार भरत क्षेत्र में हरेक में एक एक तीर्थंकर, पांच ऐर वतों में हरेक एक एक होने से पांच तीर्थंकर और पांच महाविदेह के १६० विजय के १६० मिल के कुल १७० तीर्थंकर वहां उस समय विचरते थे।

पांच भरत, पांच ऐर वत और पांच महाविदेह इस तरह पन्द्रह क्षेत्र कर्मभूमि के हैं। पांच महाविदेह में हमेशा चौथा आरा रहता है।

ये कालचक्र अनादिकाल से चलता आया है और अनन्तकाल तक चलेगा।

चौरासी लाख जीवयोनियों में अपने भटकते आये हैं।

दिवाली पर्व में छठ्ठ करने वाले को एक लाख उपवास का फल मिलता है। उस दिन भगवान महावीर मोक्ष में गये होने से उसे निर्वाणकल्याणक दिन कहते हैं। इसलिये उस दिन धर्मध्यान में तल्लीन होके रहना चाहिये।

कोई निन्दा करे तो घबराना नहीं चाहिये। और प्रशंसा करे तो फुलाना नहीं चाहिये ये धर्मी का लक्षण है।

ढाईद्वीप में रहने वाले सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्र मेरु पर्वत को प्रदक्षिणा देते फिरते रहते हैं। बाकी के द्वीपों में स्थिर हैं।

ढाईद्वीप के बाहर मनुष्यों का जन्ममरण नहीं होता है। वहां दिन अथवा रात भी नहीं है।

जम्बू द्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्र हैं।

पुरुष का आहार अधिक से अधिक ३२ कोलिया (कौर, ग्रास) और स्त्रियों का आहार २८ कोलिया (ग्रास) का होना चाहिये।

कोलिया (ग्रास) भी मुर्गी के अन्डा के बराबर होता है। इससे अधिक भोजन करने से शरीर बिगड़ता है।

तुम्हें खबर है? कि जब पाप का उदय आता है तब मधुर वस्तुयें भी जहर जैसीं बन जाती हैं।

नमि राजर्षि महावैभवशाली थे। वृद्धि और सिद्धि की कमी नहीं थी। देवांगना जैसी पत्नियां थीं। सर्व सामग्रियों की अनुकूलता होने पर भी पाप का उदय किसी को छोड़ता नहीं है।

एक दिन इन नमिराज को अशाता वेदनीय कर्म का उदय आया। शरीर में रोग व्याप्त हो गया। दाहज्वर की वेदना चालू हो गई। ज्वर की पीड़ा में शरीर गरम गरम बन गया। मुख में से चीस निकलनें लगीं। अन्तः पुर में से प्रिय पत्नियां आ पहुँचीं। काया ऊपर चन्दन का विलूपन करने लगीं। पत्नियों के हाथ में सोने की चूडियां थीं।

जिन सौने की चूड़ियां और नूपुर के झंकार का कवियों ने बखान किया था। जिनकी प्रशंसा से हृदय आनन्दित बने और दिल में धुन गूँजने लगे इन्हीं कंकण का आवाज आज नमिराज के कान में शूल की तरह भोंक दिया हो ऐसा चुभ रहा था।

ये मधुर आवाज भी सहन नहीं हो रहा था। मनमें

विचार करने लगा कि ये वेद्नादायी आवाज कहां से आती है? एक वार जिसको सुनने का दिल में उत्सुकता जग जाती थी। उसकी वही आवाज आज इसको अच्छी नहीं लगती थी। क्योंकि शरीर अशातावेदनीय अनुभवता था। पापोदय के समय सुख भी दुखरूप लगे वह स्वाभाविक सत्य है।

पत्नियों ने कहा-प्राणनाथ! यह आवाज कंकन की है। राजर्षि ने कहा मुझे यह आवाज कर्णकटु लगती है। अच्छी नहीं लगती।

स्त्रियोंने कंकन उतार दिये। सिर्फ एक एक कंकन को सौभाग्य के चिन्ह तरीके रखा।

थोड़ी देर में नमिराज फिर पूछने लगा कि अव आवाज क्यों नहीं आती? स्त्रियों ने कहा कि सौभाग्य तरीके एक एक कंकन रख के वाकी के सव उतार के रख दिये हैं।

ओ! हो! दो में अशान्ति है। एक में शान्ति है। एकत्वभावना के विचार में मस्त वन गयें। वीमारी के विस्तर पर सोते हुये नमिराजा को कंकन में से वैराग्य जन्मता है। आत्मज्ञान होता है। मृत्यु के समय सबको छोड़ के अकेला जाना है। वस! वीमारी मिट जाय तो दीक्षा लेना। कैसा सुन्दर निर्णय किया?

मधुर वस्तुओं की विषमता और दाहज्वर की पीड़ा के निमित्त ने नमिराजा को वैराग्यवासित वना दिया।

पापी आत्माओं को भी महापुरुषों का संयोग भव-भ्रमण को टालने वाला वन जाता है। और दुष्टजीवों के हृदय में क्षणमात्र में भी अजव पलटा आ जाता है।

चंडकौशिक नाग जिसके ऊपर दृष्टि फेंकता था। उसकी वहीं की वहीं मृत्यु हो जाती थी। ऐसे विषधर को प्रतिबोधने के लिये भगवान श्री महावीर देव उन जंगलों में पधारे। ठेठ सर्प के बिल के पास जाके प्रभु खड़े हो गये। सर्प ने कई बार दृष्टि फेंकी किन्तु इस मानवी को कोई असर नहीं हुआ। क्योंकि ये मानवी नहीं किन्तु महामानवी थे। विषधर गुस्से हो गया। क्रोध का दावानल सुलग उठा। तीव्र दृष्टिपूर्वक भगवान महावीर के चरण में डंख दे दिया।

इसके मन में ऐसा था कि मेरे कातिल जहर से यह मानवी क्षणभर में मृत्यु को प्राप्त होगा। लेकिन गजब! जहर का कुछ भी असर नहीं हुआ। इसकी वही काया और वही प्रसन्नता। और उसका वही निर्मलभाव।

यह दृश्य देखकर विषधर विचार में पड़ गया। वहां तो करुणामूर्ति भगवान श्री महावीर मधुर वाणी से बोलते हैं कि हे चंड कौशिक! जरा समझ! बुझ, बुझ! तू कौन था? उसका तू विचार कर। एक वक्त तू पवित्र साधु था। लेकिन क्रोध करने से मरा और विषधर बना। संत मिटके सर्प बना।

भगवान के मुख से प्रेमप्रकाशमय मधुरवाणी सुनकर सांप को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। परभव का स्वरुप आंख के सामने दिखाने लगा। भारे पश्चाताप हुआ। क्या करूँ? क्या कर डालूं? ऐसे अनेक विचारों में तल्लीन बन गया। वहीं का वहीं अनशन कर दिया। मुख को बिल में रख के काया वोसिरा दी (त्याग कर दी)।

दही दूध के मटका भर के जाते आते लोग नागदेव

की पूजा करने के हेतु से घी दूध के छींटा सांप की पूछ पर करने लगे। घी से आकर्षित वज्र के इकट्ठी हुई कीडियों ने सर्प के शरीर को चलनी जैसा वना दिया।

असह्य वेदना होने पर भी विषधर अकुलाया नहीं। काया को स्थिर रक्खी। शुभभाव से मृत्यु पाके देवलोक गया।

विचारों कि सर्प को तिर्यंच गति में से देवघति में ले जाने का काम किसने किया? किसके प्रभाव से हुआ? हृदयभावना में पलटा कौन लाया? भगवान महावीर।

शरीर में से निकलते पुद्गल प्रवाह को केच करने से फोटो प्रिन्ट होता है। केमरा के यन्त्र द्वारा निकलते शरीरवर्गणा के पुद्गल केचप होते हैं। इस लिये फोटो खिंच जाता है।

भगवान श्री महावीर देवमोक्ष में गये वह दिन दिवाली का है। भगवान महावीर देवने अंतिम सोलह प्रहर तक अखंड देशना दी। अपना मोक्षकाल नजदीक में जानके अपने प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी को देव शर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिवोध करने भेजते हैं।

गौतम स्वामी प्रतिवोध करके आ रहे थे तव मार्ग में देवोंकी दौड़ादौड़ हो रही थी। तव मार्गमें व्याकुल चित्त वाले देवोंको देखकर गौतम स्वामी उनसे पूछने लगे कि आज तुम व्याकुल क्यों दिखाते हो? इतनी दौड़धाम किस लिये?

विषादमग्न चेहरावाले देव कहने लगे कि भगवन्! तुम्हारे और हमारे आधार भगवान महावीर देव आपको और हमको छोड़के मोक्षमें चले गए।

हैं ! क्या भगवान् मोक्षमें गए ? हा, हा......हा शब्द को वदता वदता (बोलते-बोलते) गौतम स्वामी मूर्छित हो के पृथ्वी ऊपर गिर गए। व्रजघात की तरह महान दुःख को प्राप्त हुए गौतम स्वामीजी, कुछ चेतना को प्राप्त हुए। आँखमें से अश्रुधारा बहने लगी। दुःखी दिलसे विलाप करने लगे।

हे जगत के बन्धु ! कृपासिन्धु ! आप महान आनन्द को पा गए।

अहो ! जगत् के चक्षु ! मेरे जैसे भिक्षुक को छोड़के चले गए। अन्तिम समय तो निकट के स्नेही को पासमें बुलाना चाहिए। ये जगत का व्यवहार है। उस व्यवहार को भी आपने नहीं पाला। क्या ? मुझे पासमें रक्खा होता तो बालक की तरह मैं आपके पीछे पीछे आता ? हे भगवन्त ! अब मुझे गौतम कहके कौन बुलायेगा ! अब मैं किसके चरण कमलमें मस्तक झुकाके वन्दन करूँगा ! अगर मुझे साथमें ले गए होते तो क्या मोक्ष का मार्ग सांकडा हो जाता ? अब मुझे तू कहके कौन बुलायगा :

एसी अनेक विचारधारा में तल्लीन बनें गौतमस्वामी अन्तमें समझे कि हाँ मैंने जाना। आप तो वीतराग ! वीतराग को राग हो ही नहीं सकता। ये तो मेरा एक पक्षी स्नेह था। जब तक मोहको केवल ज्ञान नहीं हो सकता और वहाँ के वहाँ रागको तिलांजली दे दी !

भावना परिवर्तित बने गौतम स्वामीको केवलज्ञान हो गया। देव और इन्द्र दौड़ आए। गौतम स्वामी के केवलज्ञान को समहोत्सव मनाया।

भगवान श्री महावीरदेव के निर्वाण चले जानेसे लोग

विचार करने लगे कि भाव-दीपक समान प्रभु चले गए एसा विचार के सब दिया जलाते हैं इसलिये, दिवाली प्रगट हुई। दूसरे दिन सुबह गौतम स्वामीको केवलज्ञान हुआ वहाँ से नूतन वर्ष का प्रारम्भ हुआ। ये है भावना का प्रभाव।

संयम साधना के सिवाय दूसरे कहीं भी मन, वचन और काया को नहीं वापरें वही सच्चे साधु हैं।

आज धर्म करने वालों में बहु भाग इस लोक और परलोक में भौतिक सुखकी प्राप्ति की इच्छासे और समझे बिना धर्म करता हैं।

जिसकी भक्ति करते हो उसे पहचान के भक्ति करो।

रोज दाल-भात, रोटी-साग खानेवाले पूछते हैं कि साहब ! प्रतिवर्ष कल्पसूत्र ही क्यों वांचते हो ? एसे कहने वालों का पापोदय है।

संसार की हजाम-पट्टी आकरी (कठिन) नहीं लगती किन्तु धर्म में कठिन लगती है।

साधु जीवनकी आराधना बिना अनादिकाल से लगा हुआ संसार छूटने वाला नहीं है।

मानसिक दुःख रागादि से होते हैं। कायिक दुःख रोगादि से होते हैं। इन दोनों में जुड जानेसे वाचिक दुःख होता है।

भोगावलि कर्म का तीव्र उदय होनेसे इस भोग के भोगे बिना जाने वाला नहीं है। एसा मानके तीर्थंकर भोगते हैं।

भोगावलि जोरदार न हो और चारित्र मोहनीय टूटे तब दीक्षा उदयमें आती है।

जगतमें ईर्ष्या की ज्वाला जलती ही होती है। विद्या के क्षेत्रमें कोई अधिक विद्यावंत हो तो दूसरों को ईर्ष्या आती है। व्यापार में कोई पैसादार हो तो उसे देख के कितने ही मनमें जलते ही रहते हैं। राजकारण में कोई ऊंचे होद्दे पर आ जाय तो कितनोंको सहन नहीं होता।

साधु-संस्था में भी किसी के हाथसे शासनके काम अधिक हो जायें तो कितनों को एसा होता है कि यह तो खूब आगे वढ़ गया। कैसे इस पर छींटा उडाऊं यानी बदनाम करूं। एसी मलिन भावना हुए विना रहेगी ही नहीं। जगत में कोई क्षेत्र एसा नहीं है जहाँ ईर्ष्या की ज्वाला न भभक रही हो।

आज जहाँ-वहाँ दिए गए मानपत्र और दीवालों के ऊपर लगाई हुई कुंकुम पत्रिका को देखोगे तो आज धनसे कीर्ति कितनी सस्ती वनी है।

पूरी जिन्दगी तक नहीं करने लायक काम, और पाप करके एकत्र किए गए धनके द्वारा एकाद धर्म कार्य में पैसा खर्च करनेमें आवें तो उसे कितने ही विशेषण देने में आते हैं ?

यह देख करके तो एसा मालूम होता है कि यह तो यशोगान कर करके धर्म कराना है। इससे क्या लाभ ?

ऐसे यशोगान से दूर रहके आप सव आत्मसाधना में तदाकार वनो यही मंगल कामना।

व्याख्यान–इक्कीसवां

अनन्त उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि अरिहंत स्वाभाविक रीतसे हो गए एसा नहीं है किन्तु महा पुरुषार्थ करके हो गए हैं।

द्रव्य से जीव अनंता है। क्षेत्र से स्वकाय प्रमाण अथवा समग्र लोकाकाश प्रमाण भी आत्मप्रदेश विकसित हो सकते हैं।

आकाशास्तिकाय का स्वभाव जगह देनेका है। जैसे भींतमें एक खीला ठोकने से चला जाता है। क्योंकि वहाँ आकाश है। जहाँ जहाँ पोलाण (पोल) होती है वहाँ आकाश वढ़ता है।

प्रत्येक वनस्पति के शाकमें एक जीव हो इसलिये स्वाद ओछा देता है और कंदमूल के सागमें अनंता जीव होनेसे स्वाद अधिक होता है।

पुद्गल में आठों प्रकारका स्पर्श होता है।

आत्मा अरूपी है और पुद्गल रूपी है। आत्मा और पुद्गलका संयोग अनादिकाल का है। जव ये दोनों भिन्न होंगे तभी आत्मा परमात्मा वनेगा।

यह देह तो भाड्ती (किराये की) है। मकान खाली करना ही पड़ेगा। उस ी तरह यह देह भी एक दिन खाली

पुन्योदय से दीक्षा ली, पीछे भी जो एसा हो कि ये मैं कहाँ आ गया? तो एसा मानना कि पापानुवन्धी पुन्योदय है।

सत्वशालियों के लिये अपवाद नहीं होता है। अपवाद तो हमारे जैसे पामर के लिये है।

किसी भी विचारमें तल्लीन हो जाने से नींद नहीं आती है।

आपत्ति के पर्वत खड़े होने पर भी रोम भी नहीं फ़रके उसका नाम है श्रमण जीवन।

शरीर ये वन्धन है। यह वन्धन छोड़ने लायक है। एसा हृदय से जो माने वही वन्धनको छोड़ने का प्रयत्न कर सकता है।

शरीर को धर्म का साधन वनाये विना आत्मा का उद्धार नहीं है। काया के मोहको तिलांजली देने के लिए श्रमणावस्था है। चोदहवें गुण ठाणामें अयोगी केवली भी शरीर कहलाते हैं।

आत्मा की तमाम शक्तिको खर्च करके धर्म करो तो अल्प भवमें ही मोक्ष मिल सकता है।

जो शक्ति मुजब तप करता है उसकी काया में रोग नहीं आता है।

वैमानिक पनेमें जानेवाले श्रावक साधुपना की भावना वाले होते हैं।

तीर्थंकर देवोंकी काया कमल से भी अधिक कोमल होती है। लेकिन दीक्षित होनेके वाद वज्रसे भी अधिक कठोर वन जाती है।

रेतके कोलिया (ग्रास) खानेकी अपेक्षा, लोहेके चना चवाने की अवेक्षा और तलवार की धारपे चलने की अपेक्षा श्रमणावस्था का पालन कठिन है।

कोई श्रीमन्त मनुष्य हमारे पास दीक्षा लेनेको आवे तब हम उसे धर्म क्षेत्रमें लक्ष्मी खर्च करने को कहते हैं। उस समय वह मनुष्य प्रेमसे खर्चे तो मानना कि दीक्षाके योग्य है और रोदणा रोते रोते खर्चे तो मानना कि दीक्षा के अयोग्य है।

कोई शरीरमें तगड़ा मनुष्य दीक्षा लेने आवे तो हम उससे यथाशक्ति तप कराते हैं। जो वह तप प्रेमसे करे तो वह दीक्षा देने के योग्य है एसा मानते हैं और प्रेमसे तप नहीं करे तो उसे हम अयोग्य मानते हैं।

कोई वालक दीक्षा लेने आवे तो उसे विना काम भी हम वैठ-उठ करने को कहते हैं। प्रेम से करे तो समझना कि वह दीक्षा के योग्य है। नहीं तो अयोग्य है। ये सब परीक्षा किए विना किसीको भी दीक्षा नहीं दी जानी चाहिए। अयोग्य आत्मा दीक्षा ले के लजवता है, निंदा कराता है; संस्था को विगाडता है इसलिये परीक्षा किये बिना दीक्षा नहीं देनी चाहिए।

हितकारी भाषा वोले इसका नाम-भाषा समिति।

जगतमें सुख-स्वप्न सेनेवाले अनेक मानव वसते हैं। कोई धनका इच्छुक है, कोई पुत्र का इच्छुक है। कोई प्रियजन को मिलने का इच्छुक है। किसीको कीर्ति की कामना है। कोई सत्ता प्राप्ति की इच्छा वाला हैं। एसे अनेक प्रकारकी इच्छाओं में मनुष्य लिपटे हुए हैं।

अनेक मनुष्य अर्थहीन चिन्तामें डूबे हुए हैं।

करना पड़ेगा। खाली करने के समय प्रसन्न रहना। जितनी प्रसन्नता उस समय होगी, उतनी गति सुन्दर होगी।

अपन जब जन्मे थे तब रोते रोते जन्मे थे। क्योंकि उस समय अपने हाथ की बात नहीं थी। लेकिन मरते समय कैसे मरना ये अपने हाथकी बात है।

पुद्गल में सुरभिगंध और दुरभिगंध दोनों हैं। जगत की चिन्ता करने वाले बहुत हैं और आत्मा की चिन्ता करनेवाले कम हैं। जब तक आत्म चिन्ता नहीं जगेगी तब तक श्रेय नहीं है।

समकित दृष्टि आत्मा घरको जेल मानता है। जेलमें रहा हुआ कैदी जेलमें से छूटने के दिन गिनता है उसी प्रकार समकिती आत्मा घरमें रहके दिन भी गिनता है कि इस संसारमें से कब छूटुं।

जिस मनुष्यको धर्म करनेका मन ही नहीं होता उस मनुष्य का जीवन बेकार है।

धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है। महापुरुष संयम रत्न को प्राप्त हुए हैं। इस जीवनमें से चेतना चली जाय तो काया कोई भी क्रिया नहीं कर सकती।

आत्मा का असाधारण लक्षण उपयोग है। उपयोग दो प्रकारके हैं :- (१) ज्ञानोपयोग (२) दर्शनोपयोग।

आकाश दो भागों में बंटा है—(१) लोकाकाश (२) अलोकाकाश। जितने आकाशमें छः द्रव्य हैं उतने तकके आकाश को लोकाकाश कहते हैं और जहाँ आकाश द्रव्य ही हो शेष पांच द्रव्य न हों वह अलोकाकाश कहलाता है। सिद्धके जीव लोकाकाश के अग्र भागमें रहते हैं।

समवशरणके चारों तरफ वीस वीस हजार सीढियां होती है। परन्तु सीढियों को चढने में अपन को थकावट नहीं लगती एसा तीर्थंकर देवों का अतिशय है। समवशरण का दर्शन करनेवाला नियमसे भवि होता है। समवशरण की रचना देखकरके आँख मुग्ध बन जाती है।

सुशिष्य इंगिताकार को जाननेवाले होते हैं। गुरु को कुछ भी कहना नहीं पडे बिना कहे समझ जाय कि गुरु की यह इच्छा है उसे इंगिताकार कहा जाता है।

सर्वस्व जगत को एक क्षण मात्र में पलट देने का सामर्थ्य धरने वाले होने पर भी करुणा सिंधु तीर्थंकर देव सर्व जीवों का रक्षण करते हैं। तीर्थंकर स्वयं ऊँचे से ऊँची अहिंसा का पालन करके फिर जगत को अहिंसा का उपदेश देते हैं।

मदिरापान के नशे के समान युवानी का नशा है। युवानी में जो धर्म के संस्कार न हों तो जीवन खेदान-मैदान (नष्ट) बन जाता है।

कामेच्छा का प्रभाव युवावस्था में इतना ज्यादा होता है कि उससे मनुष्य सारासार (अच्छे बुरे) का विवेक भी भूल जाता है। यौवनके उन्मादमें दुष्ट विचारों का प्रभाव ज्यादा होता है। इस हिसावसे ही यौवन अनर्थ का कारण है। जीवन में संयम न हो तो युवानी दीवानी बन जाती है। एसी अवस्था में सत्ताधीशपना लक्ष्मीवानपना आदि अग्नि को दीप्त करने जैसे हैं।

परदारा का सेवन करनेवाले को परमाधामी देव नरक में अग्नि से तपाई हुई लोहे की पुतलियों से बाथ भिड़ाते हैं। (आलिंगन कराते हैं)।

जैसे घोड़े को लगाम की जरूरत है इसी प्रकार इन्द्रियों को संयम रूपी लगामकी जरूरत है।

भगवान की देशना सुनके जो मनुष्य जीवन में कुछ भी व्रत नियम नहीं लेता है उसका जीवन बेकार है। सामान्यपनसे लिया हुआ नियम-नियमधारक के जीवन में पलटा जा सकता है। इसलिये मनुष्यको जीवन में व्रत नियम यथा शक्ति कुछ ने कुछ अवश्य लेना चाहिये।

किसी एक नगरी में विमलयश राजा की ध्वजा फरकती थी। प्रजाप्रिय और धर्म के सुसंस्कार से सुवासित एसे इस राजा पर प्रजा की अपार प्रीति थी। इस विमलयश राजा को रूप में रम्भा समान और आज्ञांकित एसी देवदत्ता नाम की रानी थी। वो अपने पति के मुखमें से निकलते वेण को झील लेने में ही परम आनन्द मानती थी।

इसें राजा रानी को पुष्पचूल नामका एक पुत्र था। अपने पुत्रको सुसंस्कारी बनाने में उसके माता पिताने पूरा ख्याल रक्खा था। पुत्र में बुद्धि कौशल्य अपार होने से शस्त्र विद्या में भी वह निपुण और शूरवीर बना। परन्तु उसके जीवन में चोरी का जबरजस्त व्यसन पड़ गया था। इस व्यसन से मदिरापान बिना उसको चलता ही नहीं था, एसा कुटेवों के कारण से मातापिता खूब दुख अनुभवते थे। एसे दुर्व्यसनी युवराज को मेरी प्रजा किस तरह से भविष्य का राजा तरीके स्वीकार करेगी उसकी चिन्ता उस राजा-रानी को दिन और रात खूब सताती थी।

रूपवान एसी कमलादेवी के साथ मातापिता ने पुष्पचूल का लग्न कर दिया था फिर भी पुष्पचूल उसके प्रति रागी नहीं बन के चोरी में ही मस्त रहता था।

पुष्पचूल को समझाने में मातापिता ने जरा भी कसी नहीं रक्खी थी। परन्तु उनका वह प्रयत्न बेकार गया। अन्तमें अपनी पुत्रवधू के द्वारा भी पुत्र को समझाने की राजारानीने कोशिश की कमलादेवी ने अपने पतिको रात में समझाने का प्रयत्न किया।

थक करके लोथ पोथ हुआ पुष्प चूल रातके प्रथम पहरकी पूर्णता समय कमलादेवी के शयनखंड में आया। तब चिन्ता के बोजसे लदी अपनी प्रियतमा का मुखकमल देखकरके पुष्पचूल पूछने लगा कि हे प्रिय, आज तूं इतनी अधिक उदास क्यों है। क्या किसी ने तेरी आज्ञाका उलंघन किया है। या किसीने तेरा अपमान किया है। कमला-देवीने कहा नहीं स्वामिनाथ, आप के जैसे स्वामी की पत्नी का कोई अपमान कर सके ये बात अशक्य है। परन्तु आज में एक चिन्ता से व्यथित बनी हूं। इस चिन्ता से ही मेरा मन उदास रहता है।

पुष्पचूलने कहा कि हे प्रिये, एसी क्या चिन्ता है? क्या तुझे पुत्र प्राप्ति की चिन्ता है? प्रत्येक नारी के अन्तर में लग्न के बाद यह चिन्ता सहजपने से जगती रहती है। लेकिन अपने लग्न को हुये तो अभी दो वर्ष भी पूरे नहीं हुयें। इसलिये अभी से एसी चिन्ता करना तुझे शोभीत नहीं है।

पति के वचन सुनकर कमलादेवी कहने लगी कि हे स्वामिनाथ! मेरे मन में एसी कोई भी चिन्ता नहीं है। परन्तु आपके जीवन सम्बन्धी एक चिन्ता मुझे सताया करती है। आप सुन्दर हो, बुद्धिवन्त हो, आपके माता पिता भी आपके प्रति पूर्ण प्रेमभावी हैं। परन्तु आपके

जीवन में लगी हुई चोरी की भयंकर कुटेव से त्रासी गई प्रजाने महाराजा के पास आकर के विनती पूर्वक कहा है कि युवराज को समझावो नहि तो प्रजा का रोष वढ जायगा। इसलियें आप से मेरी नम्र विनती है कि आप चोरी के व्यसन से जल्दी मुक्त बनो। आपकी प्रियबेन सुन्दरी भी आपकी इस कुटेव से दुखी वन रही है। किन्तु आपसे कहने की किसी की हिम्मत नहीं चलती है। पत्नी का धर्म होने से आज मैं आप से विनंति करती हूँ तो मेरी विनंती का आप स्वीकार करो।

पत्नी के ये वचन सुनकर पुष्पचूल कहने लगा कि हे प्रिये, मेरे मातापिता की, वहन की और तेरी भ्रमणा है मैंने कभी भी चोरी नहीं की। मंत्री पुत्र कोटवाल पुत्र ये मेरे मित्र होने से हम एक साथ फिरते फिरते होने से प्रजा लोग अनुमान करते होंगे कि मैं चोरी करता हूं। परन्तु उनकी वह वात विलकुल खोटी है।

अपनी भूल को छिपाने की वात करते हुये पुष्पचूल का वचन सुन के कमलादेवी ने कहा कि हे स्वामिन्! प्रजाजनों की फरियाद विलकुल सच्ची है। आप जुआ खेलने में खूब रस लेते हैं। कमलादेवी के द्वारा स्पष्ट वात कही जाने पर पुष्पचूल वोला ना रे ना! यह तो केवल मनके आनन्द के लिये किसी वक्त खेलता हूं। बाकी मुझे तो हैया में विलकुल भी रस नहीं है।

कमलादेवी ने कहा कि आप अपनी कुटेवों को छिपाने के लिये ही प्रयत्न कर रहे हो? मैंने तो यहां तक सुना है कि आप रूपवती वेश्याओं के पीछे भी भटकते हो। इस तरह आप अपना जीवन खराव कर रहे हो। वह योग्य नहीं है।

पत्नी के द्वारा स्पष्ट बात कही जाने पर पुष्पचूल ने कहा कि अरे, तू यह क्या बोलती है ? तेरे जैसी संस्कार-मूर्ति और रूप में अप्सरा से भी चढ जाय एसी तुझे छोड़ के मैं दूसरी औरतों में रस क्यों लूँ ? इसलिये तू विश्वास रख कि मेरे दिल के दीवानखाना में तेरा ही अखंड स्थान है। उसमें दूसरी किसी का अवकाश नहीं है।

पत्नी कहने लगी कि आप हमेशा मध्यरात्रि पीछे ही भवन में आते हो। इसलिये लोग आपके विषय में वेश्यागमनकी कल्पना करते हैं। बड़े मनुष्यों को व्यवहार भी शुद्ध रखना चाहिये। जो व्यवहार शुद्ध न हो तो लोक निन्दा हुये बिना नहीं रहे।

पत्नी को खुश रखने के लिये बाहर से प्रियवचन से पुष्पचुल कहने लगा कि अब से तेरी सीख मैं अवश्य ही मानूंगा। बोल अब और कुछ भी तुम्हें कहना है ?

पतिके वचन सुनकर कमलादेवीने फिर से विनती की स्वामिन्। चोरी तो आप छोड़ दो। परन्तु पुष्पचूल अपनी भूल जल्दी सुधारे एसा कहां था ? वह तो उलटा कहने लगा कि कमला, मैं चोरी नहीं करता हूं। परन्तु मैं मानता हूं कि चोरी ये पाप नहीं है। यह तो एक कला है। सुरक्षित भंडार में से धन को उठाना ये कोई लड़कों का खेल नहीं है।

स्वामिन् ! धर्मशास्त्र में और राज्य संचालन में चोरी को पाप और गुन्हा कहा गया है। इसलिये आपको उसका त्याग करना चाहिये।

इस तरह से दूसरी भी कितनी बातें कर के पुष्पचूल ने कमला को संतोषी दी। इस तरह से कुछ टाइमतक

आमोद-प्रमोद कर के समय व्यतीत कर के दोनो निद्राधीन वन गये।

दूसरे दिन मंगल प्रभात में जब पुष्पचूल अपने माता पिता को नमस्कार करने गया तब माता पिताने उस से कहा हे पुत्र! यह राज्य धुरा अब तुझे सम्भालना है। इस लिये तू अन्य प्रवृत्तियों को छोड़ के राज्य कार्य में रस ले।

माता पिता के वचन को मानो सुनता ही न हो इस तरह से पुष्पचूल चला गया। माता पिता को वहुत दुख हुआ।

"पडी टेव ते तो टले केम टाली" एक कवि की इस उक्ति के अनुसार पडी हुई आदत किसी की मिटती नहीं है? चाहे अच्छी हो या वुरी।

पुष्पचूल की चोरी की वुरी आदत दिन प्रतिदिन वृद्धि करने लगी। एक दिवस एक भयंकर योजना पूर्वक पुष्पचूल ने नगर शेठ के भवन में से चोरी की।

अनेक चोरियों में कहीं भी नहीं पकड़े जाने के अभिमान में अंध वना हुआ पुष्पचूल जब नगर शेठ के भंडार में चोरी करने गया तब भवन के चौकीदार और दास दासी जाग गये। चपल पुष्पचूल अपने साथीदारों के साथ आवाद रीत से छटक गया। लेकिन उसके पैर की मोजड़ी (जूती) वहां रह गई।

नगर शेठ चौकीदारों को ले जाके भंडार की तलाश करने गया। वहां अलंकारों को चारों तरफ वेरण छेरण (विखरी हुई) अवस्थामें पड़े हुये पाया। चोरी करने को आनेवाले की कुछ भी निशानी खोजने का प्रयत्न करने से

नगर शेठ की चकोर दृष्टि द्वार के पास पड़ी मौजडी (जूती) पर पड़ी। मौजड़ी को देखकर नगर शेठ चमके! इकदम कोमल और राजवंशी के ही उपर्युक्त मौजडी को देख कर वे विचार करने लगे कि क्या? राजकुमार चोरी करने आया होगा? अधिक तलाश करने पर मालूम हुआ कि एक कोटी की कीमतका रत्नहार भी चोरी में चला गया है।

नगर शेठ सीधे राजभवन में पहुंचे। विमलयश राजा को जगाया। प्रजा के लिये आधी रात को भी जगे उसका नाम राजा। प्रजा के सुख में सुखी और प्रजा के दुख में दुखी जो हो वह राजा प्रजाप्रिय बने विना नहीं रहेगा।

राजा विमलयश और नगरशेठ दोनो जने खंडमें बैठकर गोष्ठी करने लगे। वहां तो मंत्रीश्वर और कोटवाल भी आ गये। चर्चा चालू हुई।

क्यों नगरशेठ! आपको एकाएक आना पड़ा? महाराजाने पूछा। प्रत्युत्तर में सर्व हकीकत महाराजा को कहते हुये नगरशेठ बोले महाराज। गजवकी वात है। मेरे धन भंडार में चोरी हुई है। रक्षक जग जाने से अधिक माल तो नहीं गया। परन्तु एक कोटि की कीमत का रत्नहार उपड़ गया है। मिली हुई निशानी से चोर का अनुमान तो हो ही गया है। फिर भी आप पधार कर के नजरोनजर देखो वह सब से अधिक श्रेष्ठ है।

अच्छा तो चलो देख लें। नजरों से देखने से सब वात की जानकारी मिल जायगी। एसा कह के राजा, मन्त्री कोटवाल नगर शेठ के साथ नगर शेठ के भवन तरफ गये। धन भंडार को वारीक नजर से देखना शुरू किया। इतने में तो महाराजा विमलयश की नजर द्वार के पास पड़ी

मौजडी के ऊपर गई। और राजा चमक उठा। यह क्या? दुष्ट, नराधम, युवराज ने ही मेरी कीर्ति को कलंकित किया है। मन्त्रीश्वर! यहां देखो। यह मोजड़ो किसकी है? मौजड़ी को बारीकी से देखकर मंत्रीश्वर ने कहा कि साहब, यह मौजड़ी तो युवराज की हो एसा लगता है। अच्छा। कोटवाल। जाओ। पैर देखने वाले पादपरीक्षकों को ले आओ। जी। कह के कोटवाल चले गये।

महाराजा ने मन्त्रीश्वर को उद्देश्य कर के कहा कि हे मंत्रीश्वर! तलाश कर के साबित होने वाले चोर को सख्त में सख्त सजा फरमानी पडेगी। इस तरह प्रजा के ऊपर होरहे जुल्म को किस तरह निभाया जा सकता है?

नगर शेठ! तुम जरा भी चिन्ता नहीं करना। रत्नहार पीछे लेकर के ही रहेंगे। तुम निश्चिन्त रहो।

चारों पगी (पादपरीक्षक) आके खड़े रहे। महाराज को नमस्कार किया। महाराजाने उनको फरमाया कि आज अपने नगर शेठ के भवन में चोरी हुई है। तो चोरी करने वाले का पग (पैर)। बताओ। चोरी करने आने वाले की ये मौजडी मिली है। उसे लेकर मैं राजभवन में जाता हूं। तुम जांच कर के पग (पैर) बताओ। कोटवालजी, तुम भी जांच करा के मुझे खबर दो।

इस के बाद राजा भवन में आके पलंग में आडी करवट से सो रहा। लेकिन निद्रा वेरन बन गई थी। चिन्ता के बोज से लदे हुये को निद्रा आती ही नहीं है। प्रातःकाल की झालर बज उठी। मंगल वाद्य शुरू हुये। राजा विमलयश राज कार्य को आटोप कर के राज्यसभा में पधारे। सभाजनोंने जयध्वनि पुकारी।

नगर शेठ के घर में चोरी हुई और वह भी युवराज ने की। एसी वात नगरी में चारों तरफ फैल गई। उसका न्याय होगा। उसे सुनने के लिये प्रजा जल्दी सुवह से ही राज सभा तरफ आने लगी। राज सभा का विशाल होल खचाखच भर गया।

चारण वृन्दोंने स्तुति गाई। प्रारंभिक कार्य होने के वाद गई काल की चोरी का प्रश्न उपस्थित हुआ। पाद परीक्षक पगियोंने नगर शेठ के भवन में से निकलते कदम सीधे राज भवन के पिछले दरवाजे तक देख लिये थे इस के ऊपर से चोकस अनुमान होता था कि यह चोरी राजकुमार ने की।

राजाका फरमान हुआ। मंत्रीश्वर। मोजडी हाजिर करो। मंत्रीश्वर ने मोजडी हाजिर की। कोटवाल ने भी कहा कि साहव, कदमों की जांच कराने से मालूम हुआ कि वे पगलां (कदम) नगरशेठ के भवन से शुरू होकर के राज भवन के पिछले दरवाजे तक देखे गये। वे पैर राजकुमार के ही लगते हैं। और राजकुमार की मोजड़ी तो आपके पास ही है। अव आपको जो योग्य लगे वह कर सकते हो। आप प्रजाके मालिक हो। यह हकीकत सुनकर के महाराजाने राजकुमार को हाजिर करने का मंत्रीश्वरको हुकम किया। राजकुमार पुष्पचूल राजसभामें हाजिर हुये। महाराज को नमस्कार करके एक आसन ऊपर वैठ गये।

महाराजाने पूछा—पुष्पचूल, गईकाल रातको तू कहां गया था? पिताजी! क नहीं! मैं तो मेरे भवन में ही था, राजकुमारने जवाव दिया।

राजकुमार का प्रत्युत्तर सुनके महाराजा कहने लगे कि गईकाल अपनी नगरीके नगरशेठ के यहाँ चोरी हुई। उसमें तेरा हाथ हो एसा लगता है। इसलिये जो सत्य हो वह कह दे। सत्य कहेगा तो अभय मिलेगा।

पिताजी! मैं चोरी की कल्पना भी नहीं की। फिर चोरी करने की तो बात ही कहाँ?

यह सुन करके क्रोधावेश में लाल-चोल बने हुए महाराजाने मन्त्रीश्वर से कहा कि मोजडी हाजिर करो। मोजडी बताकर के पुष्पचूल से पूछा कि यह मोजडी किसकी है? राजकुमारने कहा कि मेरी है। वह कहाँसे आई? एसा सत्य पुरावा हाजिर देखके पुष्पचूल समझ तो गया, फिर भी भावकी रेखा बदले बिना कहने लगा कि किसी दुष्टने मेरी मोजडीका इस तरहसे उपयोग किया हो, यह संभवित है।

राजाने कहा—यह नहीं हो सकता! प्रजा में एसी किसी की हिंमत नहीं कि सिंह की गुफामें हाथ डाले। यह तो केवल तेरा बचाव है। या तो गुन्हा कबूल कर अथवा सिद्ध कर कि इसमें तेरा हाथ नहीं है। पुष्पचूल मौन रहा, मौनसे गुन्हा साबित होता है यह बात पुष्पचूल भूल गया।

मन्त्री वर्गके साथ योग्य मसलत करके महाराजा गम्भीर वदनसे कहने लगे कि पुष्पचूल! आजसे तेरा नाम पुष्पचूल के बदले वंकचूल चालू करता हूं और दश वर्ष तक तुझे देशनिकाल की सख्त सजा देता हूं। तु चोवीस घंटेमें नगरी छोड देना। राज्य सभामें सन्नाटा छा गया, हाहाकार मच गया।

युवराज को एसी सख्त सजा होतीं देखकर प्रौढवर्ग विचारमें पड़ गया। मन्त्रीश्वरने खडे होकर के महाराजा से विनती की कि एक वार भूलको क्षन्तव्य गिनके माफ करो जिससे सुधरने का मौका मिले।

महाराजा बोले—भूलकी क्षमा करने से प्रजा चाहे जब चाहे जैसी भूल करेगी। इसलिये एसी भूलकी क्षमा नहीं हो सकतीं है।

राजसभा विसर्जन हुई। राजभवनमें शोक की भारी लागणी फैल गई यानी सभी दुःखी हो गए। वंकचूलकी माता, पत्नी और छोटी वहन आदि परिवार शोकसागर में डूब गया।

वंकचूल सीधा राज्य भवन में आकर के माताको अन्तिम नमस्कार करने लगा। नमस्कार करते पुत्रको माता सजल नयनसे देखती रह गई। आशाका महल टूट गया। जिस पुत्रके लिये अनेक आशायें थीं वे टूट के भुक्का (चूर चूर) हो गईं। निराश वदन जाते हुए पुत्रको देखकर आँसू के आवेशको माता नहीं रोक सकी।

वंकचूल वहाँ से सीधा अपनी प्रियतमा के खंड में गया। यहाँ पत्नी कमलादेवी हिचकीं लेकर रो रही थी। वंकचूल शान्त करके जानेकी तैयारी करनेका उसे आदेश देता है और अगर साथमें आनेकी इच्छा न हो तो घर पर ही रहनेकी आज्ञा देता है। वहन सुन्दरी को अपने भाई के ऊपर अपार ममता होनेसे वह भी साथमें जानेको तैयार हो गई।

दूसरे दिनकी मंगल प्रभात में एक रथ और पांच घोड़े तैयार हो गए। रथमें कमला, सुन्दरी और तीन

दासियाँ बैठीं। एक अश्व पर वंकचूल और बाकीके चार अश्व पर उसके चार साथीदार बैठे। पांच अश्व और एक रथका यह काफला राजभवनमें से विदा हुआ।

राजा-रानी रो रहे थे। आखिर तो माता-पिता का हृदय अपनी संतानके प्रति खैंचे बिना नहीं रह सकता।

पुत्र नालायक होने पर भी उसके ऊपर की ममता माता-पितामें से कभी भी कम नहीं हो सकती। एक महीना के सतत प्रवास के बाद यह काफला एक पल्लीमें जा पहुंचा।

इस पल्लीमें एक सौ जितने घर और दो सौ जितने झोंपड़े थे। वहाँ की पांथशाला में यह काफला रात्रि वास करने ठहरा। सिंहपल्ली के नामसे यह पल्ली मशहूर थी। नये आये अतिथियों को लूट लेना यही इन पल्लीवासियों का मुख्य धंधा था।

मध्य रात्रिमें दश मनुष्यों का एक टोला पांथशाला में घुस आया। एकाएक आते हुए टोलाको रोकने के लिये वंकचूल अपने साथियों के साथ उस टोला पर टूट पड़ा। दो घड़ीमें तो आठ मनुष्यों को घायल करके कब्जे कर लिए। दो मनुष्य महा प्रयत्न भाग गए। कायर मनुष्यों के ऊपर हमला करके उनके मालको लूट लेनेके लिए टेवाये हुये पल्लीवासियों को ये कल्पना किसी दिन नहीं आई थी कि हम्हें शेरके ऊपर सवा शेर भी मिलेगा।

प्रातःकाल होते ही पल्ली के तमाम नरनारी एकत्रित हो गए। पल्लीवासी समझ गये कि इस काफला के साथ बाथ भीडनेमें (लडाई करनेमें) मजा नहीं है। इसलिये उन्होंने तो निर्णय कर लिया कि इस काफला को यहीं

रोक लेना चाहिए और काफला के नायकको अपनी पल्ली का नायक तरीके नीम देना अर्थात् नियुक्त कर देना।

पल्ली के जन-टोलामें से पांच पुरुषोंने आगे आकर के वंकचूल का परिचय पूछा।

वंकचूलने कहा कि हम दूर देशके प्रवासी हैं। अच्छी जगह रहने की इच्छा है। प्रवास करते करते जो भूमि योग्य लगेगी वहाँ वास करेंगे।

पल्लीवासियोंने कहा कि आप यहीं रहो एसी हमारी विनती है। हम आपकी आज्ञा में रहेंगे। आप हमारे मालिक और हम आपकी प्रजा।

आपका शुभ नाम वताने की कृपा करो। वंकचूलने प्रसन्नता पूर्वक कहा कि लोग मुझे वंकचूल के नामसे वुलाते हैं। यहाँ रहके तुम्हारा मालिक वननेके लिये मेरे साथीदारों के साथ विचार करने के वाद तुम्हें प्रत्युत्तर दूंगा। आखिर वंकचूल उनका नायक वना। पल्लीवासी उसकी सेवामें मग्न वन गए।

नदी किनारे पल्ली था। ढोर भी वहाँ अच्छे प्रमाण में थे। चारों तरफ पहाडी प्रदेश होनेसे स्थल निरापद था। लोग चोरी करके पेट भरते थे। फिर भी प्रजा भद्रिक थी। यह सव देख करके ही वंकचूल ने अपनी पत्नी कमला और वहन सुन्दरी के साथ चर्चा करके नक्की (निश्चित) किया कि यहाँ रहनेमें नुकशान नहीं है। इसमें उनके चार साथीदारों की भी अनुमति मिल गई थी।

सायंकाल की झालर वज उठी। यहाँ चामुंडादेवी के मन्दिर में आरती उतारकर लोग पांथशालामें आये। घडी दो घडीमें तो पांथशाला का प्रांगण नरनारियों से भर

गया। पल्लीवासी आगेवान खडे हुए। वंकचूल को नमन करके स्वयं निर्णय किया हुआ अभिप्राय पल्लीवासियों को बताने के लिये प्रार्थना की।

वंकचूलने सर्वको उद्देश करके बताया कि आप सबकी लागणी, ममता और प्रेम देखने के बाद यहाँ रहने के लिये सम्मत हैं। यह सुनकर पल्लीवासियों ने "चामुंडा देवी की जय" के गगनभेदी नादों से वातावरण गजा दिया। क्योंकि वे चामुण्डा देवीके उपासक थे जो जिसके उपासक होते हैं वे उसकी जय बुलाते हैं।

वंकचूल से उन्होंने भी कह दिया कि आजसे आप हमारे राजा और हम आपकी प्रजा तरीके रहेंगे।

हम सब हमारी आजीविका चोरीसे चलाते हैं। अब आपकी आज्ञाके अनुसार वर्तेंगे। इस पल्ली में छोटे-बड़े पन्द्रह सौ मनुष्योंकी बसती है, सब दुःखी हैं। आजीविका के लिये चोरीके सिवाय हमारे कोई दूसरा साधन नहीं है।

इत्यादि सब बातोंसे वंकचूल को माहितगार करने के बाद वंकचूलने कहा कि भाइयो! चोरी करना ये पाप नहीं है, लेकिन वह कला है, फिर भी एक बात खास ख्याल में रखना है कि राहगीरों पर हमला करके लूट लेना ये शूरवीर का लक्षण नहीं है। इसलिये आज से तुम्हारे किसी वटेमार्गु (राहगीर) पर हमला नहीं करना है और शरीर तथा कपड़े गंदे होनेसे रोगोत्पत्ति होती है इसलिये सबको स्वच्छ रहना सीखना चाहिए और गाँव में गंदकी बहुत रहती है इसलिये सब गंदकी दूर करके गाँवको स्वच्छ बनाना है।

इत्यादि सूचना कर के वंकचूलने सबको विदा किया।

दूसरे दिन वंकचूलको रहने के लिये एक भवन खाली किया उसमें वंकचूलने अपने रसाला के साथ प्रवेश किया।

पांचवें दिन वंकचूलने थोड़े चुनंदा मनुष्यों को लेकर के चोरी करने के लिये प्रयाण किया। पासकी एक नगरी में से एक रातमें चार चोरी करना जिस से करोड़ों की मिलकत मिले। एसी योजना पूर्वक एक रातमें चार चोरी कर के वंकचूल पल्ली में आया। एक ही वक्त की चोरी में करोड़ों की सम्पत्ति ले आने से पल्लीवासी खूब आनन्दित वनें। जिस से उनने वंकचूल को वधा लिया। वंकचूलने लाये हुये धन को सभी को बांट दिया।

इसके वाद ग्रीष्म ऋतु का समय पूरा हुआ। अषाढ मास की वदरी वरसने लगी। सूखी जमीन हरी हो गई। कादव कीचड़ से मार्ग व्याप्त वने। नदियों में पानी छलकने लगा। जीव जंतुओं का त्रास वढ़ने लगा। एसे समय घोर अटवी में एक जैन मुनियों का वृंद विहार कर रहा था।

मुनियों के नायक महात्मा विचार चिन्ता में पड़ गये कि अव जाना कहां? चौमासा वैठने का काल अल्प समय में आ रहा है। वर्षा ने हद करी है। नजदीक में कोई नगर भी नहीं है। चौमासा वैठने के वाद जैन मुनि विहार नहीं कर सकते।

उस समय एक पडछंद (विशाल) काया का मानवी खभा के ऊपर तीर और कामठा (धनुष) लेकर मस्तीभर चाल से आ रहा था। यह मानवी दूसरा कोई नहीं (हमारी कथाका नायक) वंकचूल ही था।

चोरोंकी पल्ली का नायक वनने पर भी गलथुथी (वचपन) में से ही माता पिताने सींचे हुये सुसंस्कारों का वीज उसके जीवन में से विलकुल नष्ट नहीं हुआ था। एसी

भयंकर अटवी में विचरते मुनिवृन्द को देखकर वंकचूल उनके नजदीक जाकर सन्मानपूर्वक पूछने लगा कि हे महात्मन्! एसी भयंकर अटवी में क्यों आये हो?

वंकचूल की कड़क सत्तावाही होने पर भी सुसंस्कारी वाणी को सुनकर मुनि आनन्दित बनें। वडील (वड़े) मुनिराजने कहा कि महानुभाव! किसी वड़े नगर में पहुँच जाने की धारणा से विहार किया था किन्तु पांच दिनतक एकधारी वर्षा चालू रहने से हम एक खंडहर मकान में ठहर गये। आज वर्षा वंद होने से हमने विहार किया है। अब जो वने सो ठीक। हमको तो नगर और जंगल दोनो वरावर हैं। कहीं भी जाकर के संयम का पालन करना है।

हम इस अटवी में रह के भी चार मास व्यतीत कर सकते हैं। परन्तु साधु धर्म की मर्यादा का पालन हमारे लिये अत्यावश्यक है। महानुभाव! यहां नजदीक में मानवीयों की वसती है। मुनि भगवन्त ने वंकचूल से पूछा। हां महाराज! यहां से एक कोश दूर हम रहते हैं। वहां एक पल्ली है उस पल्ली का नाम "सिंह गुफावली" है। वहां आपको रहने के लिये वसती देंगे। परन्तु एक शरत को मंजूर करो तो देंगे। वंकचूल ने खुलासा किया।

मुनि भगवन्त ने पूछा कि एसी कौन सी शर्त है? वह मुझे कहो। मुझे योग्य लगेगी तो मैं मंजूर करूंगा।

वंकचूलने कहा देखो महाराज! आप हो संतपुरुष और हम हैं चोर! आप हो त्यागी और हम हैं रागी! आप तो हो तारणहार और हम हैं मारनार! हम तो चोरी, लूट और खून करनेवाले हैं। चोरी नहीं करें तो हमारी आजीविका नहीं चले। लूट नहीं करें तो हमारा

परिवार रखड जाय। लूट और चोरी करते हुए किसी समय खून भी करना पडे इसलिये तुम्हारा मार्ग अलग और हमारा मार्ग अलग!

तुम्हारे संग अगर हम आयें तो हमारा रोटला नष्ट हो जाय, टल जाय और अगर हमारी सोबत आप करो तो आपका साधुपना चला जाय इसलिये तुम्हारा और हमारा मेल मिलेगा नहीं। मैं खुद इस पल्ली का नायक हूं, मेरा नाम वंकचूल है।

मुनि भगवन्त बोले, नाम तो तुम्हारा उत्तम है। महानुभाव! तुम उत्तम कुलवंशी लगते हो! अगर तुम्हें कोई विरोध न हो तो तुम तुम्हारे कुलका परिचय दोगे?

वंकचूलने कहा महाराज! मेरे कुलवंशकी बात बहुत लम्बी है। आज कर्मयोगसे पल्लीपति बना हूं और चोरी करके जीवन जीता हूं। आपके साथ मेरी शर्त यह है कि आप खुशीसे मेरी पल्ली में चातुर्मास रहो। हम सब आपकी सेवा अच्छी तरहसे करेंगे। परन्तु आप जबतक हमारी पल्ली में रहो तब तक किसीको भी धर्मोपदेश नहीं देना।

कडक शर्त सुनके महातमा विचार में पड़ गये। अनेक स्थानमें बस कर के अनेक को उपदेश देना इसकी अपेक्षा तो एक पल्लीपति को ही युक्ति से भविष्य में सुधारना ठीक है।

परन्तु ये सुधरे कहां से? उपदेश सुनने की तो पहले से ही मना करता।

विचार में पड़े हुये महातमा को देखकर वंकचूल कहने

लगा कि प्रभो। आपका धर्म सुनाने का कर्तव्य सच्चा। परन्तु मुश्किली यह है कि आपका उपदेश हमको जच जाय और हम चोरी छोडें तो भूखे मर जायें। इसी लिये मैं शर्त करता हूं।

इतनी निखालसभरी छल कपट रहित सत्य वाणी से मुनि प्रसन्न हो गये। अवसर के जाननेवाले महात्माओंने समय पहचान लिया।

महानुभाव। तुम्हारी शर्त को हम कबूल करते हैं। हम्हें तुम्हारी पल्ली में रहने की अनुज्ञा दो।

वंकचूल प्रसन्न वदन से बोला कि महात्मन्। मैं धन्य बना। पधारो मेरी पल्ली में। वहां एक पांथ शाला के चार रूम हैं। प्रांगण है। उसमें आप विराजना। आपके आहारपानी की व्यवस्था मेरे भवन में हो जायगी। आपको किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी।

मुनि मंडल को लेके वंकचूल पल्ली में आया। पांथ शाला खोल दी। हवा प्रकाश से भरपूर चार रूम में महात्मा उतर गये फिर वंकचूल से पूछा कि महानुभाव, जिन मन्दिर है कि नहीं? वंकचूलने कहा कि महाराज। जिन मन्दिर तो नहीं है। किन्तु मेरी बहन और मेरी पत्नी प्रभु के दर्शन किये बिना पानी भी नहीं पीतीं इसलिये उनके पास प्रभु पार्श्वनाथ की एक स्फटिक की प्रतिष्ठित प्रतिमा है।

अति उत्तम। तुम्हारा भवन कहां है? मुनि ने पूछा। वंकचूल ने अंगुली से अपना मकान बताया। प्रसंगोपात्त थोडी बात चीत कर के वंकचूल रवाना हुआ।

ये पल्ली वासी तमाम नर नारी एक काले वस्त्र के

धारक बढ गई डाढी मूंछ वाले, और उनको देखकर घड़ी भर डर लगे एसे बीहामणा (भयंकर) होने पर भी मुनि मंडल ने यहां चातुर्मास करने का तय किया।

सामको पल्लीवासी वंकचूल के भवन के पास एकत्रित हुये। वंकचूल एक ऊंचे आसन पर बैठ के कहने लगा कि देखो भाइयो, अपने आंगन में आये हुये अतिथि यों का सत्कार करना ये अपना कर्तव्य है। आज अपनी पल्ली में जैन मुनि मंडल चातुर्मास स्थिर रहने के लिये आया है। वे गरम किये पानी के सिवाय अन्य पानी का स्पर्श भी नहीं कर सकते। इस लिये गरम पानी की सभी को व्यवस्था रखनी है। वे अपने यहां से रोटला, दही, दूध और छाश (मट्ठा) ले सकते हैं। इस लिये उसकी व्यवस्था भी करना। ये अपना कर्तव्य है। ये महात्मा होने से कभी भी सामने मिलें तो उन को हाथ जोड़ने से अपना कल्याण होता है। इत्यादिक आचार समझा दिये।

अषाढ चातुर्मासका प्रारंभ दिवस आ गया, चौमासा बैठ गया। मुनि ध्यान में तदाकार बने और मौनपने से चातुर्मास गालने लगे।

चोर चोरी करने में व्यस्त बने। वर्षाऋतु में चोरी अच्छी तरहसे होती है। क्योंकि अंधारी रातमें जब वर्षा होती हो तब कोई पौरजन प्रायः भवनमें से बाहर नहीं निकलता।

सिंहपल्ली में रहते इन मुनियों को वन्दन करने के लिये कमलादेवी और सुन्दरी नित्य जाने लगीं और रोज वन्दन करके शाता पूछने लगीं। परंतु मुनि भगवंत उनको धर्मलाभ के सिवाय और कुछ भी नहीं कहते थे।

कभी कभी वंकचूल भी वन्दना करने आता था। कुछ कामकाज हो तो फरमाओ एसी विवेकभरी वंकचूल की बातें सुनकर मुनि विचार करने लगे कि जो धर्मोपदेश नहीं करनेकी शर्त न रक्खी होती तो इस भाग्यशाली का जीवन जरूर बदल जाता।

कारतक सुदी चतुर्दशी का समय था। चोमासा की पूर्णता का अन्तिम दिन था। वंकचूल दर्शन करने आया तब महात्मा कहने लगे कि महानुभाव! आज चोमासा पूरा हो रहा है। अपनी शर्तकी अवधि भी पूरी हो गई है। जैसे वहता पानी निर्मल रहता है वैसे साधु भी नवकल्पी विहार करने से उनका संयम निर्मल रहता है। हम कल यहाँसे विहार करेंगे। वंकचूलने थोड़े दिन और स्थिर रहनेका आग्रह किया, लेकिन मुनियोंने अपने विहारका प्रोग्राम निश्चित रक्खा। पल्ली में चार महीना रहके मुनि चले जायेंगे। चार महीना में नहीं किसी की अच्छी कही और न बूरी कही। "धर्मलाभ" के सिवाय कुछ भी नहीं वोले। उपदेश नहीं देने पर भी मौन का प्रभाव हुआ। प्रत्येक पल्लीवासी के अंतरमें इन महात्माओं के लिए पूर्ण मान उत्पन्न हुआ। क्योंकि पूरे चातुर्मास में ये मुनिमंडल सदा ध्यान-स्वाध्याय और आगम वांचन में तदाकार बने थे। कभी भी आकर कोई भी देखता था तो ये महात्मा तत्व-चिंतनमें मस्त थे।

कार्तिक सुदी पूर्णिमाकी मंगलमय प्रभातमें ये महात्मा विहार के लिए तैयार हुए। पल्लीवासी आवाल-वृद्ध इकट्ठे हो गए। कमलादेवी और सुन्दरी भी आ गई। इन दोनोंकी आँखोंमें से अश्रुधारा वहने लगी। गुरुविरह की असह्य वेदना उनके हृदयको कंपा देती थी।

आगे महात्मा मंदगति से चलते थे। पीछे से जनसमुदाय गमगीन चेहरे से चल रहा था। एक विशाल वट वृक्षके नीचे महात्मा खडे हो गये। मंगलीक सुनाया। सबको पीछे जानेका सूचन करके धर्मलाभ रूपी आशीर्वाद दिया। सजल नयन सब पीछे लौटे। लेकिन वंकचूल पीछे नहीं लौटा।

थोडी दूर जाकर के महात्मा फिर खड़े हो गये। महात्माने अपना दाहिना हाथ वंकचूल के सिरपै रक्खा। महानुभाव, तुम्हारी कुलीनता छिपी नहीं रह सकती। पुष्प में से पराग नहीं निकले ये कैसे हो सकता। तुम्हारा धंधा भले चोरी का हो किन्तु तुम जरूर उच्च कुल के पुन्यवान लगते हो। हरकत न हो तो तुम्हारी पूर्वकथा कहो।

भगवन्त ! भगवन्त ! कहते कहते वंकचूल हिचकियां ले लेकर रोने लगा। अति दुःखी एसा मनुष्य भी अपने हृदय की बात महात्मा के पास करते हैं। और शान्ति प्राप्त करते हैं। जगत के तापसे व्याप्त बने जीवों को शान्ति देना ये जैन मुनियों का परम कर्तव्य है।

वंकचूलने अपनी सब वितक कथा गुरु महाराज को कह सुनाई। महात्मा सुनके प्रसन्न हुये। महानुभाव ! चार महीना हम तुम्हारी पल्ली में रहे किन्तु शर्त से बंधे होने से हमने तुमको कुछ भी उपदेश नहीं दिया। अब तुम्हारी अनुमति हो तो कुछ कहें !

वंकचूलने कहा कि हे महात्मन् ! आप तो हमारे परम उपकारी गुरु हो। आपको जो कुछ कहना हो सो फरमाओ। मैं तो आपका सेवक हूं।

मुनि भगवन्तने कहा कि हम चार महीना तुम्हारे यहां रहे थे। इसलिये चार बात हम्हें कहना है। ये चार बात तुम्हें मानना पड़ेगी।

भगवन्त मेरे से बने गीतो अवश्य मानूंगा। तब गुरु भगवन्तने नीचे मुजब चार नियम ग्रहण करने को कहा।

(१) पहले नियम में कहा कि किसी भी जीव पर घा (हमला) करने के पहले सात कदम पीछे हठके फिर घा करो।

(२) दूसरा नियम बताया कि सात्विक आहार लेना। और अगर यह भी नहीं बने तो "अनजान फल नहीं खाना"। जिसका नाम नहीं जानते उसे अजाण्युं फल (अनजान फल) कहते हैं।

(३) तीसरा नियम यह दिया कि परस्त्री को बहन के समान मानना। और अन्त में राजाकी पट्ट रानी के साथ तो विषय भोग नहीं करना।

(४) चौथा नियममां समक्षण के त्याग का। और यह भी न बने तो कागडा (कौवा) का मांस नहीं खाना।

हे महानुभाव! हमारे चार मास के स्थिर वास की यादी तरीके ये चार नियम तुमको देना हैं। तुम ग्रहण करोगे?

हां भगवन्त। इसमें क्या बडी बात है। एसा कह के वंकचूलने इन चारों नियमों की गुरु के पास नतमस्तक हो के प्रतिज्ञा ली।

प्रतिज्ञा पालन में अडिग रहने की भलामण पूर्वक

महात्माने धर्मलाभ दिया। ये मीठा आशीर्वाद सुनके वंकचूल महात्मा के चरणों में झुक गया। भगवन्त! फिरसे दर्शन देना। अविनय अपराध की क्षमा करना।

महात्मा चले गये। एक मार्गदर्शक आगे चलने लगा। पीछे महात्मा चलने लगे। जाते हुये महात्माओं को देखके वंकचूल उनको पुनः पुनः नमस्कार करने लगा।

एक भयंकर लुटारा में "मौन" ने कितना अधिक परिवर्तन ला दिया। मौन का महिमा अपार है। "मौनी सर्वत्र वंद्यते"। मौनी सर्वत्र वंदाता है। मौन रहने से कंकास (लड़ाई) को नाश होता है। मौन ये तप है।

वंकचूल भवन में आया। प्रतिज्ञा उपरांत गुरुने शराव पीने से होनेवाले नुकशान को समझाया भविष्य में उसका भी त्याग करने का लक्ष्य में राखने को कहा। इस वातकी यादी आते ही वंकचूल विचार करने लगा कि स्वतंत्र मनुष्य शराव में पराधीन क्यों? एसे विचार मात्र से उसने निर्णय कर लिया कि आजसे शराव पीना बन्द।

कमलादेवी और सुन्दरीने जब वकचुल के द्वारा लिये गये चार नियम और शराव पीने के त्याग की वात सुनी तो उनका हृदय वहुत ही आनन्दित हुआ। और उनको विश्वास हुआ कि अव धीरे धीरे वंकचूल सुधर जायगा।

वंकचूल लिये हुये नियमों का पालन कितनी मक्कमता (दृढता) पूर्वक करता है। और उसका उसके जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है? अव इसका विचार करें।

एक समय मध्य रात्रिका समय था। वंकचूल के आसपास मित्र बैठे थे।

उनमें एक मित्रने वातकी कि महाराज करीव तीन महीना से चोरी नहीं की। अव तो चोरी करना चाहिये। क्यों कि चोरी के विना पल्लीवासीयों का जीवन कैसे चले?

वंकचूल मित्रोंकी वातको वधा लेते हैं (मंजूर करता है) और अपने एक खास मित्र भोपासे कहने लगा कि भोपा! तैयार हो जा। कल अपन दश जनोंको रवाना होना हैं। दश अश्व वगैरह तैयार चाहिए। अपन सव एक छोटे सार्थवाह के रूपमें मथुरा नामकी नगरीमें जायेंगे। वहाँ किसी पांथशाला में उतरेंगे। वहाँ जाके चोरी की जोजना वनायेंगे।

यह वात सुनकर भोपा विचारमें पड गया। क्योंकि अभी तक भोपाने जितनी चोरी कीं वे सव छिपी रीतसे छोटी छोटी चोरी थीं। कभी भी योजनापूर्वक वडी चोरी नहीं की थी। आज यह वात सुनकरके भोपा आश्चर्यमुग्ध वन गया और वंकचूल के सामने कुछ भी जवाव नहीं दे सका।

दूसरे दिन सूर्योदय के समय दश अश्व रवाना हुए। पल्लीवासियों ने जयध्वनि गजा दी। दशों अश्व गतिमान वनें। सिंहपल्ली से पचास कोश दूर आई मथुरा नगरीमें धीरे धीरे वह पहुंच गए। उत्तरदिशा की एक छोटी पांथशालामें उनने उतारा किया यह पांथशाला गाँवसे थोडी दूर थी। यहाँ कोई उतरता नहीं था। क्योंकि यहाँ पानी आदि व्यवस्था (सगवड) का अभाव था। फिर भी वंकचूल अपने साथीदारों के साथ यहीं उतरा।

एक सप्ताह के रोकाण दरम्यान वंकचूल रोज फिरने

जाता था। वजारों की वस्तुओं का सौदा भी कभी कभी कर लेता था।

सातवें दिन सब साथियों के साथ जीमकर वंकचूल अपने साथियों को योजना समझाने लगा।

देखो! आज रातको यहाँ के धनकुबेर के यहाँ चोरी करना है। चोरी करने के लिए मैं (वंकचूल) भोपा और दूसरे तीन साथी मिलके पांच जन जायेंगे। बाकीके पांच जन सब माल लेकर अपने अपने अश्वों के साथ अभी हाल नगरी का त्याग करो! और यहाँ से दश कोश के ऊपर एक शिवालय है, वहाँ जाके रूकना।

भोपा, सुन! अपनको धनकुबेर के भवनमें से चोंरी करना है। उसका धनभंडार वगीचामें आए हुए महादेव के मन्दिरमें है।

भोपाने पूछा कि साहेव, आपने कैसे जाना कि धन भंडार वहाँ है।

वंकचूलने भोपाके मनकी शंका का समाधान करते हुए कहा कि मेरी चकोर नजर दीवाल के पीछे क्या है? वह देख सकती है।

मेरा अनुमान खोटा (गलत) नहीं होता है। अपन अभी तो नृत्य देखने जाते हैं। एसा कह के निकल पड़ना है। फिर एक प्रहर तक वजार में इधर उधर फिर के धन कुबेर के बगीचा के पास जाना है? वहां एक वृद्ध चौकीदार चौकी करता है। एक एक प्रहर के वाद दूसरे चौकीदार आके देख जाते हैं।

इस लिये एक प्रहर के अन्त में जव चौकीदार चला जाय कि उसी समय दीवाल कूद कर अपन वगीचा में

प्रवेश करेंगे। एक जन एक पेड़ के ऊपर बैठ के ध्यान रक्खेगा कि कोई आता तो नहीं है?

एक जन वृद्ध चौकीदार जाग कर के कुछ आवाज नहीं करे इसकी सावधानी रखना है। हम तीनों मन्दिर में जायेंगे। मन्दिर के गर्भगृह में से धन भंडार के रूम में जाया जाता है। वहां जाकर के मार्ग खोज लिया जायगा।

वंकचूल की इस योजना से सभी सम्मत हुये। पांच अश्व निकल गये। वंकचूल और चार साथी नृत्य देखने के बहाने पांथशाला में से निकल पडे। प्रथम प्रहर पूर्ण होने के साथ ही सब बगीचा के पास मिल गये।

प्रहरी आके चला गया। उसकी खात्री हो गई।

धीमे रह के पांचों जन बगीचा की दीवाल कूदके बगीचा में आ गये। योजना के अनुसार सभी बिखर गये।

वंकचूल अपने दो साथियों के साथ मन्दिर में आ गया वंकचूल की चकोर (चालाक) नजर एक चिराड पर गिरी।

भोपाके लिये इस तरह की चोरी प्रथम होने से वह तो देखने में तल्ली न हो गया।

कमर में छिपाये हुये एक औजार से बाकोरुं पाड्युं (सेंघ लगाई यानी दीवाल खोद दी)। एक मनुष्य अन्दर जा सके इतना मार्ग हो गया।

वंकचूल ने दोनो साथियों के साथ खंड में प्रवेश किया। खंड में सम्पूर्ण अंधकार होने से कुछ भी दिखाता नहीं था। लेकिन अंधकार में टेवा गये वंकचूल ने तय किया कि मेरा अनुमान सच्चा है। एक मोमबत्ती जला

दी। मोनवत्ती के झोंखे प्रकाश में तीनो जन देख सके कि यह धनभंडार है। शस्त्र से दो पेटियों (सन्दूक) के ताले क्षणभर में तोड डाले। दोनो पेटियों में नीलममणि भरे हुये थे।

एक एक मणि की कीमत लक्ष सुवर्ण मुद्रा थी। दोनो पेटियों के तमाम मणि थैली में भर दिये। पेटी वंध की। वंकचूल साथियों के साथ वाहर निकल गया। जरा भी आवाज किये विना दीवाल कूंद के रवाना हो गये। परन्तु वृक्ष पर वैठे हुये आदमी को उतरने में जरा आवाज होने से कुत्ते भौंकने लगे। इसलिये वृद्ध चौकीदार जग उठा। परन्तु चारों तरफ देखने से कुछ भी नहीं दिखाने से चौकीदार फिरसे सो गया। वंकचूल का साथी छटक गया।

पांचों जन अश्वों पर वैठ के विदा हो गये। पांथशाला के संचालक को पांच सुवर्ण मुद्रा दीं। विचारा संचालक खुश खुश हो गया।

नगरी के मुख्य दरवाजा के चौकीदार ने पांच अश्वारोहियो को रोका। कौन हो? कहां जाना है?

राहगीर हैं! वंकचूलने बेधडक उत्तर दे दिया। अश्व चलते वने, एक कोश जानेके वाद राजमार्ग को छोडकर पांचों जनोंने अपने घोडे उलटे रास्ते दौडाये। प्रातःकाल होते ही पांचोंजन शिवालय में आ गए। प्रथम आए हुए पांच साथियोंको इन अश्वों पर आनेका कहके उनके अश्वों पर वंकचूल रवाना हुआ। दो दिनका अविरत प्रवास करके रातके दो वजे वंकचूल अपने साथियों के साथ सिंहपल्ली में आ गया।

प्रवास का श्रम खूब लगा था, निद्रा लेनेका विचार था लेकिन घर आने के बाद घरकी मोहिनी भूली नहीं जाती, ये संसारी का स्वभाव है। वस्त्र बदलके प्रियतमा के खंडमें गया।

प्रियतमा के खंडमें प्रवेश करते ही वंकचूल अकल्प्य दृश्य देखके आश्चर्यमुग्ध बन गया। पलंग के ऊपर अपनी पत्नी और एक नवयुवान पुरुषको सोते हुए देखा। पुरुष का हाथ स्त्रीके वक्षःस्थल पर था, दोनों भरनिद्रा में सोये थे। यह देखते ही वंकचुल की आँखें क्रोधावेश से लाल चोल हो गई। मेरे जैसा पति होने पर भी मेरी पत्नी दूसरे के प्रेममें लुब्ध है तो दोनोंको खत्म कर दूंगा। म्यान में से तलवार बाहर निकाली, लेकिन महात्मा के द्वारा दिया गया नियम याद आया। नियमके अनुसार वह सात डग पीछे हठ गया। तलवार भींत के साथ टकराने से उसका आवाज सुनके पुरुष जग गया। देखता है तो भाई वंकचुल खुली तलवार क्रोधावेश में खडा था। एसा क्यों बैठा हो के कहने लगा कि भाई! एसा क्यों? वंकचुल चमक उठा, अहो! ये तो बहन सुन्दरी का आवाज है! यह जानके तो शरमिन्दा बन गया।

सुन्दरीने खुलासा किया कि भाई! आज आपकी पल्लीमें नाटक-मंडली आई है। मैं और मेरी भाभी पुरुष वेशमें वहां गए थे जिससे किसीको खबर नहीं पडे। नाटक पूरा हुआ, दोनों घर आए। नींद खूब आजानेसे मैं कपडे बदले विना ही ऐसी की ऐसी ही सो गई। इतने में तो तुम आ गए।

वंकचुल विचार करने लगा कि जो मैंने नियम नहीं

लिया होता तो आज बहन और पत्नी इस तरह दोनोंकी हत्या का पापी मैं बन गया होता। इस हत्यामें से कोई बचानेवाला हो तो महात्मा के द्वारा दिए गए नियम हैं। धन्य हो महात्माको।

दोपहर का समय था, भोजन से परवार के वंकचुल अपने दो साथियों के साथ वार्तालाप कर रहा था, इतने में एक साथी बोला, महाराज! तुम चोरी करने जाते हो लेकिन हमको कभी भी साथसें नहीं ले जाते। आज तो चलो हम दोनों साथ ही आते हैं।

वंकचूल के खास साथी चोरी करने गये थे। वे अभी तक नहीं आये थे। उनको लिये बिना जाना वंकचूल को ठीक नहीं लगा। तो भी पीछे विचार किया कि चलो इन दोनो की भी जरा इच्छा पूरी करूं और थोडा भी माल ले आऊं। इतने में भोपा वगैरह मित्र भी आ जायेंगे। एसा विचार करके वंकचूल बोला सामको प्रयाण करने के लिये तैयार हो जाओ। तीन अश्व भी तैयार रखना।

संध्या को आरती करके वंकचूल दो मित्रों के साथ रवाना हुआ। साथियों से कहा कि यहां से बीस कोश दूर वीतरना नगरी है। वहां अपनको जाना है। तीन अश्व तीर वेगसे चले। तीसरे दिन की संध्या के समय वीतरना नगरी में दाखिल हुये। एक पाथशाला (धर्मशाला) में उतरे। पाथशाला का संचालक खूब भद्रिक था। वंकचूलने उसे एक सुवर्ण मुद्रा दे दी। संचालक खुश हो गया। वंकचूल और उसके साथियोंने तीन दिन रह करके नगरी का पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया।

आज तीसरे दिनकी संध्या थी भोजन से निवृत्त हो करके वंकचूलने अपने साथियों को योजना समझा दी। देखो। कल यहां के कोटवाल के यहां चोरी करना है। क्योंकि कोटवाल लांच रिश्वत वहुत लेता है। उसके यहां अपार सम्पत्ति है। वैभव का पार नहीं है। इसका भवन राजमार्ग से दूर है। इसके भवन के पीछे एक खिडकी है। उस खिडकी को पकड के भीत कूदना है। और फिर भवनमें प्रवेश करना है। कल इसके भवन में कोई भी नहीं रहेगा क्योंकि भवन के सभी सभ्य प्रथम प्रहर पूर्ण होते पहले आम्र उद्यानमें घूमने जानेवाले हैं। पूरी रात वहीं वितायेंगे।

और ठीक सुवह भवन में पीछे फिरेंगे। पूरी रात भवनमें कोई भी रहनेवाला नहीं है। भवनका एक चौकीदार डेलामें वैठा होगा। भवनका मुख्य दरवाजा डेलासे तीस फूट दूर है। मार्गमें लता और पुष्पवृक्ष होने से अपन सरलता से भवनमें जा सकेंगे। इस योजनामें हम सभी सफल होंगे।

दूसरे दिन वंकचूलने पूरी तलाश करके जान लिया कि कोटवाल जानेवाले हैं। सायंकाल सभीने जाने की तैयारी कर ली। पांथशाला के संचालकने पूछा कि यों एकाएक कहाँ पधार रहे हो? वंकचूलने कहा कि महाशय! आज ऐसे समाचार मिले हैं कि वाजार खूव घट रहे हैं, इसलिये जाना पड़े ऐसा संयोग है। फिर भी अभी हम जायेंगे। जो भाव ठीक लगेगा तो रूक जायेंगे, नहीं तो प्रस्थान करेंगे। ले ये सुवर्णमुद्रा! प्रसन्न रहना। संचालक प्रसन्न हो गया।

वंकचूल अपने दोनों साथियों के साथ पांथशाला में से निकल गया। कोटवाल के भवन के नजदीक पहुंचने पर उनको मालूम हुआ कि कोटवाल अपने परिवार के साथ रथमें वैठ के विदा हो रहा है। यह देखकर वंकचूल प्रसन्न हो गया। दो घड़ी में दोनों साथी भी आ गए। योजना के मुताविक भीत (दीवाल) कूदके तीनों जन अन्दर आ गए। वाहर की डेलीमें एक चौकीदार हुक्का पीता हुआ वैठा था। पासमें एक झांका दीपक जल रहा था। दूसरा कुछ भी नहीं। इस दृश्यसे वंकचूल को संतोष हुआ। धीरे पैर रखते हुए भवनमें प्रवेश किया। भवनमें जा के देख लिया कि भवनमें कोई नहीं है। फिरसे वाहर आकर के दोनों साथियों को इशारा से अन्दर वुलाया। तीनों जन भवनमें घुस गये।

कोटवाल के शयनगृह में एक भोंयरा था, ये वात वंकचूल को मिल चुकी थी। उसके अनुसार शयन खंडमें आ के चारों तरफ देखने लगा परंतु कहीं भी भोंयरा नहीं दिखाया। वंकचूल विचारमें पड़ गया।

उसके साथीने पूछा कि महाराज! आपको खवर है कि कोटवाल का धनभंडार कहाँ है? वंकचूलने साथीदार से कहा कि कानु! मुझे पक्की खवर है कि कोटवाल का धनभंडार शयनगृह में ही है।

वंकचूलने तपास करने पर पलंग के नीचे उसकी नजर एक चिराड (तराड) पर पड़ी। धीरेसे उस चिराड में शस्त्र डालके लादीको ऊँचे उठाई। दोनों साथी चमक गए। उन विचारों को तो खवर भी नहीं थी कि हमारे सरदार की चकोर दृष्टि सव माप सकती है।

वंकचूलने औषधि से ओटोमेटिक दिया कर दिया। झांके प्रकाशसे खंड भर गया। एक साथीको वाहर रखके दूसरे साथी कानुको लेकर वंकचूलने अन्दर प्रवेश किया।

झांखे प्रकाशमें देख सका कि कुवेरको शोभा दे ऐसी धनसंपत्ति यहाँ भरी है लेकिन क्या कामकी? जो मनुष्य लक्ष्मी का सद्व्यय नहीं करते वे मनुष्य मरके लक्ष्मी के ऊपर साँप होके फिरते हैं। पापानुवंधी पुन्य से मिली लक्ष्मी अच्छे काममें नहीं वपराती है।

वंकचूलने एक तिजोरी के तालेको एक मिनटमें तोड़ दिया। तिजोरी में असूल्य हीरा पड़े थे। वंकचूलने तीन थैला हीरा से भर लिए। तिजोरी वंद कर दी। भोंयरे ऊपर की लादी पेक करके ऊपर आ गए। जरा भी आवाज किये विना वंकचूल उस भवन के वाहर निकल गया।

जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से पांथशाला में तीनो जन पहुंच गये। इसके वाद अश्वों के ऊपर आरूढ हो के नगरी में से रवाना हुये। नगरी में से आठेक मील निकल जाने के वाद कोटवाल अपने भवन में आया। भवन के मुख्य द्वार में वंकचूल कनु नाम का साथी मोजडी (जूती) भूल गया था। वह मौजडी पांथशाला में आने के वाद याद आई। वंकचूलने पीछे लेने जाने को मना कर दिया।

मौजडी देख के कोटवाल चौंक उठा। क्या? कोई भवन में गया है? अंदर जाके देखातो भवन में कोई नहीं था। पलंग के नीचे द्रष्टि करने से भी कोई नहीं दिखाया। तो ये मौजडी आई कहां से? यहां कोई आया था। चौकीदार को पूछा। चौकीदार ने कहा ना साहेब! महाराज!

मैं डेलेमें बैठा बैठा हुक्का पीता था। कोटवाल ने पूछा तो फिर ये मोजडी आई कहां से?

कोटवाल शयनगृह में आकर के पलंग के नीचे से भोंयरा में गया। तिजोरी खोल के देखने लगा तो उसमें एक भी हीरा नहीं था। गजब हो गया। कोटवाल की छाती धड़कने लगी। सगड देखने वालों को बुलाया। सिपाहियों को भी बुलाया।

अश्व तैयार थे। दो जन सगड देखनेवाले दश सैनिक और कोटवाल यों तेरह जन रवाना हुये। सगड देखने-वाले (डगों की परीक्षा करनेवाले) आगे चल रहे थे। सगड तलाश करते करते पांथशाला में पहुंचे। तलाश करने से मालूम हुआ कि तीन व्यापारी यहां आये हुये थे। उनका बाहर से कोई जरूरी संदेशा आने से पिछली रात यहां से विदा हो गये। तीनों अश्वारोही थे।

कोटवाल समझ गया कि तीनों व्यापारी नहीं किन्तु चोर होना चाहिये।

सूर्योदय हो जाने से तीनों घोडों की टापें स्पष्ट दिखाई देतीं थीं। उनके पगले पगले (निशानी के मुताबिक) कोटवाल अपने सैनिकों के साथ घोड़ा दौड़ाता था।

शिक्षा प्राप्त किये घोडे पूरे वेग से दौड़ रहे थे। वंकचूल के घोड़े भी शिक्षित थे। इसलिये उनको भी बांधा (विरोध) नहीं था। कानु बोला महाराज! थोड़ा विश्राम कर लें। क्योंकि अव अपने को भयका कोई कारण नहीं है। वंकचूल को भी निर्भयता लगी। उस जगह नहर का पानी वहने से मुखप्रक्षाल आदि करने वे वहां रुक गये।

शौच कर्म से निवृत्त होकर तीनो जन स्नान करने

वैठे। वहां तो वंकचूल के तीव्र कर्णपुट पर अश्वों की आवाज सुनाई दी। कानुने उसने कहा कि कोटवाल अपने सिपाहियों के साथ अपने पीछे आ रहा हो ऐसा मालूम होता है। अश्वों की आवाज स्पष्ट बनती जाती है। कानूने कहा हां महाराज। आपका अनुमान सच है। अब अपन क्या करेंगे ?

घबराने की जरूरत नहीं है॥ चलो अपन अपने घोड़े जंगल में आड़े दौड़ा दें। जंगल घास खूब होने से उसे नहीं दिखायेंगें और कोटवाल भूल खाजायगा। तीनों अश्व तीर की तरह चले।

कोटवालने खूब तलाश कराई किन्तु कहीं भी नहीं मिले। कोटवाल निराश वदन पीछे फिरा।

इस तरफ मध्यान्ह बीत गया होनेसे वंकचूल और उसके साथियों के घोडे भी थक गये थे। कानूने कहा कि मार्ग अनजान है। इसलिये अपन विश्राम लें। अश्वों को शांत किया। एक वृक्षके नीचे वंकचूल बैठ गया। खूब भूख लगी होने पर भी पास में कुछ भी नहीं होने से खाना क्या ?

कानूने बड़े बड़े पके हुये तीन फल लाकर के वंकचूल सामने रक्खे। लो महाराज। ये फल आरोगो (खाओ)। इनकी सुगंध कितनी मजा की है। देखने में भी कितने सुन्दर हैं।

वंकचूलने पूछा कानु। इस फल का क्या नाम है ?

महाराज! नामको तो मुझे खबर नहीं है। अभी नामका क्या काम है? कितने सुन्दर पके हुये फल है? एक एक फल खाने से क्षुधा और तृषा दोनो मिट जायेगी।

वंकचूल को नियम याद आता है कि "अजाण्या फल (अनजान फल) नहीं खाना"। कानू! नाम जाने बिना मैं इस फलको खाने वाला नहीं हूँ। क्यों कि मुझे नियम है।

कानू और दूसरे साथियोंने चाकू से फल चीर के खाना शुरु किया।

फल खाते खाते कानू बोला महाराज! एसे मीठे फल तो आपने कभी भी नहीं खाये होंगे। कुछ भी हो मगर मुझे तो नियम है कि अजान फल खाना नहीं। मेरे इस नियम का मैं भंग नहीं करूंगा। वंकचूलने अपने नियम पालन की दृढता दिखाई। वंकचूल के दोनो साथी फल खाके आडे होकर सो गये।

घड़ी दोघड़ी में तो दोनों के मुँह से फीण (फसूकर) निकलने लगा। काया निस्तेज बन गई। वंकचूल उनके लिये प्रयत्न करे उसके पहले तो उन दोनोके प्राण पंखेरु उड़ गये (यानी मर गये)।

वंकचूल विचार करने लगा कि महात्माने नियम नहीं दिये किन्तु मुझे प्राण दिये हैं। प्रथम वार पत्नी और बहन बच गई। और दूसरी वार मैं बच गया। सचमुचमें उन महात्मा को कोटि कोटि वंदन हो।

दोनों के शवों को अश्वों के ऊपर गोठ दिये। तीसरे अश्व पर वंकचूल बैठ के विदा हुआ।

फलके छिलके मलक मलक कर हंस रहे थे। मानो वंकचूल को देखकर अट्टहास्य ही करते हों।

तीसरे दिन की साम को वंकचूल पल्ली में आया। बनी हुई सब वात सुनाई। पल्लीवासी शोकातुर बन गये।

क्यों कि कानू पल्ली का आगेवान गिना जाता था। परन्तु काल के आगे किसी की चलती नहीं है।

इस तरह दो नियमों का पालन करने से वंकचूल भयानक प्रसंगोंसे बच गया। जिस से महात्मा के वचनों पर उसे अजब श्रद्धा हो गई।

एक समय वंकचूल के कान पर मालव देशकी महारानी के खूब बखाण (प्रशंसा) सुनाई देने लगे।

मालवपति चकोर था। और उसे अभिमान था कि मेरे राजभंडार में से कोई चोरी कर सके एसा नहीं है। यह बात सुनकर के वंकचूलने तय किया कि मालवपति के राजभवन में से ही चोरी करना। और वह भी महारानी के खंडमें से। जिन अलंकारों को महारानी नित्य पहनती है। उन्हीं को चुराना।

वंकचूल आज जीमके बैठा था किन्तु उसके मन को चैन नहीं थी। कब मालवपति का अभिमान उतारूं यही विचार उसके मनमें घूम रहे थे।

वंकचूल के मित्र आ गये महाराजको निराश वदन बैठा हुआ देखकर उसका कारण पूछने लगे।

कुछ नहीं मित्र! सिर्फ एक चिन्ता ही मुझे हैरान कर रही है। मेरे मन में मालवपति के यहां चोरी करने का विचार है।

मित्र बोले। क्या कहते हैं महाराज! मालवपति सिंह पुरुष है। उसके यहां से चोरी करना मौतको भेटने बराबर है। सिंह की गुफा में गया हुआ मानवी कभी भी पीछे नहीं आता।

वंकचूलने कहा कुछ परवाह नहीं। तुम तैयार हो जाओ अपन वीस जनों को यहां से परम दिवस प्रयाण करने का है। और मालवदेश की राजधानी उज्जैन नगर में पहुंचना है।

वंकचूल का अंगत साथी भोपा यह वात सुनकर के जरा चमक गया। महाराज! जागृत नगरी में चोरी करना मुश्किल है। वंकचूलने कहा कि मित्र! सोते हुये पर हमला करने में पराक्रम नहीं है। जगते हुये पर तराप मारना (हमला करना) ये पराक्रमी का कर्तव्य है। कितनी ही वातें करके सब विखर गये।

दूसरे दिन पल्ली में यह वात फैल गई कि अपना सरदार वीस युवानों के साथ उज्जैन में चोरी करने जाने वाले हैं। इस वात से लोगों में आश्चर्य फैल गया कि ऐसा वड़ा साहस क्यों करते होंगे! लेकिन वंकचूल के सामने वोलने की हिम्मत नहीं थी।

आज सिंहपल्ली में नगारे वज रहे थे। चारों तरफ लोग आनन्द में झूम रहे थे। नारियां मंगल गीत गा रहीं थीं। इतना आनंद क्यों? ऐसा क्या प्रसंग यहां उपस्थित हुआ?

आज वंकचूलकी महारानी कमला देवीने एक तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। पुत्र जन्म की वधाई सुनकर वंकचूल वहुत प्रसन्न हुआ।

जिस भवन में पुत्रका रुदन और हास्य नहीं है। वह भवन सूना लगता है। आज तक सूना लगता वंकचूल का भवन पुत्रके जन्मसे मानो नव पल्लवित वन गया था। दासियों में चपलता वढ गई थी। रक्षक आनन्दित वन गये थे। चारों तरफ से नरनारी पुत्र

जन्म की वधाई का आनन्द प्रदर्शित करने के लिये आ रहे थे। सिंहपल्ली के मालिक के यहां पुत्र जन्म की वधाई का आनन्द किसे न हो ?

मालवाधिपति के वहां चोरी करने की योजना वंकचूल के यहां उत्पन्न हुये पुत्र जन्म से ढीलमें पड़ गई। और एक महीना निकल गया। उस टाइम के दरम्यान तो वंकचूल के साथी दो वार चोरी करके आ गये और लाखों की मिल्कतें ले आये।

एक मंगल प्रभातमें पचास घोडों के साथ वंकचूल उज्जयिनी तरफ निकल गया। सिंहपल्ली से उज्जयिनी दोसौ कोश दूरथी इसलिये प्रवास दीर्घ था।

इस समय वंकचूल ने एक सार्थवाह के रूपमें जाने का प्रोग्राम वनाया होने से मार्ग में आनेवाले छोटे वडे नगरों को देखते देखते जाना था। रास्ते में से थोडा थोडा माल भी खरीदना था। क्योंकि उज्जयिनी में रहनेवाले व्यापारी सर्व प्रथम वाहर का माल मांगेंगे इस वातकी वंकचूल को खवर थी।

एक महीना का प्रवास करके पचास अश्वारोही के साथ वंकचूल ने उज्जयिनी में प्रवेश किया। एक गणिका (वेश्या) के यहां उतरा। और गणिका को रूवरू मिलने का विचार करने लगा।

एक रूममें वंकचूल जाके वैठा। चारों तरफ नग्न चित्र नजर आ रहे थे। इस गणिका की प्रशंसा जवसे वंकचूल ने सुनी थी तभी से गणिका को मिलने के लिये उसने निर्णय किया था। दासियां आके कह गई कि थोडी देरमें देवी पधारेंगीं।

वंकचूल उस गणिका को मिलने की प्रतीक्षा कर रहा था। प्रतिक्षा के कितने ही पल मनुष्यको आकुल बना देनेवाले होते हैं। ओर कितने ही पल मधुर होते हैं।

वंकचूल को आतुरता होने लगी। परन्तु गणिका से मिले विना नहीं चल सकता था।

गणिका विचार करने लगी कि उसे मिलने के लिये एक वड़ा सार्थवाह आया है। इसलिये रूपकों श्रृंगारके जाऊं जिससे प्रथम दर्शन में ही सार्थवाह घायल हो जाय।

रूप और योवन की शोभा स्वाभाविक ही है। उसमें भी श्रृंगार हो तो ये रूप खिले विना नहीं रहे।

यौवन की अभिमान मूर्ति समान गणिका ने खंडमें प्रवेश किया। वंकचूल ने खडे हो के नमस्कार किया। सिर्फ एक सामकी परवशता मानवी को भान भुला देती है। नहीं करने लायक काम करवा लेती है। इसीलिये एक समय के राजकुमार ने आज एक गणिका स्त्रीको नमस्कार किया।

देवीका जय हों। एसा कह के वंकचूल वैठ गया। गणिका ने देखा कि सार्थवाह सशक्त है। यौवन खिला है। काया मस्त है। जो इस सार्थवाह का योग हो जाय तो वर्षों की अतृप्ती पूरी हो जाय।

प्रथम दर्शन में ही गणिका घायल हो गई। शेठको पूछने लगी कि कहांसे पधारते हो? प्रत्युत्तर में वंकचूल ने कहा कि कलिंग देश से आता हूं। व्यापार के लिये निकला हूं। उज्जयिनी व्यापार का धाम होने से यहां आते हुये निकलते मार्ग में आपके खूब वखाण सुने इसलिये आपके यह ही उतारा किया है।

प्रसन्नता का अनुभव करती हुई गणिका बोली । मैं धन्य बन गई । कलिंग की साडियां खूब बखणाती हैं आप लाये तो होंगे ?

हां देवी ! आयतो काल आपकी सेवामें रखूंगा । आपको कोई तकलीफ तो मेरे भवन में नहीं हुई ? ना देवी । आपकी मीठी नजर हो वहां तकलीफ कैसी ?

देवी ! आपकी अवस्था खूब छोटी लगती है । ना ना एसा तो नहीं है । किन्तु काया का जतन करने से यौवन टिका रहता है । शेठजी अभी तक मेरे पास बहुत पुरुष आये किन्तु आपकी जैसी सशक्त काया किसी की नहीं देखी । मैं आज धन्य बन गई हूं ।

दूसरी भी कितनी ही बातें करके दोनों अलग हुए। परन्तु दोनोंके अन्तरमें मिलनके छिपे भाव खेलने लगे।

यहाँ रहके एक सप्ताह में वंकचूलने यहाँ की सब माहिती जान ली और निर्णय किया कि राजभवनमें चोरी करने जाने के लिए अकेले ही जाना क्योंकि रानी अपने अलंकारों की पेटी (सन्दूक) अपने पलंगके नीचे ही रखती है। पासके रूममें मालवपति सोते हैं । मालवपति अति चकोर (चौकन्ना) हैं, पराक्रम शाली हैं। उनकी सैना हरपल तैयार रहती है। दुश्मन राजा भी मालवपति के सामने आनेकी हिम्मत नहीं कर सकते। ऐसे मालवपति के अन्तःपुरमें चोरी करना ये कोई बच्चों के खेल नहीं हैं । भलभलों की छाती बैठ जाय ऐसी मालवपति की धाक है ।

परन्तु जोखम विनाकी चोरी ये कला नहीं कहला

सकती। वंकचूलने अन्धेरा पक्ष (कृष्णपक्ष) की दश
दिन तय किया।

आज दशमी की सांज थी। वंकचूलने अपने स
को वता दिया कि मित्रो ! आज रातको राजभवनमे
करने जानेवाला हूँ। तुम सवको यहीं रहना है।
तरहका भय रखने की जरूरत नहीं है। वंकचूलक
साथी भोपा वोला, महाराज ! तुम्हारी योजना तो सु

देखो, सुनो ! रात्रिका प्रथम प्रहर वितने के
राजभवन के पिछले भागमें जाऊंगा। वहाँ किसीका
जाना नहीं है।

मैं भीत के ऊपर "गोह" फेंक करके मकानके
चढ़ जाऊँगा। अगासीमें से होकर के अन्दर उत
वहाँ मालवपति की रानी के खंडका झरोखा है
झरोखामें से होकर खंडमें जाऊँगा। इस खंड में
सोती है। उस रानीके पलंग के नीचे अलंकारों की
रहती है। द्वितीय प्रहर पूर्ण होने तक उस पेटीको
मैं पीछे आ जाऊँगा।

यह योजना सुनके सव अःश्चर्यमें डूव गए। वं
की यह योजना सवको फफडादे एसी होनेसे साथि
वंकचूल पकड़ा जायगा एसी चिन्ता उत्पन्न हो गई

जिससे वे लोग अपने सरदार से कहने ल
एसा साहस नहीं करो तो क्या हरकत ?

वंकचूलने कहा कि हरकत तो कुछ भी नहीं
परन्तु चोरी करने की ये मेरी अन्तिम इच्छा है।
वाद में चोरी नहीं करूंगा। शान्तिमें रहके जीवन जि
एसा कहके वंकचूल खड़ा हो गया। वस्त्र वदल

कमरमें पिस्तोल लगा दी। मनमें इष्टदेव का स्मरण करके वंकचूल रवाना हो गया।

वंकचूल को यह कल्पना नहीं थी कि ये चोरी इसके जीवनमें वरदानके समान वन जाएगी। वह अपनी योजना में सफल हुआ और ठेक रानीके झरोखा में आ गया।

झरोखा में देखता है कि अन्दर एक पलंग के ऊपर कोशय पट्टकी चादर ओढके एक नारी सोरही है। उसका कंचुकीवंध छूटा हो जानेसे उसके उन्नत उरोज कलश के समान शोभ रहे थे। गौर वदन के ऊपर गुलावी खिल रही थी। इसका एक कोमल हाथ पलंग के वाहर था। झांखा दीपक जल रहा था। इस दीपकके प्रकाशमें इतना देखने के वाद वंकचूल धीरे धीरे पलंग के पास गया।

पलंगके नीचे की पेटीको खेंची लेकिन पेटी नहीं खिसकी। क्योंकि पेटीको ताला लगाके एक सांकल से वांधी हुई थी। इस सांकल का आखिरी हिस्सा रानी के तकिया के नीचे दवा हुआ था। इस तरह की पेटी की व्यवस्था होगी एसी कल्पना भी वंकचूल को नहीं थी।

वंकचूलने दूसरी वार पेटी खेंची। वहाँ रानी जग गई। जगने के साथ ही जल्दीसे रानी वैठ गई। वंकचूल चमका! एक कोनेमें जाके खड़ा हो गया। अव क्या होगा एसा विचार करने लगा। वहाँ तो भययुक्त वाणीसे रानी वोलने लगी कि तू कौन है? क्यों आया है? वंकचुलने निर्भयतासे जवाव दिया कि मैं चोर हूं और चोरी करने आया हूं।

रानी फिर से वोली। कि तू किसके यहां चोरी करने को आया है? उसकी तुझे खवर है?

ठंडे दिलसे वंकचूलने जवाब दिया कि मुझे खबर है। मालवपति का ये अन्तःपुर है। आप उनकी महारानी हो। मेरी कला की परीक्षाकरने आया हूं। आप जग गई तो अब मैं पीछे चला जाऊंगा।

स्पष्ट बात सुनकर आश्चर्यमुग्ध बनी रानीने कहा कि तू चोर हो एसा मुझे नहीं लगता। चोरकी आकृति और भाषा अलग होती है। ये तेरा भव्य ललाट ही बता देता है कि तू चोर नहीं है। तेरा नाम क्या है?

महाराणीजी! मेरे नाम की तुम्हें क्या जरूरत है? मेरा नाम चोर! तू किस जाति का है?

मैं क्षत्रिय हूं।

क्षत्रिय चोरी करता है?

हां, महारानी, क्षत्रिय राज्य करें, युद्ध करें और अवसर आवे तो चोरी भी करें।

तुझे क्या चोरना है?

धनमाल!

तुझे जितना धनमाल चाहिये मैं दूंगी लेकिन मेरा एक काम करना पड़ेगा।

महारानी, मुझसे बनेगातो करूंगा। न बने एसा नहीं है।

तो अवश्य करूंगा।

रानीने अपना कंचुकी बंध बांध लिया। और पलंग के ऊपर से उतर के दीपक पर ढंके हुये ढक्कन को दूर किया। सुहावने प्रकाश से खंड झिल मिल करने लगा। इस प्रकाश में वंकचूल की गौर काया अधिक दीपने लगी। इसके वांकडिया बाल मस्त लगने लगे। इसको सुद्रढ

काया नयन रम्य लगती थी। वंकचूल की तरफ रानी आकर्षित बन गई। जरा आगे बढके रानीने वंकचूल का हाथ पकड़ लिया। कोमल स्पर्श शरीर की उष्मा देखके रानी मुग्ध बन गई। आहा! एसा मधुरस्पर्श जीवन में कभी भी नहीं हुआ?

पल दो पलके लिये आश्चर्य चकित बनी रानी बोली प्रियतम पलंग पर पधारो। दासी को ग्रहण करो। यौवन को सफल बनाओ।

वंकचूल चमका! रानी के हाथ में से हाथ छुडा के वंकचूल जरा दूर हठ गया। महारानी, माफकरना। आपको एसा शोभा नहीं देता। आप यह क्या कह रहीं हैं? प्रियतम, यौवन यौवनको झंखता है। यौवनका तरवराट आपको अभिनन्दन के लिये तरस रहा है।

पुरुष और प्रकृति का मिलन हो यह कोई असहज नहीं है। तू चोरी करने आया है तो धन और यौवन दोनों की चोरी करता जा।

महारानी! आप मालवपति की प्रेमपात्र हैं। इसलिये आपके रूपकी चोरी करने का अधिकार उनके सिवाय और किसी को नहीं है।

तू मान जा। एसा अमूल्य मौका तुझे फिर नहीं मिलेगा।

जरा विचार कर। मालवपति अब वृद्धत्व को प्राप्त हो गये। मेरे जैसी अनेक सुन्दरियों के पीछे उन्होंने अपना यौवन खर्च कर डाला है।

मेरी तो खिलती जवानी है। आशा उमंग और तरवराट लेके मैं यहां आई थी लेकिन मालवपति से मुझे

सन्तोष नहीं। मेरे सन्तोष का स्वामी तू बन जा। तेरे चरण में मैं मेरा तन, मन और धन ये तीनों अर्पण करती हूं। और इस तरह से ही मै अपना जीवन धन्य बनाना चाहती हूं। रानीने आगे बढके दूसरे वक्त वंकचूल का हाथ पकड़ा।

प्रियतम! तुम्हारे हाथमें जैसी उष्मा है। वैसी उष्मा आज दिन तक मैंने कहीं भी नहीं देखी। एसा कहते कहते रानी वंकचूल को लिपट गई। वंकचूल जरा रोष करके रानी के हाथमें से छटक गया।

अतृप्त नारी का क्रोध सुलग उठा। और कहने लगी कि अब मैं तुझे आखिरी बार कहती हूं कि तू मेरी इच्छा के तावे हो जा। वंकचूल ने स्पस्ट इंकार कर दिया। तब सत्तावाही स्वरमें रानीने कहा कि दुष्ट! मेरा नहीं मानेगा तो परिणाम अच्छा नहीं आवेगा। परिणाम की कल्पना कर ले।

परिणाम दूसरा क्या आना था? मृत्यु से अधिक बुरा परिणाम तो नहीं? वंकचूल अडिग बनके बोला।

महारानी के अधिक डर बताने पर वंकचूलने स्पष्ट कहा कि हे महारानी! मेरे गुरुने नियम दिया है कि राजा की महारानी के साथ विषय नहीं सेवन करना। आप तो प्रजा की माता कहलाती हैं। हम आप की प्रजा हैं।

रानी अधिक गुस्से होकर बोली कि तेरा नियम मुझे नहीं सुनना। ये तो तेरा बचाव है। एसे बचाव के जाल में मैं फंसूं मैं एसी नहीं हूं। बस! तेरी वाक्चातुरी रहने दे। तू भी मेरी आज्ञा को उल्लंघन करने का फल चख ले।

एसा कहके रानीने एकाएक चिल्लाना शुरू किया। ौड़ों! दौड़ों! चोर! चोर! एसा कहने के साथमें दरवाज़ा ब्रोल दिया।

इस तरफ मालवपति की नींद उड़ गई थी। रानी के ब्रंड में से आते हुये आवाज़ को सुनकर मालवपति एक यान से इस वार्तालाप को अपने खंडमें सोते सोते सुन :हे थे। पलंग पर बैठके एक चित्त से सुनते हुये मालव ।तिने विचार किया कि जिसे मैं प्रेमपात्र मानता हूं। ्सी प्रियतमा को मेरे ऊपर प्रेम है ही कहां? बस! ्ख लिया।

एसा होने पर भी अपनी इज्जत के लिये कुछ भी गोले विना चुप बैठे रहे।

रानी के शब्द सुन कर उनके रोम रोम में गुस्सा ःयाप्त हो गया। परन्तु मन ऊपर काबू रख के अनजान बन के रानी के खंड में आये।

दूसरी तरफ चार छः रक्षक भी रानी की चिल्लाहट सुन के आ गये। दश-पन्द्रह दासियां भी दौड़ के आ गईं।

रानी मालवपति को रोते रोते कहने लगी कि प्रियतम। इस दुष्टने मेरी इज्जत लेने का प्रयत्न किया था। और मैं जग गई। प्रियतम। मेरी छाती घबरा रही है।

मालवपति का सत्ताधीश स्वर अच्छों अच्छों को घबरा दे एसा था। वंकचूल से महाराजा ने पूछा कि तू यहां कैसे और किस लिये आया था?

वंकचूलने कहा कि मेरी कला से मैं यहां चोरी करने आया था। और महारानी जग गई।

राजाने फिर से पूछा कि क्या तूने मेरी प्रियतमा से खराब व्यवहार किया था ?

वंकचूल बोला महाराज एकान्त का समय हो। पूर्ण यौवन और आशा का उमंग खिला हो वहां सब बन सकता है। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।

मतलब कि तू गुन्हा कबूल करता है कि नहीं? महाराजा ने सत्तावाही स्वरसें पूछा।

वंकचूल मौन रहा। मौन ये गुन्हा की कबूलात है। आखिर में उससे पूछा गया कि तुझे कुछ कहना हो तो कह।

ना महाराज। मुझे कुछ भी नहीं कहना है। आपको योग्य लगे वैसा करो।

रानी को बोलने का मौका मिला। और खुद किये स्त्री चरित्र का उसे अभिमान आया. प्रियतम। देखा। कैसा दुष्ट है? प्रिये! कुछ भी हरकत नहीं है। तू निश्चिन्त भाव से सोजा। राजा ने रानी को आश्वासन दिया।

सैनिको! इस दुष्ट को पकड़ के राज्य के गुप्त कारा-वास में ले जाओ। चलो! मैं भी साथ में आता हूं। इसका न्याय कल राज्य सभा में होगा।

वंकचूल कुछ भी बोले विना सैनिकों के साथ चला। कारावास उस राजभवन के चौगान में ही था। वंकचूल को सिपाहियों ने कारावास में पूर दिया

मालवपति भी वहां हाजिर थे। उनने सिपाहियों को रवाना किया। एक दीपक वहां आ गया। कारागृह के खंड के दरवाजे बन्द करा के मालवपति और वंकचूल अन्दर बैठे।

दोनों एक दूसरे के सामने एक टकटकी से देखने लगे। लेकिन कोई बोलता नहीं था।

आखिर मालवपतिने पूछा तेरा नाम क्या है? मेरा नाम चोर। मेरे नामको आपको क्या काम है?

वंकचूल का लापरवाही भरा जवाब सुन करके महाराजा ने कहा कि सुन। शास्त्रों में लिखा है कि राजा के पास असत्य नहीं बोलना। तू क्षत्रिय है। इसलिये जो हकीकत हो सच सच कह।

महाराज। मेरा नाम वंकचुल। मैं सिंहपल्ली का राजा हूं। मैं और मेरे साथी चोरी करते हैं।

तेरे भव्य चेहरे परसे सिद्ध होता है कि तू चोर नहीं है। राजाने कहा।

माफ करो महाराज! मेरा सत्य परिचय दिया जा सके एसा नहीं है।

नहीं, वंकचुल। तुझे तेरा सत्य परिचय देना ही पड़ेगा। राजाने अति आग्रह से कहा।

महाराज! ढींपुरी नगरी के विमलयश राजाका मैं पुष्पचुल नामका पुत्र था। यौवन के प्रथम कालसे ही मैं चोरी की आदत में फँस गया था। इसलिये महाराजाने मुझे देश निकाल दिया। वहां से मैं मेरी पत्नी और मेरी बहन सुंदरी इस तरह हम तीनो सिंहपल्ली में आके बस रहे हैं। वहां मेरा नाम वंकचुल तरीके मशहूर हुआ।

वंकचुल के मुखसे सत्य हकीकत सुनके राजा आश्चर्य मुग्ध बनके कहने लगा कि ओहो। विमलयश राजा तो मेरे मित्र हैं। लेकिन तुझे राजभवन में चोरी करने क्यों आना पड़ा?

महाराज ! मेरे कोटुम्बिक प्रश्न के लिये । मेरी छोटी बहन सुन्दरी है । उसे मेरे ऊपर अत्यन्त प्रेम होने से वह मेरे साथ ही आई है । आज वह पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त हुई है । इसके लिये योग्य सम्पत्ति की जरूरत है । सम्पत्ति के विना तो कुछ भी नहीं हो सकता । इसलिये यहां चोरी करने को आया था । लेकिन चोरी नहीं हो सकी ।

पुष्पचूल ! तेने धनके वदले रूप की तो चोरी की है ? सच बोल ।

वंकचूल मौन रहा । राजा के दिल में वंकचूल के लिये अत्यंत मान पैदा हुआ । धन्य है इसे । अपने ऊपर रानीने खोटा आरोप लगाया फिर भी रानी का लेश मात्र भी अवगुण नहीं कहता । इसलिये अन्त में खुद सुनी हुई हकीकत को राजाने वंकचूल के आगे खुली की ।

वंकचुल ! तू जब रानीके खंडमें आया था उस समय मेरी निद्रा उड़ गई थी । मैं रानीके खंडमें आनेको निकलूं उसके पहले तो रानीके साथ तेरा वार्तालाप सब सुननेमें आया । उसे सुनने से रानीके खंडमें नहीं आया ।

पुष्पचुल ! तू निर्दोष है फिर भी आरोप को तूने अपने सिर क्यों ले लिया ?

वंकचुलने कहा कि मालवपति की आवरू बचाने के लिए मैंने अपनी निर्दोषता प्रगट नहीं की ।

महाराजाने कहा कि अगर मैंने तुम्हारा वार्तालाप नहीं सुना होता तो तेरा क्या होता ? सचमुच में तेरे जैसे महापुरुष के मिलाप से मैं धन्य वना हूं ।

आवती काल (कल) मैं तुझे राज्यसभा के समक्ष जनरल महासेनाधिपति तरीके नियुक्त करने वाला हूं। इतनी मेरी विनती माननी पड़ेगी।

वंकचूल के लिए कारागृह में तमाम व्यवस्था कराके मालवपति विदा हुए और वहाँ से सीधे महारानी के खंडमें आए। अन्य रानियां भी बैठी थीं।

प्रियतम को आया हुआ देखकर दूसरी रानियाँ चली गईं।

राजाने द्वार वन्द किया। रानी से पूछा कि उस दुष्टने क्या किया था?

प्रियतम! उस दुष्टने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया और मेरे पास भोगकी याचना की। लेकिन मैं चिल्लाई और दरवाजा खोल दिया।

राजाने देवीको धन्यवाद दिया।

देवी! मैं अभी उसी दुष्टके पाससे आ रहा हूं। ये दुष्ट तेरे खंडमें आया उसी समय मेरी निद्रा उड़ गई थी। इस लिये मैं तेरे पास आता था। लेकिन तुम्हारा वार्तालाप कान पर पड़ जाने से मैं नहीं आया। उस वार्तालाप में मुझे उस दुष्ट की भूल नहीं दिखाती। इस लिये अब तो जो सत्य घटना है वही कहना।

रानी समझ गई कि आज मेरी पोल पकड़ी गई है। इस लिये अब सत्य बोले विना चले एसा नहीं है। इस लिये रानी भूल कबूल कर के हिचकियां लेके रोने लगी।

राजा ने अपनी इज्जत को वाहर से वट्टा नहीं लगे इसके लिये रानी को सान्त्वन देके शान्त की।

पूरे शहर में रानी की चिल्लाहट और दुष्ट को कारागृह में बन्द कर देने की वात वायुवेग से फैल गई। राज सभामें उस दुष्ट को हाजिर करके न्याय होगा। वह सुनने के लिये इकदम सुबह से मनुष्यों के टोले (समूह) राज सभाकी तरफ जाने के लिये उमटने लगे।

यह वात भोपाने भी सुनी। वह समझ गया कि मेरा मालिक वंकचुल पकड़ा गया। उस का न्याय आज होगा। भोपा विचार में पड़ गया। शीघ्र ही उसने अपने साथियों को तैयार हो जाने की आज्ञा की।

गुप्त रीत से शस्त्र भी तैयार किये। आज राज सभा में जाना। वहां अपने स्वामी को मालवपति अगर मृत्यु की सजा फरमावे तो अपन सामना करके भी स्वामी को छुड़ायेंगे एसा निर्णय कर के भोपा अपने साथियों के साथ राज सभा में गया।

एक पिंजरे में वंकचुल वन्द था। ये देखकर के वंकचुल के साथी खूब गुस्से हुये। लेकिन अभी शान्त चित्त से वैठे रहने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं था।

प्राथमिक कार्य करने के वाद महाराजाने गई काल के चोर का प्रश्न उपस्थित किया। उसमें कहा कि गई काल रातको ही मैं उस चोर को मिला हूं। मैंने उसकी सव वात सुनी है। और करने योग्य सजा भी मैंने कर दी। हाल तो मैं यही आज्ञा करता हुं कि उसे पिंजरे में से मुक्त कर दिया जाय।

पिंजरे में से वाहर निकल करके वंकचुल मालवपति के चरणों में झुक गया। मालवपति ने उसे योग्य आसन के ऊपर वैठाया।

सभा जनों को शांत करके मालवपति ने जाहिर किया कि इस चोर की आज से मेरे राज्य का जनरल सेनापति तरीके नियुक्ति करता हूं ।

सभाजनों ने खूब आश्चर्य का अनुभव किया कि एसा क्यों? लेकिन किसीको भी पूछने की हिमत नहीं थी। वंकचुल के साथी भोपा वगैरह इस वात से प्रसन्न हो गये। उनके आश्चर्य का पार नहीं रहा। राजसभा विसर्जन कर दी गई। वंकचुल अपने साथियों को मिलने गया। और सब वात कह दी। साथ यह भी कहा कि अब अपन चार दिन में यहां से विदा होंगे। वहां जाकर के सब काम पूरा करके अपने परिवार के साथ पुनः मुझे पीछे यहीं आना है। वहां की जवाबदारी भोपा को संभालनी होगी यह वात सुनकर के साथी खिन्न हो गये। और भोपा तो खूब ही नाराज हुआ।

मालवपति की अनुमति लेकर वंकचुल अपने साथियों के साथ उज्जयिनी से विदा हुआ। वीस दिनका झड़पी प्रवास करके सिंहपल्ली में प्रवेश किया।

सिंहपल्ली के नर नारियोंने भावसे वधाई दी। रात के समय वंकचुलने अपनी सब हकीकत अपनी पत्नी और बहन को कही। तब दोनो खूब खुशी हुई।

पल्ली में एक महीना रुक के वंकचुलने अपने परिवार के साथ यहां से विदा ली। विदाके समय पल्ली के प्रत्येक मानवी की आँखमें से सावन-भादों वरसने लगा। वंक-चुलको भी जानेका दिल नहीं था। लेकिन कर्तव्य के आगे मानवी को लाचार बनना पड़ता है।

दो महीना का शान्ति से प्रवास करके वंकचुल

उज्जयिनी पीछे आ गया। एक विशाल भवनमें वंकचुलने उतारा किया।

मालवपति वंकचुल के इशारे से चलने लगे। कोई भी काम वंकचुल से पूछे विना करते ही नहीं थे। ऐसा दृढ निश्चय मालवपतिने कर लिया था। इस तरह वंकचुल राज्य का जनरल सेनापति तरीके काम वजाता हुआ मालवाधिपति को अति प्रिय हो गया था। और जीवन व्यतीत कर रहा था।

एक समय उज्जयिनी में एक आचार्य महाराज पधारे। नगर के नर नारी आचार्य महाराज की देशना सुनने जा रहे थे। झरोखा में वैठे वंकचुलने रास्ते में जाते आते नरनारी के टोला को देख के पूछा कि महानुभाव! तुम कहां जाते हो?

महाराज! आज उद्यान में एक आचार्य महाराज पधारे हैं। यह सुनके उनकी देशना सुनने जाने को वंकचुल की भी इच्छा हो गई। अपने परिवार के साथ उद्यान में गये। आचार्य महाराज को देखकर ही वंकचुल चमक उठा।

"ओहो! ये तो वही महात्मा हैं कि जिन्होंने सिंह-पल्लीमें चातुर्मास किया था। देशना पूरी हुई। लोग विखर गये। वंकचुल परिवार के साथ वैठा रहा। सव चले गये। वाद में वंकचुलने सूरीदेव को नमस्कार किया।

महात्मा! मुझे पहचानते हैं?

हां महानुभाव! क्यों न पहचानें। हम तुम्हारी पल्ली में चौमासा रहे थे। विहार के समय चार नियम तुम्हें दिये थे। वे तो याद हैं कि नहीं? उनका वरावर पालन किया कि नहीं?

हां महाराज! उन नियमों के प्रताप से तो मैं अनेक वार बच गया हूं। सचमुच में आपने तो मेरे ऊपर महान उपकार किया है। आपका उपकार जीवनभर भूला जा सके ऐसा नहीं है। आपने मेरे जीवन में जो अमृत रेडा है (वहाया है) उसी अमृतपान से मैं जीवन जी रहा हूं। अब दूसरा कुछ मेरे करने लायक हो तो फरमाओ।

महानुभाव! विश्व के महान उपकारी श्री जिनेश्वर देव की पूजा नित्य करनी चाहिये। भगवन्त की पूजा करने से सकल विघ्नों का नाश होता है। दुख दारिद्र टल जाते हैं। मनोवांछित फलते हैं।

गुरुदेव आज से हररोज जिन पूजा करूंगा। पूजा किये विना जीमूंगा नहीं। वंकचुलने गुरुदेव का उपदेश झील लिया (स्वीकार कर लिया)। और प्रतिज्ञा करानेको विनती की। आचार्य महाराजने प्रसन्न चित्त से प्रतिज्ञा दे दी। दूसरी भी बहुतसी धर्म की बातें कहीं।

नमस्कार करके वंकचुल भवनमें आया। सूरिदेव एक महीना तक उज्जयिनी में रुके। वंकचुल रोज देशना सुनने को जाता था। गुरुदेव के उपदेश से वंकचुल के जीवन में खूब परिवर्तन आ गया।

एक सामको मालवपति और वंकचुल नौकाविहार के लिए निकल पड़े। नाविक नौकाको मन्द मन्द गतिसे चला रहे थे। सागरकी मस्त लहरें हृदयको भी खूब हचमचादें इस तरह से उछल रही थीं। मालवपतिने एक बात की शुरूआत की।

मित्र! तेरे पिताश्रीको सब समाचार भेजना चाहिए।

वंकचुल ने कहा कि महाराज! मैं अपने पिताको

अपना मुंह वताने लायक नहीं हूँ। उनकी मेरे ऊपर की अपार ममता को मैं नहीं पहचान सका जिससे मुझे देश पार जाना पड़ा। अव मेरी इच्छा उनके पास जाने की नहीं है।

मित्र! गई वात अव भूल जाना चाहिए। तेरे जीवन में अव वहुत परिवर्तन आ गया है। तेरे दो तेजस्वी पुत्र हैं। तेरी वहन सुन्दरीका भी वाग्दान हो गया है ये सव समाचार सुनके वे और उनके प्रजाजन अति आनन्द अनुभवेंगे इसीलिये मैं समाचार देनेको आदमी भेजता हूं।

मौन रीतसे भी वंकचुल की अनुमति मिलने के वाद दूसरे दिन एक दूतको संदेशा लिखके मालवपतिने रवाना किया। एक महीना का सतत प्रवास करके दूत ढीपुरी नगरीमें पहुंच गया।

मालवपति का सन्देशा महाराजा विमलयश के कर कमलमें रक्खा। विमलयश राजाने पत्र खोलके मालवपति का संदेशा वांचा। शन्देशा पत्रको वांचते वांचते विमलयश राजा रो पड़े। सभामें सन्नाटा छा गया। दूसरी वार, तीसरी वार इस तरह फिर फिरसे तीन वक्त राजाने पत्र वांचा। उसके वाद महामंत्री के हाथमें पत्र रखते हुए महाराजा वोले मन्त्रीश्वर! पुष्पचुलको देशनिकाल करके मैंने वड़ी भारी भूल की। मानवी को एक वक्त तो भूल की क्षमा देनी ही चाहिए तभी उसको सुधरने का मौका मिल सकता है। देखो! यह संदेशा मालवपतिने भेजा है। मेरा पुष्पचुल उज्जयिनी में है। वह मालवपति को अति प्रिय हो गया है। महामन्त्री संदेशा वांच गए। वांचते वांचते महामन्त्री की छाती भी भर आई। आंखमेंसे आंसू

टपक पड़े। इसके बाद राजाके आदेश से मालवपति का संदेशा राजसभा को सुनाया गया।

दूसरे दिनकी मंगल प्रभातमें मुख्य मन्त्री राज्यप्रधान और दश सेवक उज्जयिनी तरफ रवाना हुए।

एक महीना के सतत प्रवासके बाद ढींपुरी का मित्र मंडल उज्जयिनी में आ गया। विमलयश राजाका संदेशा मालवपति को देके महामन्त्री वंकचुल को मिलें। पिताका अंगत संदेशा पुत्र पुष्पचुल को दिया। वह संदेशा वांचके वंकचुव को खूब लग आया। संदेशा वाचनेके बाद उसने निर्णय किया कि किसी भी उपाय से पूज्य पिताश्री के चरणमें जाना।

एक महीना में यहाँ का सब निपटा के मैं परिवार सहित यहाँ से निकल जाऊँगा। इस प्रकार कहके महा मन्त्रीश्वर आदिको विदा दी।

महामन्त्री को गए आठेक दिन बीते होंगे कि वहाँ तो वंकचुलके पेटमें दुखावा चालू हुआ (पेट दुखने लगा)।

धीरे धीरे रोग बढ़ता गया। पेट और सिरका दर्द तथा शरीर की पीडा बढ़ने लगी। वैद्य को दवाई चालू हुई फिर भी शरीर में रोग वृद्धि पाने लगा (रोग बढ़ने ही लगा)।

मालवपति चिन्तातुर हुए। राजवैद्यने आके नाडी देखी। मालवपतिने वैद्यराज से पूछा, "वैद्यराज! क्या रोग लगता है? महाराज! खास चिन्ता का कारण नहीं है। लीवरका सोजा (सूजन) बढ़ जानेसे यह सब तकलीफ है। आज मैं दवाई की बारह पुडिया देता हूँ। हर दो घन्टेमें एक एक पुडिया देना। परिश्रम बिलकुल नहीं

उठावें। इससे लीवर कम हो जायगा, मिट जायगा वगैरह सूचना देके वैद्यराज विदा हो गए।

कमलादेवी और सुन्दरी खूबही चिन्तामग्न रहने लगीं और सेवामें तत्पर वन गईं।

इसी तरह चार दिन वीत गए। चौथे दिन रातको वंकचुल की तवियत एकाएक विगड़ गई। उस समय कमलादेवीने मालवपति को समाचार भेजें। मालवपति घवरा गए। उसी समय राजवैद्यको बुलाने के लिये सेवक रवाना हुआ। राजवैद्य आ गए।

वैद्यराजने नाडी जांच के कहा कि महाराज! रोग भयंकर रूप लेता जाता है। इसके लिये अभी मैं जो दवाई देता हूं उससे अगर आराम नहीं हुआ तो दूसरी विचारूँगा।

प्रातःकाल हो गया, वंकचुल जरा स्वस्थ मालूम होने लगा। मालवपति उस समय राजवैद्यको लेके हाजिर हुए।

कमलादेवी, सुन्दरी और दास-दासियां वंकचुल के आसपास वैठी थीं। राजवैद्यने वंकचुल की नाडी देखी, जरा विचार में पड़ गए। वैद्यराज को विचारमग्न देखके चिन्तातुर वने मालवपतिने पूछा "तवियत कैसी है? जो हो वह कहो!"

महाराज! रोग भयंकर है। औषधि देता हूं मगर उसका अनुपान विषम होता है।

कुछ भी हो वंकचुल के प्राण वचना चाहिए। रोग शान्त होना चाहिए। वोलो वैद्यराज! क्या अनुप्रान है?

महाराज! "कागमांस" इसमें लिया जाय तो सात दिनमें ही काया निरोगी वन सकती है।

वीमारीके विस्तर पर सोते हुए वंकचुल के कान पर ये शब्द पड़े। सुनने के साथही वंकचुल इकदम विस्तर पर वैठ गया।

प्रियतम! प्रियतम! करती कमला वंकचुलको चिपक गई। प्रियतम! क्यों वैठ गए? क्या कुछ चाहिए?

वंकचुलने धीरे स्वरमें कहा मेरे काग मांसकी वाधा है इसलिये अगर मैं अशुद्धिमें रहूं फिर भी काग मांस मुझे नहीं देना। प्राणोंसे भी मेरी प्रतिज्ञा मुझे प्यारी है।

प्रियतम! आपकी इच्छा विरुद्ध हम कुछ भी आपको नहीं देंगे।

दूसरी भी कितनी ही बातें करीं। अंतमें वंकचुल ने कहा कि प्रिये! अव मेरी जिन्दगी का भरोसा नहीं है इसलिये मैं तुम सवको खमाता हूं। मुझे भी सव खमो (माफ करो) इतना वोलते वोलते वंकचुल सो गया। वैठे हुए स्वजन रोने लगे। कमला और सुन्दरी भी जोरशोर से रोने लगीं।

विचक्षण मालवपति समझ गया कि अव वंकचुल नहीं वचेगा। मन्त्रियों के साथ मसलत करके एक संदेशा राजा विमलयश पर मालवपतिने भेज दिया।

दवाई के जोरसे एक महीना निकल गया। अन्त में चतुर्दशी का दिन था, वहाँ तो वंकचुल की व्याधिने ज़ोर पकड़ा। मालवपति आ गए। सवको ऐसा ही लगता था कि चौदस और अमावस निकल जाय तो ठीक।

वैद्यराज ने नाडी देखके औषधि दी। कुछ राहत मालूम हुई। सबको ऐसा लगा कि नुकशान नहीं आवेगा। चिन्ताकी गहरी छायामें सब बैठे थे। सबको ऐसा लगता था कि क्या होगा? कमलादेवी और सुन्दरी प्रभु प्रार्थना द्वारा वंकचुल की शाता प्रार्थ रहीं थीं।

रातके दो बजेका समय था। काली रातने अपना भयंकर रूप जमाया था। वहाँ एकाएक वंकचुल को घबराहट होने लगी (गभरामण वध गई)। नाडी कावू बाहर चलने लगी।

मालवपति तमाम परिवार के साथ बैठे थे। राजवैद्य और नगरी के तमाम वैद्य सेवामें हाजिर थे, वहाँ तो वंकचुल के मुंहसे "नमो अरिहंताणं" शब्द निकल पडा और क्षणमात्र में उसका प्राणपंखेरूं उसके नश्वर देह पिंजरेमें से सदाके लिए उड गया (वंकचुल मर गया)।

वाह रे वंकचुल! जीवन जी के जाना! और मृत्यु धन्य बना दी। धन्य है तेरी आत्मा को।

कमला हृदयफाट रुदन करने लगी। सुंदरी का कल्पांत भी हरेक के दिलको हचमचा देता था। मालवपति भी रोने लगे। राज्य परिवार शोक सागर में डूब गया। उज्जयिनी में सात दिनका शोक जाहिर हुआ।

वंकचुल की श्मशान यात्रा एक राजवी की अदब से निकली। सैना ने सलामी दी।

वंकचुल की मृत्यु के बाद मालवपति ने जैन मन्दिर में धर्म महोत्सव शुरु किया।

जिस दिन वंकचुल की मृत्यु होती है उसी दिन उज्जयिनी से गया दूत ढींपुरी नगरी में पहुंच गया।

पुत्रकी वीमारी का संदेशा सुनके वंकचुल के माता पिता उज्जयिनी आनेको रवाना हो गये ।

इस तरफ उज्जयिनी से एक अश्वारोही को संदेशा देने मालवपतिने ढींपुरी तरफ रवाना किया। मगर रास्ते में ही उसे विमलयश राजा से भेंट हो गई ।

पुत्रके दुखद समाचार सुन कर माता पिता कल्पांत करने लगे । लेकिन कुदरत के आगे किसीका भी चलता नहीं है ।

वंकचुल का अमर आत्मा स्वयं लिये नियमों का पालन करके स्वर्ग सिधा गया ।
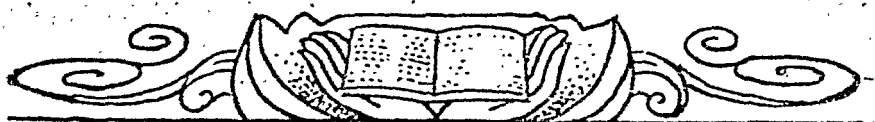
व्याख्यान–बाईसवाँ

अनन्त ज्ञानी तारक जिनेश्वर देव फरमाते हैं कि जीवन में समकित आये विना जीवन गिनती में नहीं आता है।

सूरि पुरंदर पू० हरिभद्र सूरिजी महाराज फरमाते हैं कि लोकविरुद्ध दश कार्यों का त्याग करना चाहिये :

(१) सब की निन्दा करना।

(२) गुणवान पुरुषों की निन्दा करना।

(३) धर्म क्रिया करते न आती हो उन्हें देखके हंसना।

(४) जगतमें पूजनीय हों उनकी निन्दा करना।

(५) नगर विरुद्धिका संसर्ग करना।

(६) धर्म का उल्लंघन करना।

(७) आमदनी की अपेक्षा खर्च अधिक रखना।

(८) दान-शील-तप भाव रूप धर्म पालक के गुण नहीं गाना।

(९) गुणीजन पर आपत्ति आवे तब खुशी होना।

(१०) शक्ति होने पर भी दूसरे को आफत से नहीं बचाना।

ऊपर के लोक निन्द्य कार्य धर्मी पुरुष नहीं करता है। अच्छे काम करते समय लोग निन्दा करें उसकी परवाह नहीं करना।

भद्रिकभाव जिसमें आया है वह प्रथम गुणठाणा को प्राप्त हुआ कहा जा सकता है।

तप करनेवालों की परीक्षा करना कि तपमें शान्ति रखते हैं कि क्रोध करते है? जो क्रोधयुक्त तप करने में आवे तो उसकी कोई कीमत (कदर) नहीं हे।

तप करनेके बाद पारणा में शान्ति रखनी चाहिए। पहले से ही पारणा की चिन्ता करे कि पारणामें ये खाऊंगा, वो खाऊंगा ऐसी इच्छा करनेवालों का तप लेखमें लगता नही है।

ज्ञान-ज्ञानी और ज्ञानके उपकरणों की विराधना का त्याग करना चाहिए और उनकी भक्ति करनी चाहिए।

जूठे मुँह बोलना नहीं, पुस्तक बगल में रखना नहीं पुस्तक को थूंक नहीं लगे उसकी तकेदारी (सावधानी) रखनी चाहिए।

लिखे हुए कागज जेबमें हों तो टट्टी-पेशाब नहीं करना चाहिए; करो तो ज्ञानकी घोर अशातना करी कही जायगी।

आज स्कूलमें शिक्षक मुंहमें पान चबाते जाते हैं और पढाते जाते हैं, सिगरेट भी पीते जाते हैं। ऐसे शिक्षक तुम्हारी संतानको सुसंस्कारी कैसे बना सकते हैं।

लेकिन तुम्हें सुसंस्कारी बनाना ही कहाँ हैं? छोकरा, छोकरी (लड़के-लड़कियाँ) डिग्री पास करें उसीमें तुमको खुशी होती है। सुसंस्कारी बनें कि कुसंस्कारी बनें इसको तुम्हें परवाह ही कहां है? अरे! सु अथवा कु संस्कार किसें कहते हैं इसका भी आज तो भान भूला जा चुका है। अच्छी फेशन और छकटो (कट) पहरवेश यही तुम्हारे मन तो सुसंस्कार है।

वाहरे वाह! धन्य है! मेरे भारतवासियों! ऐसी फेशन से स्वच्छन्दता से मलकने वाले पुरुष–स्त्री क्या भारतमाता की मश्करी नहीं कर रहे?

उद्भट वेशमें फिरनेवाली शिक्षिकायें बालाओं को सुसंस्कारी बना सकती हैं?

भव से भयभीत बने उसे ही भगवान का शरण मिले। भव यानी संसार। संसार के विषयों से जो डरे वही भगवान का भगत।

संसार के विषय भोग के समय बोले तो भी ज्ञाना–वरणीय कर्म का बन्ध होता है।

अपने वस्त्र और गुरु के वस्त्र एक साथ नहीं धोये जा सकते। अगर धोने में आवें तो गुरु की अशातना लगती है।

लिखा हुआ कागज चाहे जहां नहीं डालना चाहिये। जो डाला जाय और पैर से छू जाय:तो भी ज्ञानकी आशातना लगती है। लिखी हुयीं अथवा छपी हुई किताबें पस्ती (रद्दी) में नहीं बेचना चाहिये। लिखे हुये कागज को भींजा हुआ करके फुग्गा बनाके फोडना नहीं चाहिए। जो फोडने में आवें तो ज्ञान की अशातना होती है। दिवाली के समय दारुखाना बनाने वाले को कागज बेचने से पाप लगता है। पुस्तक के ऊपर अथवा अखबार के ऊपर नहीं बैठना चाहिये। पुस्तकको उसीका (तकिया) बनाके नहीं सोना चाहिये।

आगम ग्रंथों को वांचके उनका उलटा अर्थ करने से महाभयंकर विराधना होती है।

जेसलमेर के भन्डारमें रखीं पुस्तकें हजार पन्द्रहसौ

वर्ष पूर्व की लिखीं हुई हैं। उनका रक्षण करनेसे ज्ञानकी भक्ति होती है।

जैनागम लिखना, लिखवाना और कोई लिखाता हो तो द्रव्य देकर के भक्ति करना। उससे ज्ञानकी आराधना होती है।

छपनेवाले सम्यग्ज्ञान में द्रव्यदान देनेसे ज्ञानावरणीय कर्मका नाश होता है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

ज्ञानका वरघोडा काढना, पुस्तकें वहोराना ये भी ज्ञानकी भक्ति है।

पूज्य श्री हेमचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहेबने भगवती सूत्रको पाटणमें वांचा तब कुमारपाल महाराजा रोज सुनने आते थे। जहां जहां प्रश्न आवे वहां वहां कुमारपाल महाराजा खडे होके वन्दन करके एक सुवर्ण मुद्रासे पूजन करते थे। भगवती सूत्रमें छत्तीस हजार प्रश्न आते हैं। प्रत्येक प्रश्न पर ज्ञानका पूजन करके ज्ञानका अमूल्य लाभ कुमारपाल महाराजाने लिया था।

श्री हेमचन्द्राचार्यजी महाराजा सातसौ लहिया (लेखकों) के पास से शास्त्र लिखाते थे। पूज्य श्री हेम-चन्द्रसूरीश्वरजी महाराजाने साढे तीन करोड श्लोकों का नवनिर्माण किया था।

शास्त्र लिखाते लिखाते एक दिन ताडपत्र खूट गये। जिससे चालू कागजों पर लिखाने की शुरुआत की। उस समय गुरुभक्त कुमारपाल महाराजा वंदना करने के लिये आये। वंदन करके लहिया (लेखकों) की तरफ द्रष्टिपात किया।

गुरुदेव के पास आकर पूछने लगे कि हे गुरुदेव! शास्त्रोंको सादा कागज पर क्यों लिखाते हो?

गुरुदेवने कहा राजन्! ताडपत्र खलास हो गये हैं। कुमारपाल महाराजाने कहा कि हे भगवन्! मेरे जैसा राजा आपका भक्त हो फिर भी ताडपत्र न मिलें ये कैसे हो सकता है?

महाराजा आयें राजमहल में। किया उपवास का पच्चक्खाण और बैठे ध्यानमें। जबतक ताडपत्र न मिलें तबतक ध्यान (पूरा) टालना नहीं।

द्रढ संकल्प, द्रढ मनोबल, विशुद्ध भाव यह स्थिति जहां हो वहाँ देव भी नमस्कार करते हैं। ध्यानके बलसे शासन देवी का आसन कंपा। देवी आई राजभवन में। कुमारपाल के सामने आके कहने लगी महाराज! क्या काम है? फरमाओ।

कुमारपाल राजाने देवी से कहा कि: मेरे गुरुदेव प्रयत्न कर के शास्त्र लिख रहे हैं। उस के लिये ताडपत्र चाहिये। देवी बोली राजन्! कल जिस पेड पर आप देखेंगे वहां आप को जितने ताडपत्र चाहिये उतने ताडपत्र मिल जायेंगे।

कुमारपाल राजा प्रसन्न हो गये। दूसरे दिन जब कुमारपाल महाराजाने बगीचा में जाके एक पेड़ पर से ताडपत्र लेने के लिये हाथ लम्बाया कि वहां तो चाहिये थे उनसे भी अधिक ताडपत्रों का ढेर लगाया। राजाकी प्रसन्नता का पार नहीं रहा।

इस कुमारपाल राजा में श्रुतज्ञान की इतनी अधिक भक्ति थी कि उसका वर्णन पूर्वाचार्योंने खूब खूब किया है।

उन्होंने ४५ आगम सुवर्णाक्षरों से लिखाये थे। इक्कीस ज्ञान भंडार वनवाये थे। जैनधर्म का प्रचार उस राजाने खूब किया। उनके जैसे धर्मी राजा मिलना कठिन है।

आम राजा को प्रतिवोध करनेवाले श्री वप्पभट्ट सूरीश्वरजी महाराज रोज एक हजार श्लोक यार करते थे।

चालू युगमें भी पू० श्री आत्मारामजी (विजयानन्द सूरिजी) महाराज साहव तीनसौ श्लोक कंठस्थ कर सकते थे। आज भी तीस से चालीस श्लोक रोज कंठस्थ करने वाले हैं।

अपेक्षा से श्री जिनेश्वर देवकी प्रतिमा वना कर के पूजा करने के लाभ की अपेक्षा भी शास्त्र लिखा के प्रचार करने में अधिक लाभ है। क्यों की भगवान की भक्ति में आनन्द जगानेवाली जिनवाणी है। जिनवाणी के विना भगवानकी भक्ति कौन सिखावेगा?

संसार के मोहरूपी जहर को उतारनेमें जिनवाणी तो रसायन है। अमृत है। पुस्तक के विना पंडिताई नहीं आ सकती है। जो आत्मा सम्यज्ञान के पुस्तकें लिखाते हैं वे दुर्गति को नहीं पाते हैं।

ज्ञान की भक्ति करने से तोतलापन बोवडापन दूर होता है। और वुद्धि हीन वुद्धिवन्त वनते हैं। वर्तमान में श्री जिनेश्वर देव का शासन श्रुत ज्ञान के आधार पर ही चलता है। इसी लिये श्री वीर विजयजी महाराजने पूजा में गाया है कि:

"विषम काल जिन विम्ब जिनागम
भवियणकुं आधारा जिणंदा।"

अज्ञानी को जिन कर्मों को खिपाने के लिये करोडों वर्ष लगते हैं ज्ञानी उनको श्वासोच्छवास में खिपा देता है।

गधा चंदन के भार को ले के जाता हो फिर भी चन्दन की सुगंध को नहीं पा सकता है। उसी तरह क्रियावन्त जो अज्ञानी हो तो क्रिया की सौरभ को नहीं पा सकता है।

अज्ञानी मास क्षमण का पारणा में मास क्षमण कर के जितने कर्म खिपाता है उससे कई गुना कर्म को ज्ञानी सिर्फ नवकारसी के पच्चक्खाण से भी खिपा सकता है।

ज्ञान ये कल्पवृक्ष है। ज्ञानधन एसा है कि उसकी चोर चोरी नहीं कर सकता है। राजा नहीं लूट सकता है।

पांच ज्ञानों में से श्रुतज्ञान स्वपर प्रकाशन होने से तथा दूसरोंको भी दिया जा सकने लायक होने से उसकी कीमत अधिक गिनी जा सकती है।

तीर्थंकर भगवन्त भी श्रुतज्ञान के प्रकाश करने के द्वारा तीर्थंकर नाम कर्म खिपाते हैं।

मूर्ख के आठ लक्षण हैं : (१) निश्चिन्त हो (२) अति भोजन करने वाला हो (३) शरम विना का हो (४) खूब ऊंघने वाला हो (५) नहिं करने योग्य प्रवृत्ति वाला हो (६) मान अपमान को नहीं समझने वाला हो (७) निरोगी काया वाला (८) स्थूल शरीर वाला हो।

(उक्त मूर्ख की संगति नहीं करना। मूर्ख की संगति करने से अपना ज्ञान भी चला जाता है। सप्त व्यसन के त्यागी वने विना जीवन में धर्म नहीं आता है :

(१) जुआ (२) मांस भक्षण (३) मदिरापान (४) वेश्यागमन (५) शिकार (६) चोरी (७) पर स्त्री गमन।

भावश्रावक रातको जगके विचार करे कि मैं कौन? कहां से आया हूं? कहां जाने वाला हूं? मेरा धर्म क्या है? मेरे देव कौन? मेरे गुरु कौन? मुझे इस भवमें क्या करना है? और क्या कर रहा हूं? ऐसे विचार रोज करो तो जीवन सुधरे विना नहीं रहेगा।

मुझमें विद्यमान मिथ्यात्व कब जायगा? और समकित कब आवेगा? ऐसे विचार हर रोज करना चाहिये।

गत भवों में धर्म की आराधना की थी। इस से कल्याणकारी पुन्य बंधा है। उस के प्रताप से यहां सुखी हूं। अब जो धर्म नहीं करू तो नया भाथा परभव के लिये तैयार नहीं हो सकेगा। और गत भवका भाथा तो खलास हो जायगा। इसलिये धर्मकी आराधना में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

कर्म ग्रन्थ में लिखा है कि जो मनुष्य गुरु महाराज की भक्ति करे, क्षमा रखे, शील पाले, और परोपकार करे वह जीव शाता वेदनीय कर्म बांधता है।

गुरु महाराज की निन्दा करने से गुणीजनों की ईर्ष्या करने से और व्रत पालन में ढीलाश करने से अशाता का बन्ध होता है।

चाहिये शाता और काम करना है, अशाता के ऐसे शाता कहां से मिले?

साकर (शक्कर, मिश्री) का पानी तीन प्रहर तक अचित्त इसके पीछे सचित्त बनता है। लविंग, त्रिफला आदि से भी पानी अचित्त बनता है।

तामली तापस संसारी अवस्था में सुखी था। पुत्रादि

परिवार खूब थे। इस लिये विचार करने लगा कि मैंने परभव में अच्छे काम खूब किये। इस से मैं सुखी हूं। तो इस भव में भी अच्छे काम करना चाहिये। एसे विचार रोज करता था। अन्तमें उसके दिल में संसार त्याग की भावना जगी। अपनी पूरी नात (जाति) को जिमाया घर के व्यापारादि वगैरह वड़े पुत्रको सोंपे और खुद तापसी दीक्षा ले ली। उसने दीक्षा लेने के बाद मासखमण के पारणा में मासखमण किया। पारणा में शुष्क भोजन दिया। दिवस में सूर्य के सामने द्रष्टि लगाई, हाथ ऊंचे किये, सूर्य की आतापना ली। एसी घोर तपश्चर्या करने पर भी वह समकित प्राप्त नहीं कर सका।

फिर भी आखिर में समकित प्राप्त कर के मोक्ष में जायगा।

तामली तापस अपने धर्म की ऊँचे में ऊँची आराधना करने लगा। फिर भी उस समय वह समकिती नहीं था। परन्तु समकित पाने की योग्यतावाळा था। मास क्षमण के पारणा में वह काष्ट पात्र लेकर के नगरी में से रस कस विना का भोजन लाता था। उस भोजन को इकीस वार धोता था। और फिर वह धोया हुआ भोजन खाता था। और ऊपर से मासक्षमण करता था।

तुम दानवीर वनो। दान दोगे तो परभव में लक्ष्मी मिलेगी। गुणी जनों के गुणगान गावो पर निन्दा नहीं करे। षड दर्शन को समझने वाले वनो धर्म की आराधना में तल्लीन वनो। लोकोत्तर गुणों को पाके गुण स्वामी वनो।

जिसके शरीर में मांस नहीं, खून नहीं, सूखी हड्डीयां

ही दिखाती हैं। जब तक जीवन में एसा तपनहीं आवे तबतक आत्म श्रय नहीं हो सकता है।

अपने जीवन की भूलों को देखने वाले कल्याण मित्र तो आज शोधे भी नहीं जडते। केवल-ज्ञानी की हाजिरी में केवल ज्ञान सिवाय दूसरा कोई प्रायश्चित नहीं दे एसी शास्त्राज्ञा है।

अवधिज्ञानी अथवा मनः पर्यय ज्ञानी हो तो श्रुत-ज्ञानी प्रायश्चित नहीं दे सकता है। तीनकाल की सर्व-बात जाने वे केवली परमात्मा कहलाते हैं।

जिसको यहलोक ही दिखाते है। और परभवको मानता ही नहीं है उसे परमात्मा भी नहीं सुधार सकते।

कच्चे कान वाला, दिल में शुद्ध बुद्ध विनाका, और छीछरा हृदय वाले के पास से प्रायश्चित न लिया जाय।

बहुत से गरीब भी एसे हैं जो जीवन में तुमसे भी कम पाप करते होंगे। अनीति भी कम करते होंगे।

कहा है कि "सोना कसके लेना मनुष्य वसके लेना" फिर भी वसके लिये गये मनुष्य भी खराब निकलते हैं।

महाराजा दशरथ, श्री रामचन्द्रजी और सीताजी आदि महापुरूषों के जीवन का वर्णन करते करते कलि-काल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा के रोमांच खड़े हो गये थे।

इन महापुरूषों का जीवन कितना उत्तम होगा? काम लोभ में बैठे होने पर भी उन्हें ये अच्छा नहीं मानते थे।

बम्बई जानेवाले सभी सुखी होने की इच्छा से ही

जाते हैं। फिरभी वहां गरीव रहते हैं और तवंगर (धनी) भी रहते हैं। सुख कहीं वाजार में वेचाता नहीं मिलता।

दुनिया में स्वार्थ की मायाजाल वहुत ही विचित्र है। उसके ऊपर एक वोधप्रद कथानक आता है :—

एक वूड़े वापको एक का एक ही पुत्र था।

इस लड़के पर वाप को उसकी मां को और उसकी स्त्री को वहुत प्रेम था। इस छोकरे का थोड़ी देर के लिये भी वियोग कोई सहन नहीं कर सकता था।

एक वार एसा वनाकि यह लडका किसी महात्मा के परिचय में आ गया। इस महात्मा के परिचय के योग से इस लड़के के हृदय में मानव जीवन के सादा आदर्श को सिद्ध करने वाले एसे उच्च जीवन को जीनेकी इच्छा पैदा हुई। इस लड़के ने अपनी ये इच्छा महात्माजी को कही। और कहा कि मैं मेरे माता पिता आदि की संमति लेलेता हूं।

महात्माने कहा कि जैसी तेरी मरझी। विवेक को छोड़ना नहीं। और जो वने वह मुझसे कह देना।

लड़का घर आया। उसके हृदय में जो आदर्श की उस लड़के ने अपने माता पिता आदि से वात कि। इसके साथ उसने यह भी कहा कि अव मेरा मन संसार में नहीं लगता।

इस लड़के ने पूरी वात करीं न करी वहां तो उसके माता पिता ने आक्रन्द करना शुरू किया। वेटा ! वेटा ! तुजे एसा विचार कहां से आया।

तू चला जाय और हम जी सके एसा बन नहीं सकता। हमको विना मौत मार डालना हो तो तू जा। तेरे जीवन में ही हमारा जीवन है।

इस लड़के की स्त्रीने भी कहां कि हे नाथ! तुम्हारे विना मैं किसी भी तरह जी नहीं सकु एसा नहीं है। एसी सब बातें सुनकर के इस लड़के का निर्णय ढीला पड़ गया। उसने महात्मा के पास जाकरके बातकी कि मेरे माता पिता आदि इस प्रकार कहते हैं।

महात्मा से उसने कहा कि मेरे विना मेरे माता पिता आदि नहीं जी सकते हैं। एसा उन सबका प्रेम मेरे ऊपर है।

महात्मा को लगा कि इस लड़के को इस बात का भ्रम है किन्तु उपदेश देने मात्र से उस का भ्रम दूर नहीं हो सकता।

इससे महात्मा ने लड़के से कहा कि तेरे ऊपर तेरे मां बाप तेरी स्त्री आदि का अगाध प्रेम हे एसा तू कहता है तो मुझे ना कहने की जरूरत नहीं है।

लेकिन तुझे उनकी परीक्षा करके फिर सच मानना चाहिये। लड़के ने कहां आप जैसा कहें वैसा करूं।

महात्माने कहा कि तू यहां से सीधा तेरे घर जा। घर जाके तू इकदम जमीन ऊपर कृत्रिम (बनावटी) मूर्च्छा-वन्त बनके गिर जाना।

थोड़ी देर के बाद राडपाड़के (चिल्ला चिल्ला के) कहना कि मेरे पेट में बहुत वेदना हो रही है। मेरे से ये वेदना किसी भी तरह सहन नहीं हो सकती है। तेरे मां बाप वैद्य को बुलावेंगे। तेरा दुखावा दूर करने

के लिये दवाईयां देंगे । इस समय तू दवायें तो लेना लेकिन मेरे पेट में भारी वेदना हो रही है एसा चिल्लाना तो चालू ही रखना ।

फिर मैं तेरे घर आऊंगा । फिर बाकी का सब मैं सम्हाल लूंगा । फिर ये लड़का घर गया । और घर जाके महात्मा की सूचनानुसार ये सब नाटक किया ।

पूरे घर में हाहाकार मच गया । इसके मां बाप स्त्री पड़ोसी और सगे स्नेही सब इकठे हो गये ।

उपरा ऊपरी (तरके ऊपर) वैद्यों को बुलाया । और दवाइयों के ऊपर दवाइयां देना शुरू हो गई । लेकिन दुखावा की बूम (चिल्लाना) बन्द नहीं हुआ ।

सब दुखी दुखी निराश और चिन्तातुर हुए । सबको एसा लगा कि अब यह बचेगा नहीं ।

लेकिन क्या हो सकता था ? इतने में वे महात्मा भी वहां आपहुंचे ।

महात्माने पूछा कि क्या है ? तब जो थी वह हकीकतें सबने कह दी । और यह भी कहा कि आप महात्मा हैं आप तो बहुत जानते हैं इसको बचाने का कोई उपाय आप जानते हो तो करें ।

इसलिये महात्माने कहा कि इसे बचाने का उपाय तो है । लेकिन वह उपाय तुम कर सकोगे कि नहिं उसकी शंका है ?

सबने कहा कि ये आप क्या बोले ? लड़के को बचाने के लिये जो कुछ भी करना पड़े वह सब करने के लिये हम तैयार हैं । ये घरबार वगैरह सब कुछ दे देना पडता

हो तो वैसा करने को भी हम तैयार हैं। और अगर हमारी जिन्दगी देना पडे तो जिन्दगी देनेको भी हम तैयार हैं। इसलिये जो उपाय हो वह हमसे कहो।

महात्मा स्मित करके बोले कि बहुत अच्छी बात है। मैं उपाय करता हूं। तुम एक प्याला पानीका भर लाओ।

वे पानीसे भरा प्याला ले आये। इसके बाद कुछ मन्त्र बोलते हों एसा महात्मा ने देखाव (ढोंग) किया। थोड़ी देरके बाद उन सबको उद्देश्यकर के कहा कि देखो इस प्याले में का पानी तुम्हारे में से किसी एक को पी लेना है। परन्तु पीनेवाला मर जायगा और लड़का बच जायगा।

वह लडका तो दुखावाकी बूम पाडता ही था यानी चिल्ला रहा था कि मरे मरे पेट खूब दुःख रहा है। क्या बन रहा है? यह सब वह देखा करता था और सुन रहा था।

महात्मा के हाथमें का प्याला लेने के लिये कोई भी अपना हाथ लम्बा नहीं कर रहा था। लडके का बाप लडका की माँके सामने देखने लगा। और लडके की माँ लडके की बहू के सामने देखने लगी। और लडके की बहू (पत्नी) मुँह नीचाकर के जमीन खोदने लगी। इस तरह सभी एक दूसरे की तरफ देखने लगे। लेकिन उनमें से कोई भी महात्मा के हाथमें के प्याला के पानी को पीने के लिये तैयार नहीं हो रहा था।

महात्माने फिरसे पूछा कि यह प्याला कोई पियेगा?

किसीने कुछ भी जवाब नहीं दिया। और लाचारी दिखाने के लिये सब नीचे ही देखने लगे ।

थोडी देर के बाद महात्माने कहा कि खैर। तुममें से तो कोई भी इसको जिलाने के लिये तैयार हो एसा लगता नहीं है। तो फिर यह प्याला मैं ही पी लेता हूं।

सब इकदम हर्ष के आवेशमें आ गये। और धन्य है एसे परोपकारी महात्मा को एसा कहने लगे।

महात्मा पानी पी गये और घर के बाहर निकल गये।

वह लडका भी खडा हो गया। और किसी से कुछ भी कहे बिना उन महात्मा के पीछे पीछे चला गया। क्योंकि उसे जो भ्रमणा थी वह खत्म हो गई।

लडके को इस तरह महात्मा के पीछे जाता देखकर इस लडके के माँ-बाप वगैरह उसके पीछे दौडे। और कहने लगे कि हम्हें छोड के कहां जाता है? हमारे हृदय में तेरे लिये कितनी लागणी (प्रेम) है उसका विचार कर।

लडका बोला कि मेरे सच्चे स्नेही तो ये महात्मा ही हैं। उन्होंने मुझे जिन्दा किया है इस लिये अब तो मै इनका ही हूं। और एसा कहके वह लड़का पीछे फिरके देखने को भी नहीं खड़ा रहा।

समझदार मनुष्य मरते समय तक संसार में नहीं रहे। पुत्र घर बार को सम्हालने वाला तैयार हो जाय तो घर का बोझा उसे सौंप देना चाहिये।

मृत्यु के समय कोई मनुष्य लम्बी बीमारी को भोगके मरे तो घर वाले कहेंगे कि मरा लेकिन सबकी सेवा लेके मरा। बिमार हो इसलिये थोड़ा खर्च भी हो।

तब घरके सभ्य कहेंगे कि खर्च कराके गया। लेकिन ये विचार नहीं करेंगे कि ये मुझे हजारों की मिलकत देके गया। तो इसमें से थोड़ा सा खर्च हुआ तो क्या बिगड़ गया।

बाल्यकाल में कोई दीक्षा ले तब दुनिया कहती है कि समझ बिना दीक्षा लेना ठीक नहीं है। युवान होने के बाद लग्न करके दीक्षा लेतो लोग कहेंगे कि दीक्षा लेनी थी तो लग्न ही क्यों किया ? दो चार लड़के होने के बाद दीक्षा ले तो लोग कहेंगे कि भरण पोषण करने की शक्ति नहीं इसलिये दीक्षा लेने निकल पड़ा है।

वृद्ध होने के बाद दीक्षा लेतो लोग कहेंगे कि देखा! घर में कुछ कामका नहीं इसीलिये साधु हो के चला। वहां जाके क्या करेगा ? पानी के घडा उपाड़ेगा।

महानुभाव ! साधुपने में पानी लाने में भी कर्म की निर्जरा होती है।

साधुपनाकी प्रत्येक क्रिया निर्जरा करने वाली है।

भूतकाल में क्षत्रिय लग्न करने के लिये स्वयं नहीं जाते थे। किन्तु अपनी तलवार भेजते थे। तब स्त्री समझती थी कि इनने तलवार के साथ पहले लग्न किया है। अब दूसरीवार मेरे साथ लग्न करते हैं। अर्थात ये पहले तलवार को साचवेंगे फिर मुझे साचवेंगे यानी पहले रक्षा करेगें।

धर्मी मनुष्य लग्न के समय तय करे कि वैराग्य नहीं जगे वहां तक संसार चलाना है। वैराग्य जगे कि लग्न खतम (त्याग)

जिन तीर्थंकर परमात्माओं ने तीर्थ की स्थापना करी उनने अपने जीवन में पूर्ण धर्म उतरा था।

जिसे अपनी आत्मा की चिन्ता नहीं है। वह विचारा दूसरों की क्या दया खायगा ?

जिसका पुन्य तेज होता है। उसको जंगल में भी मंगल हो जाता है। और पुन्य जिसका खतम हो गया हो उसे शहर भी जंगल समान वन जाता है। उग्र पुन्य और पाप का फल इस भव में ही मिल जाता है।

धर्म से आपत्ति जाय। दुश्मन मित्र बने। रोग जाय। शोक जाय। तमाम दुखों को दूर करने की ताकत धर्म में है।

"नमो अरिहन्ताणं" इस एक पदको शिखाने वाले का भी उपकार मानना चाहिये।

पुन्यानुवन्धी पुन्य संसार में फंसाता नहीं है। और पापानुवन्धी पुन्य संसार में फंसाये विना नहीं रहे।

मनको निर्मल बनाने के लिये धर्म क्रिया आवश्यक है। इस लिये मनको अशुद्धि में से बचाने के लिये धर्म किया करना।

गर्भ में जैसा आत्मा हो वैसे विचार उस बालक की माताको आते हैं।

जो गर्भ में बालक पुन्यशाली हो तो अच्छे विचार आते हैं। और जो पुन्य हीन हो तो खराब विचार आते हैं।

जब श्रेणिक महाराजा मिथ्यात्वी थे तब उनको शिकार का बहुत शौख था। एक समय शिकार करने को निकले तब आयु का बन्ध होने से नरक में जाना पड़ा।

अदीन पने से मांगे उसका नाम भिक्षुक। दीन पने

से मांगे उसका नाम भिखारी। दे उसका भला न दे उसका भी भला ऐसे विचार वाला जो हो वह साधु।

भिक्षुक को व्यवहार दृष्टि से देना चाहिये। भिखारी को अनुकम्पा बुद्धि से देना चाहिये। और साधु को भक्ति की दृष्टि से देना चाहिये।

सामायिक में संसार की बातें नहीं होना चाहिये। बातें करने वालेको सामायिक का दोष लगता है।

धर्मको आराधना सत्वशाली कर सकता है। सत्व विनाका मनुष्य धर्म को आराधना नहीं कर सकता है।

व्याधि-विरोधी और विराधक का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये व्याधि उदयमें कब आवेगी यह अपन को निश्चित नहीं है।

बहुत धन होने पर भी दान देनेका मन न हो तो उसका कारण दानान्तराय कर्म है। सीधे पांसे भी उलटे पडे उसका नाम लाभान्तराय। सामग्री होने पर भी सुख न भोग सके उसका नाम भोगान्तराय और उपभोगान्तराय। शक्ति होने पर भी धर्म क्रियामें प्रमाद करे उसका नाम वीर्यान्तराय।

कच्चे पुन्यवालों को मिला हुआ सुख टिकता नहीं है। भाग्य में हो तभी सुख मिलता है। भाग्य में न हो तो सुख नहीं मिलता है।

प्रेम नहीं करने लायक वस्तु ऊपर प्रेम हो तव समझ लेना कि राग मोहनीय सताती है। राग मोहनीय का प्रबल उदय हो तव संसार ऊपर राग होता है। संसार दुःखमय है। इसलिये चेतके चलो। संसार में

कर्म दंडा (डंडा) मारता है इसलिये संसार दंडक कहलाता है ।

जगत के जीवों को जितना भय मरण का है उतना संसार का भय नहीं है।

भगवान महावीरने देशना में कहा है कि जो मनुष्य लब्धि (शक्ति) से अष्टापद तीर्थ की यात्रा करता है । वह नियमा इस भवमें ही मोक्षमें जाता है । यह बात सुनके गौतम महाराजा अष्टापद तीर्थकी यात्रा को गये थे । पीछे फिरते थे तब पन्द्रहसौ तापसों को दिक्षा दी थी ।

पन्द्रहसौ तापस अष्टापद ऊपर नहीं चढ सकने से उपवास पर बैठे थे । पन्द्रसौ को पारणा कराने के लिये एक पात्रामें थोडीसी खीर वहोर के ले आये । सब विचार करने लगे कि इतनी खीरसे क्या होगा ?

गौतम स्वामीने पात्रामें अपना अंगूठा रखा । खीर परोसना शुरू किया । खीर ज्यों ज्यों पिरसाती गई त्यों त्यों बढती गई । इस तरह से पन्द्रहसौ को पारणा करा दिया । तेओश्री में क्षीराश्रवकी लब्धि होनेसे क्षीर घटी ही नहीं ।

पांचसौ को तो पारणा कराते ही केवलज्ञान हो गया । पांचसौ को प्रभुका समव शरण देखते ही केवलज्ञान हो गया । और पांचसौ को वहां पहुंचते ही केवलज्ञान हो गया । इस तरह सभी पन्द्रहसौ तापस कवली बन गये ।

पर्षदा में वे केवलीं की सभा में बैठने गये । तब गौतम स्वामी बोले कि अपनसे नहीं बैठाय । तब भगवान

श्री महावीर परमात्मा कहने लगे कि हे गौतम ! तू केवली की आशातना न कर ।

क्या सभी केवली बन गये ? गौतम ! तू जिसे दीक्षा देता है वह केवली बन जाता है । परन्तु तुझे मेरे प्रति अति राग होने से तुझे केवल नहीं होता है ।

साहब ! मुझे कब होगा ? तुझे भी होगा । चिन्ता न कर ।

भगवान श्री महावीर देव जब जब गौतम और तू कह के गौतम स्वामी को बुलाते थे तब तब गौतम स्वामी प्रसन्नता अनुभवते और आनन्द पाते थे ।

आज तुमको "तू" शब्द अधिक अच्छा लगता है कि "तुम" शब्द अधिक अच्छा लगता है । अथवा "आप" शब्द अधिक अच्छा लगता है ।

गुरु महाराज तुम्हें मान देके बुलावें थे सबसे अधिक अच्छा लगता है न ?

मान लेने की योग्यता प्राप्त किये बिना मान लेने की इच्छा करना क्या वह योग्य है ?

सुपुत्र रोज सुबह माता-पिता के पैरों में पड के आशीर्वाद मांगे । वडीलों के (बडोंके) पैरों में गिरना (झुकना) ये आर्यावर्त का नियम है ।

मुनि आहार संज्ञाके विजेता होते हैं । आहार करनें पर भी उसमें उनको रस नहीं होता । एसा भी बने । उसमें आसक्त बनना ये पाप है । पापका फल दुर्गति है । पाप किये बिना जीवन जी सको एसा सामर्थ्य दृढ बनाओ ।

सभी को जैनशासन का अनुरागी बनाऊं। सभी को मोक्षमें भेजु। एसी भावना करने से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है।

मोहका विनाश करने के लिये साधु बनना है। एसा साधुपना प्राप्त करके भी जो आत्मा मोहको पंपालता है वह बिचारा पामर है।

कमनसीबी है कि जिसे साधुपना की कदर नहीं है एसे आत्मा की जगतमें कदर कौन करनेवाला है? हाथमें रखे हुये रजोहरण की कीमत जो साधु नहीं समझे तो वैसे साधुओंकी कीमत भी कौन करेगा? स्वयं अविनी तरह के दूसरों को विनीत बनाने की आशा रखना व्यर्थ है।

स्व जीवन को सुन्दर बना के आत्म श्रेयमें आगे बढो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–तेईसवाँ

अनंतज्ञानी तारक जिनेश्वर देवों के शासन में नवकार मन्त्र जैसा कोई मन्त्र नहीं है। आधि, व्याधि और उपाधि रूप त्रितापको दूर करनेवाला नवकार मन्त्र ही है।

आज तुम्हें मन्त्रों पर श्रद्धा है लेकिन नवकार ऊपर श्रद्धा नहीं है। इसलिये तुम साधु के पास जाकर कहते हो कि साहब ! ऐसा मन्त्र दो कि बेडा पार हो जाय। लेकिन ये विचार नहीं आता कि मन्त्र शिरोमणि नवकार मन्त्र जिसके पास हो उसे दूसरे मन्त्रों की जरूर ही नहीं रहती है। जिसका साथी नवकार है उसका अहित कोई नहीं कर सकता है।

नवकार मेरा है और मैं नवकार का हूं ऐसे भाव आये विना नवकार लाभ नहीं कर सकता है।

अमरकुमार को नवकार ऊपर अडोल श्रद्धा होने से ही वह बच गया।

"मन्त्रमां मन्त्र शिरोमणि
जपीये नित्य नवकार।
चौद पूर्वनो सार छे
महिमा अपरम्पार ॥

नवकार मन्त्र की महिमा गाती अमरकुमार की यह कथा प्रेरक है :—

श्रेणिक महाराजा एक सुन्दर चित्रशाला बंधवा रहे थे। सब अच्छी तरह से तैयार हो गया। लेकिन मुख्य दरवाजा दो दो बार बनवाया। फिर भी गिर गया।

जोशी (ज्योतिषी) कहने लगा कि बत्तीस लक्षण पुरुष का भोग मांगता है। राजाने ढंढेरा पिटवा दिया। जो कोई बत्तीस लक्षणा को भोगके लिये अर्पण करेगा उसे राजाकी तरफ से भारी रकम मिलेगी। उसके बराबर सोना मिलेगा। एक गरीब ब्राह्मण और उसकी स्त्री दोनो पैसा के लोभमें अपने छोटे लडके अमरकुमार को देने के लिये तैयार हो गये। राजाकी तरफ से भारोभार (पुत्रकी बराबरी) का सोना देने का पलान था।

बिचारे अमरकुमारने कितनी ही आजीनी की (दया मांगी) खूब रोया। लेकिन पत्थर दिल माँ-बाप नहीं पिगले। राजसेवक अमरकुमारको ले गये।

होम हवन हो रहा था। ब्राह्मण बडे स्वरसे मन्त्र बोल रहे थे। श्रेणिक राजा वहां विराजे थे। पूरा गाँव देखने को उमट पडा था।

यज्ञकी प्रचंड ज्वालायें देखके कंप रहे अमरकुमार को अचानक एक जैन मुनिके द्वारा सिखाया गया नवकार मन्त्र याद आ गया। खूब ही भक्ति भावसे इसने मन्त्र का जाप शुरू किया। और यह क्या? चमत्कार हो गया।

थोडी देरमें ही अमरको उठा के यज्ञकी भभकती ज्वालाओं में डाल देने का था। बिचारा जलके भस्म हो जायगा। इस विचारसे देखनेवाले सभी की आँखें भीनी हो गई 'थी' यानी सभी रो रहे थे। लेकिन क्या हो

सकता था ? सत्ताके आगे शाणपण (होशियारी) नहीं चलता है।

सतत एक धारा अविच्छिन्नपने एकाग्रपने से अमर कुमार के द्वारा गिने गये नवकार मंत्र के प्रभाव से जब्बर चमत्कार हो गया। हवन की ज्वालाओंमें से एक सुवर्ण का सिंहासन प्रगट हुआ। और उसके ऊपर बैठा हुआ अमर कुमार दिखाई दिया।

ब्राह्मण ढल गये। राजा आसन ऊपर से उथल पड़ा। सब बेभान हो गये।

अमरकुमारने पानी मंत्र के सब पर छांटा। सब जागृत हुये। दैवी प्रभाव देख के राजाने क्षमा मांगी। और राज्यपाट देने को विनती की।

"राज्य रुद्धि सघली ग्रहो
विनवे श्रेणिक राय।
जान बचाव्यां सर्वना
मुजथी केम भुलाय ॥

अमर को राज्यपाट की कहां गरज थी। इसके पास तो मन्त्र रूपी चिन्तामणी आ गया था। स्वार्थी संसार के ऊपर उसे अणगमा (तिरस्कार) उत्पन्न हुआ। दीक्षा लेके घोर भयानक ओर एकान्त पसे स्थान में जाके आत्म-ध्यान घरने बैठ गयें।

उस तरफ उसकी माँको खबर हुई कि अमर जिन्दा है। इसलिये ये मधरात यानी आधीरात में छुरा लेके आई और इस गोझारी (हत्यारी) माताने बाल साधु की गरदन पर छुरी फेर दी। देह की मृत्यु हुई लेकिन आत्मा

तो अमर ही रहा। अमरकुमार समताभावसे कालधर्म पाके (मरके) देवलोक में गये।

मुनि हत्या करी पापणीए
निज घर दौडी जाय।
वाघण त्यां वच्चे मली
एने फाडी खाय ॥

अमरकुमार की माता अमरकुमार की गरदन ऊपर छुरी फेर के मन में मलकाती हुई घर तरफ पीछे फिर रही थी। वहीं उसका पाप भरा गया। और तीन दिन भूखी वाघनने फालमार के (कूदके) नीचे पटकी उसको फाडके खा लिया। घोर पापकर्म उपार्ज के वह छठ्ठी नरक में गई।

दृढ प्रहारी तद्भव मोक्षगामी होने पर भी जीवन में महापाप किया था। उस समय का जगत उनको कहता था कि ये महा पापी है। लेकिन इसकी उसको परवाह नहीं थी। पुन्योदय जगा। किये पाप का पश्चाताप हुआ। दीक्षा लेके कल्याण साधा।

लोग कुछ भी वकें उस पर ध्यान नहीं देना। अपनी आत्म शुद्धि की उपेक्षा नहीं करना। क्योंकि गाँव के मुख पर गणणा (गलना-पानी-गालने का वस्त्र) नहीं वांधा जा सकता है।

एक मुनिवर के ऊपर एक स्त्रीने आरोप (गुन्हा) लगाया। तभी से वे मुनि झांझरिया मुनि तरीके प्रसिद्ध बनें।

तप-जप और समता में लीन वने वे महात्मा अपने कर्म के दोष काढने लगे। अन्य के शेष के प्रति दृष्टिपात भी नहीं किया। दीक्षा लेनेके वाद एसा समझे कि अव

हमें कुछ भी करना बाकी नहीं रहता है। एसा मानने वाले साधु श्रावक से भी खराब हैं।

संसार के सगों के प्रति मोह जीव को राग मोहनीय बांधता है।

अप्रशस्त राग में बैठे मनुष्य को जिनवाणी से लाभ होता है।

वसंतऋतु विलस रही थी। राजकुमार मदन ब्रह्म अपनी बत्तीस पत्नियों के साथ उद्यान में वसन्तोत्सव उजव रहे थे यानी मना रहे थे।

इतने में तो इस राजकुमारकी नजर उद्यान के कोने में बैठे ध्यानमग्न त्यागी मुनि पर पड़ी। नम्रतापूर्वक इसने मुनि को वन्दन किया।

मुनि की वाणी राजकुमार को अमृत सम लगी। मुनि के शब्दोंने राजकुमार के आत्मा को जागृत किया। जाग गये आत्माने संसार को असार समझ के त्याग दिया।

युवान साधु मदनब्रह्म एकदिन दोपहर को गोचरी के लिये गये।

बारह बारह वर्ष से परदेश गये पति के विरह में झूरती हुई एक सुन्दर युवती इन मुनि के भव्य मुख दर्शन से मुग्ध बन गई।

दासी इन मुनि को घर लाई। मुनिने धर्मलाभ की आशीष दी।

इस स्त्रीने मुनि से संसार के भोग विलास में पीछे आके अपने संग में आनन्द-प्रमोद करने की खूब आजीजी (प्रार्थना) की।

लेकिन मुनिवर स्थिर रहे। धर्म लाभ कहके चलने लगे। इसलिये इस स्त्री को धका लगा। और वह सोचने लगी कि ये मुनि मेरे चरित्र के विषय में किसी को कह देंगे। तो मैं बदनाम हो जाऊंगी। इसलिये जैसे ही उसने मुनि के पैर में झांझर बाँधदी। और खोटा खोटा करके यानी ढोंग करके रोने लगी कि इस साधुने मेरा शील खंडित किया है। इसे पकड़ो। पकड़ो। तमाशा को तेडा कैसा? लोग इकट्ठे हो गये। साधुका तिरस्कार करने लगे। और कितने ही लोग तो इन निर्दोष मुनिको हैरान करने लगे।

"काम वश थई आंधली
वलगी पड़ी तेणी वार
पाड्या पगनी आंटी थी
वलग्यु झांझर त्यांय॥

इस स्त्री का एसा दुष्ट वर्तन तथा लोगों की सताभणी होने पर भी इन मुनिवर का मन शांत था। समभाव भरा था।

जब लोगों का टोला बहुत उश्केराट में आने लगा तब सामने ही राजमहल में रहते हुए राजा बाहर आये। और लोगों को रोका। क्योंकि उनने महल की खिड़की से खड़े खड़े इस स्त्री का चरित्र और मुनिका निर्दोषपना देखा था। सच्ची बात की खबर होने पर लोग मुनिसे क्षमा मांगने लगे। और उस युवती को धिक्कारने लगे।

इस प्रसंग की एक छाप तो रह गई। और ये मुनि झांझरीयां मुनि तरीके प्रसिद्ध हुये।

और फिर से इन मुनि की समता की कठिन कसौटी एक दिन हुई।

कंचनपुर नगर में दोपहर को यही मुनि गोचरी को निकले। राजारानी शतरंज खेल रहे थे। अचानक रानी की दृष्टि इन मुनि पर पड़ी। ये रानी पन मुनि की वहन थी।

अपने भाई की तप से तपी और कृश वनी काया को देखके इसकी आंखों में से आंसू आ गये। राजा यह देख रहा था। उसे शंका हुई। इस साधु को देखकर रानी रोई क्यों? जरूर यह इसका प्रेमी होना चाहिये। इस शंका ने इसे विह्वल वना दिया। वह खेल वन्द करके उठ गया। सेवकों को आज्ञा दी कि उस पाखंडी साधुको पकड़के खाड़ा में उतार के शिरच्छेद करो।

सेवकों ने आज्ञा के अनुसार किया। मुनियो मार डाला। खुन का खावोचिया (गड्डा) भर गया।

लोही (खुन) से लथ पथ मुहपत्ती और ओघा को मांस पिंड मानके एक समली उठाके उड़ी।

लेकिन यह खाने की वस्तु नहीं है यों समजके फेंक दिये। और वे भी राजमहल के वरावर चौक में ही गिरे।

रानी ने जव देखा तव इसे सक्त आघात लगा। उसे खात्री हुई कि किसी दुष्ट मनुष्य ने मेरे भाई को मार डाला है।

रानी के आक्रन्द से राजा दौड़ आया। रानी ने कहा कि यही ओंघा मैंने मेरे भाई को वहोराया था।

राजा को अव समझ में आयाकि जिस मुनिको मार

डाला था वह तो रानी का भाई था। फिर तो उसे खूब पछतावा हुआ। और पश्चाताप सच्चे दिल से होने से उसका उद्धार होते देर नहीं लगी।

उपसर्ग दो प्रकार के हैं:—

(१) अनुकूल उपसर्ग (२) प्रतिकूल उपसर्ग।

प्रतिकूल उपसर्ग में स्थिर रहना सरल है किन्तु अनुकूल उपसर्ग में स्थिर रहना सरल नहीं है।

मनुष्य शायद सर्वत्याग करके साधु न हो सके।

अरे। बारहव्रत भी न ले सके परन्तु न्यायनीतिका पालन न कर सके एसा नहीं हो सकता है।

वर्तमान में सत्ताधीश अन्याय के सिंहासन ऊपर बैठके न्याय की बात करते हैं। लेकिन हाथी को हराडा कौन कहें?

किसी को भी जैसा वैसा बोलने के पहले खुब विचार करो। बोलने की पीछे ये शब्द भवान्तर में भी आडे आते हैं।

किसी के ऊपर खोटा आक्षेप (आरोप) करते अपने को देर नहीं लगतीं। लेकिन जब उसका नतीजा आयेगा तो भारी पड़ेगा।

मास क्षमण के तपस्वी मुनि मेतारज राजगृही में भिक्षा के लिये निकले। एक सोनी के आंगण में आके उनने धर्म-लाभ दिया। खुब ही विनय पूर्वक इस सुनार ने मुनि को वंदन किया। फिर वहोराने की वस्तु लेने के लिये घर में गया। घर में से मोदक लाके भावपूर्वक वहोराये। मुनिवर आशीष देके विदा हुए।

वह सोनी जब मोदक लेने को घर में गया था तब

एक घटना बन गइ थी। महाराज जब पधारे थे तब सोनी सोने के जवला वहीं के वहीं (मनका) घड़ रहा था। मुनि को आया जानकर के जवला वहीं के वहीं पटक के घर में गया था। जैसे ही वह रसोई घर में गया कि उसी समय पेड़ पर बैठे पक्षी ने जवला को खाने की वस्तु समझके वहां आके जवला चुग गया।

मुनिके जाने बाद सुनार काम पर बैठा तो जवला (मनका) नहीं मिला। इससे उसने विचारा कि जवला कोई चुरा गया है। लेकिन साधु के सिवाय दूसरा कोई घर में नहीं आया है।

कंचन कामिनी के त्यागी साधु चोरी कर ही नहीं सकते हैं। तब फिर जवला गया कहां?

जरूर साधु के वेशमें शैतान होना चाहिये। ऐसा विचार के वह साधु के पीछे दौड़ा।

महाराज! आपका जरा काम है। ऐसा कहकें साधु को फिर पीछे बुला लाया। मेतारज मुनि समझ गये। क्योंकि उनने पक्षी को सोने का जव चुगते देखा था।

सच्ची बात कहें तो पक्षी को सुनार मार डाले अथवा मरा डाले। इसलिये मौन रहे।

सुनारने पहले तो मुनिवर को समझाया। पीछे धम-काया। फिर भी मुनि मौन रहे।

मुनिका मौन देख के सुनार क्रोध में चढ गया। इसने चमड़े के टुकडे को पानी में भिगों के मुनि के माथापर (सिरपर) कचकचा के बांध दिया।

दोपहर का समय था। वैशाख का प्रखर तडका और एक महीनाके मुनि उपवासी। चमड़ा सुखाता गया त्यों त्यों मुनिके मस्तक की नसें टूटने लगीं।

फिर आँखके डोला (आँख) बाहर निकल आयें। और फिर पूरा शरीर टूट गया। फिर भी मुनिको सुनार के प्रति जरा भी द्वेष नहीं होता है। अपने ही किसी कर्म का दोष जानके समता रस में डूब गये। काया ढल गई और प्राण पंखी मुक्ति के आकाश में उड गया यानी (मर गये)।

धन्य है एसे महा मुनि मेतारज को।

अन्त में एक भारावालोने लकड़ियों की भारी सुनार के घर में डाली। भारी की आवाज से पेड़ पर बैठा हुआ कौंच पक्षी घबरा गया और चिरक गया। जवला उसकी विष्टा के द्वारा बाहर आ गये।

वह देखकर सुनार घबराया। मन में अति पश्चात्ताप हुआ। और ओघा-मुहपत्ती लेके खुद ही साधु धर्म को अंगीकार कर लिया।

शरीरमें ताकत है तब तक आराधना कर लेना ठीक है। फिर क्या होगा उसकी खबर नहीं है।

चार घडी रात बाकी रहे तब श्रावक-श्राविका जग के नमस्कार मंत्र का जाप करे। आत्म चिन्ता में तल्लीन बने।

देवलोक में कोई देवच्यवी जाय (यानी मर जाये) तो उसके स्थान में जो देव उत्पन्न होता है वह देव वहां की देवियों का स्वामी होता है। और देवियां च्यवें तो

उनके स्थान में जो देवियां वहां रहते देवको पति तरीके स्वीकार करती हैं। देवलोक में एसा रिवाज है।

उपधान करके पुन्यशाली जब घर जाय तब घर के मनुष्यों से कहे कि मैं अब मेरा मन देव गुरु धर्म को सोंप के आया हूं। मैं अड़तालीस दिन की आराधना की। इसलिये मेरा मन संसार के ऊपर से उतर गया है। और धर्म में लग गया है। अब मेरा मन तुम में नहीं है। घर में मैं मन विना रहता हूं। मन उपडेगा और वैराग्य आयेगा। तो मैं चला जाऊंगा।

अभवी को देशना असर नहीं करती है। मोक्ष की श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है। जैसे मरुधर (मारवाड) में कल्पवृक्ष नहीं होता उसी तरह अभवि में मोक्ष तत्व की श्रद्धा नहीं होती।

जब तक मिथ्यात्व रूपी जहर नहीं जाता है तब तक समकित रूपी अमृत का पान नहीं हो सकता है।

"राज्यं नरक प्रदं" राज्य नरक गतिका कारण है। लोकोक्ति में भी कहा गया है कि "राजेसरी नरकेसरी"।

तामली तापस अन्तिम समय आराधना में तदाकार बनके ईशान देवलोक में गया। ईशानेन्द्र तरीके हुये। वहां जाके समकित को प्राप्त किया। प्रर्याप्ति पूरी हुई। इतनेमें तो देवदेवी सेवा में हाजिर हो गये।

जगत का स्वभाव एसा है कि—जन्मना और मरना, हसना और रोना, सुख और दुख, परणना (शादी करना) और रंडाना (विधवा अथवा विधुर होना) वगैरह अच्छा अथवा बुरा जहां होता ही रहता है उसका नाम जगत।

मृत्यु के समय धर्मी मनुष्य अपने परिवार से कहे कि तुम मेरी चिन्ता नहीं करना। मेरे कर्म साथ में हैं। मुझे धर्म सुनाओ। और सद्‌गति में भेजो।

धर्म को नहीं प्राप्त हुये जीव मरते समय बोलते हैं कि–

फलाने के साथ अपना वैर है। इसलिये तुम वहां नहीं जाना। जो जाओगे तो मेरा जीव शान्ति से नहीं जायगा।

श्रद्धावान श्रोता हो और विद्वान वक्ता हो तो वर्तमान में भी अपना शासन एक छत्री वन सकता है।

अच्छे मनुष्य का काम यही है कि किसी को भी सलाह अच्छी दे। वह सलाह देनेके वाद सामनेवाला माने अथवा न माने ये उसकी इच्छा की वात है।

एक गाँवमें एक शेठ रहते थे। वे शेठ पूरे गाँवकी पंचायत करते रहते थे।

इसलिये लोग उन्हें "चौवटिया" कहते थे। वे थे वुद्धिशाली। किसीके घर किसी प्रकारका मनदुःख हुआ हो तो शेठको वुलाता था। शेठ जैसे तैसे लडाई मिटा देते थे इससे वे चौवटिया शेठ "सच्चे हैं" इस तरह प्रसिद्ध हो गये।

एक समय दिवाली के दिन शेठकी वहू अच्छी साडी पहनके पानी भरने जा रही थी। तव गाँवकी दूसरी स्त्रियां घुसफुस घुसफुस वातें करने लगीं। इससे उस शेठकी वहूको यह इन्तजारी हुई कि ये स्त्रियां क्या वातें करती हैं? और एक ध्यानसे वात सुनने लगी।

तव उसके कान पर शव्द पडे कि शेठ तो गाँवमें

जहां तहां चौवट करते फिरते हैं। जिसकी चौवट करें सुवह सांज उसके घर जीम लेते हैं। दूसरा कुछ भी धंधा करके नहीं कमाते हैं। तो फिर उनकी वहू एसी कीमती साडी कहां से लाई?

यह सुनके शेठानी उदास हो गई। जैसे तैसे घर आई। और नक्की किया यानी दृढ निश्चय किया कि शेठ घर आवे फिर वात।

शेठ घर आये। और देखातो शेठानी का मिजाज वरावर नहीं लगा। उसका कारण पूछा। शेठानी रोते रोते कहने लगी कि गाँवमें सव मुझे अंगली वताके कहते हैं कि कुछ भी व्यापार धंधा किये विना दूसरो की पंचायत करनेवाले चौवटिया शेठकी वहू एसी कीमती सारी कहां से लाके पहनती है?

यह सुनके शेठ कहने लगे कि गाँवके मुँह पै गलना (वस्त्र) नहीं वांधा जा सकता है। दूसरे सव कुछ भी कहें मगर मैं धारूं तो आकाश को भी थींगडां (वस्त्र) मार सकूं एसा हूं। हाल तो कुछ नहीं लेकिन कोई एसा समय आवे तव मेरी परीक्षा करना।

इस वातको आठ दस दिन वीत गये। पीछे एक दिन शेठ वाहर गाँव गये थे। उसी दिन उसी गाँव के राजाका कुँवर इस शेठके वहां आया। इस कुँवरकी चाल चलगत (आचरण) खराव थी। जुआ और शराव का व्यसनी था। शराव पीके अचानक शेठके ही घरमें आ गया।

शेठानी को इसकी कुछ भी खवर नहीं होनेसे उसने

तो राजकुँवर को गादी बिछा दी, पानी पिलाया और दूध लेनेको रसोई घरमें गई ।

अब एसा हुआ कि थोडे दिन पहले शेठ उनके घर "सोमल" लाये थे । और शेठानी से कहा था कि यह सम्हाल के रखना । जरूर पडेगी तो काम लगेगा ।

दूध बनाते बनाते शेठानी को शेठके द्वारा लाया हुआ "सोमल" याद आया । और वह कुछ पुष्टि कारक होगा एसा मानके उस सोमल को दूधमें डालके राजकुँवर को पिला दिया । राजकुँवर भी शराबके नशामें दूध पी गया ।

थोडी देरके बाद "सोमल" जहरका असर होनेसे राजकुँवर गादीके ऊपरसे उठके पासमें पडे हुये शेठके पलंग पर सो गया । बराबर इसी समय शेठ घर आ गये ।

घरमें प्रवेश करते ही घरमें अनजान व्यक्तिके जूता देखकर शेठ भडक उठे ।

शेठ मनमें विचार करने लगे कि मैं पूरे दिन पूरे गाँवमें चौवट करता फिरता हूं । इससे मेरे घरमें कोई मेहमान तो आता ही नहीं है । तो फिर आज ये अनजान कौन आया ?

उनने दरवाजा में से शेठानी को बुलाया । बूम सुनके शेठानी दौडकर आके शेठसे बोली कि बूम नहीं पाडना यानी जोरसे चिल्ला ओ नहीं । आज अपने यहां सोना का सूरज उगा है । शेठ कुछ समझे नहीं इससे शेठानी ने सब बात समझा के कही । और अन्त में कहा कि मैंने राजकुँवर को सोमलवाला दूध पिलाया इसलिये राजकुँवर बहुत अच्छी नींद आ गई है । इसलिये मैं तुमसे कहने

आई हूं कि वूम वराडा (चिल्लाना) पाडशो नहीं। नहीं तो राजकुँवर की अँध उड जायगी।

दूधमें सोमल पिलाने की वात सुनके तो शेठके होश हवास उड गये। घवराते घवराते दौडते दौडते इकदम पलंग के ऊपर जाके देखातो राजकुमार लीलाछम (जहरके असरसे हरे पीले) हो गये। पूरे शरीर में सोमल चढ गया था। राजकुमार तो चिर निद्रा में कायम के लिये पोढ गया था। (यानी राजकुमार मर गया था)।

शेठ तो यह देखकर चिन्ता में चिन्तित हो गये। शेठको घवराया हुआ देखके शेठानी भी घवराईं। और क्या वात है? वह शेठसे पूछने लगीं।

शेठने कहा गजव हो गया। यह तूने क्या किया? राजकुँवर तो मर गया है।

सोमल ये कोई खानेकी वस्तु नहीं थी। ये तो जहर था। हलाल जहर खाने के साथ ही मनुष्य मर जाता है। और राजकुमार को भी उसका असर होते ही मर गया है।

यह वात सुनके शेठानी को मौका मिल गया। झट शेठसे कहने लगीं कि इसमें क्या गजव हो गया?

तुम थोडे दिन पहले कहते थे कि मैं धारूं तो आकाशको भी थींगडा वस्त्र मार सकता हूं। तो देखो! इस राजकुँवरको मारके मैंने तो आकाश फाड दिया है अव तुम इस आकाशको कैसी सुई से और कैसे दोरासे थींगडा मारते हो? वह मुझे देखना है।

शेठने थोडा विचार करके वराटर मेल वैठाके फिर शेठानी से वोले कि अव देखना? मैं भी आकाशको कैसे थींगडा मारता हूं।

अभी रातके दश बजे हैं। मैं राजकुमार के मुड्दे को उठाके ले जाता हूं।

तू घरका दरवाजा बन्द करके आराम से सो जाना।

ऐसा कहके शेठ तो मुडदा को खंधे पर उठाके घरके बाहर निकल गये। और सीधे जहां नगरकी वेश्याका आवास था वहां पहुंच गये।

उसके घरके दरवाजा के पास राजकुमार के मुडदा को बराबर खडा कर दिया।

शेठ तो जानते ही थे कि राजकुमार व्यसनी है लवाड है हररोज़ इस वेश्याके यहां जाता था।

यह भी शेठके ध्यानमें था ही।

इसलिये राजकुमार के मुडदा को बराबर खडा रखके किवाडकी सांकल खखडाके शेठ तो वहां से रफूचक्कर हो गये।

अब इस तरफ वह वेश्या सांकलकी आवाज सुनके दासीसे कहने लगी कि राजकुमार आये लगते हैं। इसलिये तू जल्दी जाके दरवाजा खोल।

उस दासीने दौडके आके धडाक करते दरवाजा खोला। इतने में तो घडींग आवाज करता और टेकासे खडा राजकुमार का मुडदा वेश्याके घरके दरवाजे में गिरा।

आवाज के सुनते ही वेश्याने वहां दौडके आके देखातो राजकुमार चत्तापाट (चित्त) पडा था। और उसका प्राणपंखी उड गया। इससे वह चिन्तित हुई। वेश्याने मनसे विचार किया कि राजकुमारने आज जरूर

अधिक शराब पीली हो ऐसा लगता है। इससे नशेमें चकचूर हो जानेसे गिर जानेसे मर गया है। लेकिन अब मेरा क्या होगा ?

राजकुमारकी लाश मेरे घरमें ही देखके राजा तो मेरा कोल्हू में डालके तेल निकालेगा।

लेकिन इसका सच्चा रास्ता सच्चा चौवटिया शेठके सिवाय दूसरा कोई नहीं निकाल सकता है।

ऐसा मानके उस दासीसे कहा कि जल्दी से चौवटिया शेठको बुला ला। घर जाके दासीने सब हकीकत शेठसे कह दी।

शेठ तो राह देखके ही बैठे थे। शेठानी से कहा अरे! सुन। मैं आकाशको थींगडा मारने की सुई लेने जाता हूं। ऐसा कहकें उस दासीके साथ वेश्याके यहां आये। वेश्याने सब हकीकत से शेठको वाकिफ किया।

हैं! क्या राजकुमार मर गया? शेठने कहा कि अब तो तेरा आही बना समझ ले। यह गुन्हा तो बड़े में बड़ा कहलाता है। इसकी सजा में तुझे फांसी ही मिलेगी।

यह सुनके वह वेश्या शेठ से करगरने लगी यानी प्रार्थना करने लगी। लेकिन शेठ ने हाथ नहीं धरने दिया।

इस से रोती रोती शेठके पैरों में गिर गई और कहने लगी कि शेठ। कुछ भी कर के मुझे बचाओ। पैसा के सामने नहीं देखना। जितना खर्च होगा उतना मैं अभी हाल देने को तैयार हूं।

पैसा की बात सुनके तो शेठने कहा कि तो एक रास्ता है। जो पैसा खर्च करने को तैयार हो तो राज-कुमार को मार डालने का जो गुन्हा तेरे सिर है वह मैं

मेरे सिर पर लेने को तैयार हूं । लेकिन उसके बदले में तुझे मुझ को एक लाख सोनामुंहरें देनी पड़ेंगीं ।

वेश्या तो खुश खुश हो गई । झट जाके एक लाख सोनामोहरों की थैली लाके शेठ को अर्पण करके कहने लगी कि आपका उपकार कभी नहीं भूलूं ।

शेठ भी सोनामोहर और मुड्दा लेके रवाना हो गये।

घर जाके शेठाणी से कहने लगे कि ये एक लाख सोने की मोहरें। सोने की मुहरें देखके शेठानी तो स्तब्ध ही रह गईं । शेठने कहा कि यों पागल जैसी क्यों वन गई है? यह थैली सम्हाल के पिटारे में रख दे । और तू सोजा ।

यह तो आकाश को थींगड़ा मारने की सिर्फ सूई ही लाया हूं । डोरा तो अब लेने जाता हूं ।

एसा कहके शेठ तो फिर से मुडदा को कंधे पर डाल के रवाना हो गये ।

चलते चलते बरावर एक मुल्ला की मस्जिद के पास आके खड़े हो गये । वहां देखा तो बड़े मुल्ला बरावर बीचोंबीच बैठ के कुरान वांच रहे थे ।

आस पास तीनसौ-चारसौ मुल्लों का टोला वैठ के कुरान सुन रहा था ।

थोड़ी दूर एक म्युनिसिपालिटि का दिया का खम्भा शेठ ने देखा। खम्भा के ऊपर झांखा दिया जल रहा था। शेठ ने तो राजकुमार के मुडदा को खम्भा का टेका देकर बरावर खडा रक्खा ।

और फिर एक वड़ा पत्थर लेके ताक करके कुरान

वांचनेवाले मुल्ला की चकचकती (चमकती) टाल में मारा। पीछे वहां से इकदम पलायन हो गये।

इस तरफ मुल्ला फकीर का टाल (सिरकी चाँद) टूट गया। और खून का फुवारा छूटने लगा। मुल्ला गुलांट खाके नीचे गिरा। दूसरे बैठे सभी मुल्ला खड़े हो गये।

अरे! पत्थर किसने फेंका। पकड़ो! मारो! दोड़ो। एसा हल्ला करते करते मुल्ला दौड़े।

खम्भा के सहारे खड़े राजकुमार को दूर से खड़ा देख के इसने ही पत्थर मारा है एसा मानके सब लकड़ी लेकर टूट पड़े। और फटाफट लाठियां मारने लगे।

कोन है? कोन नहीं है यह देखने के लिये किसीने विचार नहीं किया।

थोड़ी देर में मुडदा नीचे गिरा इसलिये किसीने कहा कि देखो तो खरा! यह कौन है? दिया लाके वहां देखते हैं तो राजकुमार।

राजकुमार को देखके सबके होश हवास उड़ गये।

सब अन्दर अन्दर लड़ने लगे। वो कहे तुने मारा और वह कहे तूने मारा। एसा कहके सब भाग गये।

लेकिन आगेवान कहां जाय? वे चिन्तातुर बन गये। अब हो क्या?

मुल्ला फकीर की सारवार (सेवा) तो दूर रही लेकिन उल्टी बीचमें ये मुश्किल खडी हो गई।

एक आगेवानने कहा कि बुलाओ चौवटिया शेठको। इसका रास्ता वेही काढ देंगे।

एक मुल्ला तुरन्त ही चौवटिया शेठको बुला लाया। अथ से इति तक की सब हकीकत शेठ से कही।

शेठने कहा कि अब तो कल तुम सबकी आ गई। मुल्ला ने कहा शेठ! इसी लिये तो तुमको काली रात में बुलाया है। अब कुछ रास्ता निकालो। और हम्हें बचाओ। चाहे खर्चा कुछ भी हो जाय।

शेठने कहा कि खर्चा की छूट हो तो एक बात है। लाओ! एक लाख सोनामुहरें। तो ये गुन्हा तुम्हारे माथे है तो मैं मेरे माथे (सिरपर) ले लेता हूं।

उन लोगों को तो यही चाहिये था। एक लाख सोना-मुहरोंकी थैली शेठ को दे दी।

शेठने कहा अब तुम जरा भी नहीं घबराना। तुम सब शान्ति से पेट पे हाथ देके सो जाओ। मैं सब फोड़ लूंगा। वे सब जिस किसी तरह छूटे।

शेठ भी सोनामुहर और मुड़दा ले आये घर। शेठानी से कहा ले ये दूसरी एक लाख सोनामुहर। पिटारा में रख दे।

शेठानी ने कहा कहांसे लाये? शेठने कहा पहले तो लाया था सुई। ये लाया दोरा। अब जाता हूं आकाश को सांधने के लिये।

एसा कहके शेठ तो वह मुड़दा ले के कंधा पर डाल के घर के वाहर चले गये। फिरते फिरते गाँवके वाहर आके एक पेड़ के पास आके खड़े हो गये।

वहां उनने देखा कि थोडी दूर पर मन्दिर के ओटला पर वैठे वैठे एक पोलिस जमादार गाँवकी चोकी कर रहा है।

शेठने तो राजकुमार के मुड़दा को चाँदनी में दिखाई दे इस तरह पेड़ पे बैठाया। और पेड़ पर से नीचे उतर के थोड़ी दूर जाके जमादार के माथा में ताक के किया पत्थर का घाव और सीधे घर भेगा हो गये यानी घर चले गये।

इस तरफ वह पत्थर बराबर जमादार की टाल में (चांद में) लगा। इससे माथा फूट गया (यानी सिर फूट गया)। दूसरे सिपाही जमादार की चिल्लाहट सुन के दौड़ आये।

जमादार ने कहा सामने पेड के ऊपर से पत्थर आया है एसा लगता है। इसलिये पेड़ पर चोर दिखाई देतो गोलीबार करके उसे मार डालो।

पोलिस के द्वारा जांच करने पर पेड़ के ऊपर शेठ के द्वारा बैठाया गया राजकुमार का मुडदा देखकर यही चोर लगता है एसा मानके गोलीबार किया। उसी समय मुडदा झाड़ के नीचे गोली के घाव से गिर गया।

जमादार और पोलिस ने दौड़के जाके देखा तो राजकुमार को गोली से मरा हुआ पाया। इससे पोलिस जमादार अन्दर अन्दर लड़ने लगे।

जमादार ने कहा तुमने मारा और पोलिस कहे तुम्हारे कहने से मारा।

दोनों विचार करने लगे कि अब क्या हो? आखिर वे भी सलाह लेने को चौवटिया शेठको बुला लाये।

सेठने कहा तुम्हारा आ बना समझ लेना। राजा छोड़ेगा नहीं।

वे तो करगरते करगरते सेठ के पैरों में पडे। और

किसी तरह से वचा जा सके एसा करने के लिये विनंती करने लगे।

चौवटिया सेठने कहा तुम्हें जो वचना ही है तो एक रास्ता है। एक लाख सोनमुहर लाके मुझे दो तो यह गुन्हा मैं मेरे सिरपर ले लेता हूं।

उन दोनोंने लांच रिश्वत खूब खाई थी। वह सब कमाई सेठने उकाली।

गरजवान उन विचारों ने खड़े खड़े एक लाख सोना मोहरें लाके शेठको सुप्रत कीं।

सेठने कहा अब तुम जराभी नहीं घवराना। आराम से जाके सो जाओ। अब मुझे जो करना होगा सो कर लूंगा।

जमादार और सिपाही तो बड़ी मुश्किल से वचे जानके हर्षित वने।

इस तरफ सेठ मुड़दाको लेके पीछे घर आये। सेठानी से कहा लो ये एक लाख सोना मोहरें। और पिटारे में रक्खो!

अब विलकुल सुवह होने को आया था। इसलिये आपको थींगड़ा मारना है यानी आकाश को चींथरा मारना है। मैं अभी हाल थींगडा मारके आता हूं।

एसा कहके राजकुमार के मुड़दे को लेके सेठ सीधे राजभवन के पास आये। वाहर रास्ता पर मुड़दा रखके राजा के पास जाके कहने लगे कि राजकुमारने खूब शराब पीने से नशा में चकचूर वनके वह रास्ते में ही लथड़िया खाके नीचे गिर जाने से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं।

राजा भी जानता था कि राजकुमार बिलकुल लबाड है। इसलिये उसके पाप उसे नड़े। भले इसका शव रास्ते में ही रखड़े।

सेठने कहा महाराज! राजकुमार भले लबाड़ था किन्तु प्रजा के मन तो राजा का कुँवर था। इसलिये एसा बेपरवाह होने से तो तुम्हारा खराब दिखायेगा।

राजा ने कहाकि तो इसका क्या रास्ता करना?

सेठने कहा एसा करो। महल के पीछे घोडा हार है। उसके कठेड़ा के ऊपर से राजकुमार को घोड़ाहार के पतरा (टीन) ऊपर गिराओ। पतरा की आवाज से चौकीदार वहां दौडते आवेंगे।

राजकुमार को देखेंगे तो तुरन्त ही तुम्हें बुलाने आयेंगे।

इससे गांव में कहला दिया जायगा कि नींद में से उठ के कठेडा पर पेशाब करने गये थे वहां नींद में भान नहीं रहने से लुडक गए और घोड़ाहार में गिरने से मृत्यु को प्राप्त हुए।

एसा करने से ना तो तुम्हारी बदनामी होगी और ना किसी को खबर होगी।

राजा को यह बात ठीक लगी। चौवटिया सेठके कहे अनुसार राजकुमार के शव को कठेडा पर से घोड़ा हार के पतरा पर फेकने में आया चौकीदार इकट्ठे हो गये। राजाको बुलाया। एसा करते करते सवेरा होगया गांव में सब जगह राजकुमार की मृत्यु की बात फैल गई।

शराब के नशे में गये होंगे एसा सबने मान लिया।

लोकोंके समूह के समूह राजभवन में खबर काढने के लिए आये। चौरे और चौटे (हरजगह) एकही बात हो रही थी कि राजकुमार नींदमें गिर जानेसे मर गए।

शेठकी सलाह से राजाकी आवरू वच गई। राजाने खुश होके भरे दरवार में शेठको नव लाख सोना मोहरें भेंट दी और पघड़ी वांधी।

शेठ घर आये तव शेठानी कहने लगी कि वाहरे वाह मेरे प्रिय स्वामिनाथ! तुमने तो सचमुच में "आभको थींगडा मारा।"

जितने आत्मा मोक्षमें जाते हैं वे भाव संयमी वनके जाते हैं। साधु भी अगर रागादि से पीड़ित हों तो दुःखी हैं और भाविमें भी दुःखी होते हैं।

आर्तध्यान में जो मरता है वह तिर्यंच गतिमें जाता है। रौद्रध्यान में जो मरे वह नरक गतिमें जाता है। हिंसा नरकमें ले जाती है। वेश्यागमन नरक में ले जाता है। महा अनीति-अन्याय नरकमें ले जाता है। रत्नप्रभा नामकी नरकपृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन की है।

समकिती देव मानवलोक में आनेके लिए झंखना करते हैं।

अठारह पाप स्थानकों को काढने के लिये धर्म की आराधना करनी है।

कामकी लालसा को धिक्कार हो? वैक्रिय शरीरधारी देव काममें डूबे रहते हैं। कामवासना वड़े मनुष्योंको भी अंध वनाती है! कामवासना लहसुन (लसण) जैसी है और शुभवासना कस्तूरी जैसी है। कस्तूरी भी लसुन के संगसे दुर्वासित वनती हैं।

मनुष्यलोक में सुख गंधाती गटरके समान है इसलिये महानुभाव! संसारी सुखोंका विरागी बनना चाहिए।

साधु-संत भी रागीके संगसे रागसें लिपट जाते हैं इसीलिये शास्त्रों में साधुओं को रागी के अति संग का निषेध बताया है।

जहाँ राग पुष्टिके साधन हैं वहाँ साधु रह भी नहीं सकते हैं। जो ऐसे स्थल में निवास करने में आवे तो अतिचार लगे। निरतिचार जीवन जियो यही शुभेच्छा।
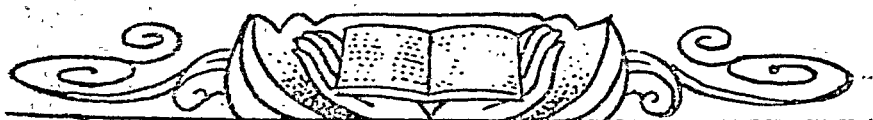
व्याख्यान–चौवीसवां

अनन्त उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि मानवजीवन एक मुसाफर खाना है।

मुसाफर खानेमें जैसे अनेक मुसाफर इकट्ठे मिलते हैं और अन्तमें बिखरते रहते हैं इसी तरहसे मानवजीवन में विविध सगे–संवन्धी रूपमें सब इकट्ठे मिलते हैं, परन्तु आयुष्य पूर्ण होते ही सब बिखर जाते हैं।

बिखर जानेके बाद वे उसी स्वरूप में इकट्ठे होनेवाले नहीं हैं तो मिले हुए मानव जीवन को सफल बनाने के लिये प्रयत्न करो।

संतोषी मनुष्य फटे कपड़ों में शायद रोडके ऊपर सो रहेगा किन्तु दुर्गति में नहीं जा सकता है. किन्तु सुखी मनुष्य बंगला आदि में राग करेगा तो दुर्गतिमें जाने वाला ही है।

गुरुमहाराज शिखामण दें (सीख दें) तब सुनते सुनते गुस्सा आ जाय फिर भी पीछे से माफी मांगना चाहिए ऐसी विधि है तो फिर गुरुमहाराज के वारेमें कुछ विपरीत बोले हो तो माफी मागे बिना तो नहीं चलेगा।

वीतराग परमात्मा अपने ऊपर क्या उपसर्ग आने वाला है? इसके अनुसंधान में ज्ञानका उपयोग नहीं रखते।

में भी सहनशील बनना पडता है। तो यहां शासनकी सेवा करने में भी सहनशीलता जीवनमें उतारना पडेगी। संसारी व्यवहारो में तो पराधीन बनके सहन करना है। जबकि यहां तो स्वाधीनता पूर्वक सहन करना चाहिये।

जिस घरमें स्त्री सहनशील होती है वह घर अच्छी तरह से चल सकता है। इसलिये जिस घरमें स्त्री संस्कारी होती है वह घर दीप उठता है।

जीवन का खेल भावके आधार पर है। भाव अच्छा तो जीवनका खेल भी अच्छा।

एक नगरी में करोडपति शेठका लडका इलाचीकुमार सुखमें मलक रहा था। पानी मागने पर दूध हाजिर हो एसी उसकी पुन्याई थी। दास-दासी दिनरात सेवामें हाजिर रहते थे।

धनदेत शेठ के यहां ये इलाचीकुमार एक का एक पुत्र होनेसे खूब ही लाडला था। इलाचीकुमार को जरा भी दुःख न हो इसकी सावधानी माता-पिता और भवन के दास-दासी सभी रखते थे। इलाची की उम्र बीस बरस की हो गई थी।

भर यौवन, सुकुमाल काया, और तीव्र बुद्धि देखके अनेक श्रेष्ठी अपनी प्रिय कन्याओंको देने के लिये आ रहे थे। अनेक कन्याओं के चित्र आते थे। और जाते थे। लेकिन इलाची के लिये एक भी चित्र पसन्द नहीं आता था। इलाची भी मन पसन्द कन्याओं को परणने के लिये इच्छता था।

ये समझता था कि जिसके साथ जीना है। एसी नारीमें भावना त्याग, प्रेम, सहिष्णुता और यौवन ये सब

चाहिये । उसके साथ २ धार्मिकता के भी सुसंस्कार होना चाहिये ।

मनुष्यको भाग्य कहां ले जाता है उसकी खवर नहीं होती है ।

आज तो नगरी में एक नट मंडली नृत्य करने को आई थी । नगरी के वीचोवीच विशाल चौक में दोरडा–(रस्सीयाँ) वाधीं थी । खम्भे लगाये गये ।

नगरी में ढोल पिटा कि "चलो नृत्य देखने के लिये" "चलो खेल देखने ले लिए" । यह ध्वनि इलाची के कान में पड़ी ।

इलाची भी अपने मित्रों के साथ नृत्य देखने गया । खेल देखते देखते नृत्य कुशल एक कुमारी को उस नट मंडली में नाचती इस इलाची कुमार ने देखी ।

देखने के साथ हीं भान भूल गया । ये कुमारी सौन्दर्यवान थी । ये रूप की अंवार थी । नमनी इसकी नाक और सुन्दर कटि प्रदेश थी । वस ! सादी करूँ तो इसके साथ ही इलाची को इसकी जिद लग गई ।

घर जाके माता पिताको अपनी भावना वताई । मां वाप तो यह सुनके वहुत ही दुःखी हुए । इसको और भी प्रलोभन वहुत दिये । लेकिन ये वन्दा दूसरा माता पिता ने दुखी मन से नटराज के पास कन्या की माग की ।

लेकिन ऐसे तो वह नट कवूल करे ? कुछ भी हो फिर नात जात का मूरतिया (वर) शोभता है । नटने स्पष्ट किया ।

एक भयंकर जंगलमें एक साधु महात्मा ध्यान धरते थे। उस जंगलकी अधिष्ठाता देवी मुनि की सेवा करती थी। महात्मा को कुछ भी तकलीफ न हो, कुछ अगवडता (अव्यवस्था) न हो इसकी तकेदारी (सावधानी) रखती थी।

साधुकी सेवा करने की इच्छा देवोंको भी होती है। साधुकी सेवा करने से सद्‌गति प्राप्त होती है।

ग्रीष्मकाल का समय था। जंगलमें काष्ठ लेनेके लिए अनेक मनुष्य आते थे। वहाँ अति तापसे तृप्त बना एक मनुष्य पेडके नीचे विश्रान्ति ले रहा था। उसकी दृष्टि सामने खड़े मुनि पर पड़ी। उसको विचार आया कि लाओने मुनिकी परीक्षा करूं। कहा जाता है कि जैन मुनि समतावंत होते हैं तो इन मुनिमें समता कितनी है यह देख लूं।

वह था गाँवका अज्ञानी मनुष्य! इस बिचारे को खबर नहीं थी कि क्या बोलना? और क्या नहीं बोलना? वह तो गया मुनिके पास और मुनिके सामने खडा हो के ज्यों-त्यों बोलने लगा।

देखा! देखा! तुमको! तुम तो ध्यानका ढोंग करके खड़े हो और लोगों को ठगते हो ऐसी कटु वाणी सुनते ही महात्मा के दिलमें रहा क्रोध भड़क उठा।

अरे! जा! जा! ढोंगी कहनेवाला! नहीं तो तुझे मार डालूंगा। देहाती मनुष्य यह सुनके बहुत ही गुस्से हुआ। उसने विलम्ब किये बिना ही महात्मा को पीटना शुरू किया। महात्माने भी लिया डंडा हाथमें और लगे देहाती को पीटने।

परस्पर मारामारी बढ़ गई। पशु-पक्षी भी रुक गए।

वनदेवी वहाँ आके यह दृश्य देखके विचार करने लगी कि जिन मुनिकी मैं भक्ति करती हूं, वे क्रोधमें तप रहे हैं। क्या करना? देखा करना यही ठीक है। दो घटिका मारामारी चली, फिर दोनों शान्त हुए, गामडिया (देहाती) चला गया।

मुनिकी काया लोहीलुहाण बन गई थी। मुनि बूम पाड़ने लगे (चिल्लाने लगे)।

वनदेवी! तू कहां गई? जल्दी आ और देख मेरी वेदना।

देवी प्रगट हुई! क्यों महाराज! शाता तो है? मुनिने कहा कि किसकी शाता पूछती है? देखती नहीं है मेरी यह हालत! उस गामडियाने तो मुझे लोहीलुहाण कर दिया। तू रोज मेरी सेवामें हाजिर रहती थी और आज कहां गई थी? मैं साधु हूं यह तू नहीं जानती?

देवीने कहा कि यह तो मुझे खबर है। किन्तु तुम दोनो एक दूसरे को गालियां देते देते मारामारी करते थे। इसलिये मैं विचार करने लगी कि साधु कौन?

महात्मा समझ गये कि मेरी भूल है। दूसरा आदमी भले कितना ही क्रोध करे किन्तु मुझे समता रखनी चाहिये। ये साधुका कर्तव्य है। भगवानके शासन की रक्षा के लिये सब करने की छूट है। लेकिन आत्मरक्षण के लिये अन्यको डंडासे मारा नहीं जा सकता है। साधु हमेशा चन्द्र जैसे शीतल होते हैं। और आपत्तिमें सहन शीलता वाले होते हैं। उनका नाम साधु है।

शासन का काम करनेवालों को समझ लेना चाहिये कि टीका अथवा निन्दा को सहन करना है। घर चलाने

हमारे साथ रहे। नृत्य सीखे। और उस कलासे किसी राजा को प्रसन्न करले इनाम प्राप्त करे तभी हम हमारी कन्या देते हैं।

इलाची के मां बाप एसी कबूलात कैसे कर सकते हैं?

लेकिन इलाची ने तो माँ बाप की भी परवाह छोड़दी। छोड़ दिया घरबार और चला नटमंडली के साथ।

उसे तो सिर्फ़ नट कन्या की ही लगनी लगी थी। उसके विना सारा संसार उसे शुष्क लगता था।

नट मंडली के साथ निकल पडा इलाची कुमार नृत्य कला में प्रवीण बन गया था। एक दिन किसी बडे नगर में राजा को खेल दिखाने के लिये वह मंडली आई। बाजार के बीचों बीच तैयारी की थी। नृत्य देखने के लिये मानव मेदनी खचा खच भर गई थी। राजा रानी भी वहां आए थे। ढोल शहनाई के मधुर स्वर से वातावरण गुंजित बना था। वहां विषयान्ध राजा इस नाटक कन्या को देखके मलिन वासना वाला बन गया था। उस राजा ने समझा कि यह कन्या उस बांस ऊपर चढके आश्चर्य युक्त नृत्य करते उस युवक की पत्नी हो यह संभव है इससे राजा दुष्ट चिन्तन करने लगा।

यह युवान नीचे गिरके मर जाय तो इस नट कन्या को मैं प्राप्त कर सकता हूँ।

तीन तीन वक्त बांस ऊपर चढके अति सुन्दर नृत्य करके इस इलायचीनें लोगोंके मनोरंजन किये। लोग वाह

वाह की पुकार करने लगे। लेकिन राजा कुछ भी नहीं बोला। और इनाम भी नहीं दिया।

वहतो विचार करने लगाकि वार वार इस युवक को वांस के ऊपर चढने देने से कभी तो नीचे गिरके मर जायगा। और मेरी इच्छा पूरी हो जायगी।

इलाची आखिर में चौथी वार दोरडा (रस्सा) ऊपर चढ़ा। वांस बडे वडे खडे किये होने से ऊपर चढ़ने वाला पूरे नगर को अच्छी तरह से देख सकता था।

वांस के दोरडा के ऊपर नाच करके राजा को प्रसन्न करने की इच्छा वाले इलाची ने वांस के दोरडा के ऊपर से एक धनिक गृहस्थ की हवेली में एक सुन्दर दृश्य देखा।

एक नवोढा युवान स्त्री एक मुनिराज को मोदक लेने का आग्रह कर रही थी। मकान में मुनिराज और युवान स्त्री सिर्फ ये दोनों ही थे। नवोढा स्त्री की काया रूप के तेज से चमक रही थी। एसे एकान्त समय में भी मुनिराज की दृष्टि नीचे जमीन तरफ थी। यह दृश्य देखकर इलाची चमक उठा। अपने जीवन में जागृति आई।

अहा! कहां यें मुनिवर और कहां मैं?

एक नट कन्या के मोह में भान भुला हुआ तो मैंने घरबार छोडा माता पिता छोडे, वीतराग धर्म वासित कुटुम्ब छोडा। मुझे धिक्कार है। धन्य है इन मुनिको।

अपने से हुई भूल पर इलायची को पश्चाताप होने लगा। पश्चाताप की ज्वाला में अनादिकाल से घर

करके आत्मा में जमगये चार घाती कर्मोंका चूरे चूरा उड गये। वांस के दोरडे पर ही इलाची को केवल ज्ञान हुआ। केवली बने। इसीलिये कहा है कि "भावना भव-नाशिनी"। इस वाक्य को इलाचीने यहां सफल किया।

न जाने क्या हुआ! जैसे विजली का करन्ट लगते ही दूसरा भी जल जाता है इसी तरह इलाची के भावना रूप करन्ट नीचे वैठे हुए राजा रानी और नट कन्या को भी स्पर्श कर गया। इलाची के साथ ये तीनों केवल ज्ञानी बने। इन तीनों के घाती कर्म भी जलके खाक हो गये। जडमूल से हमेशा के लिय नाश हो गय। इन तीनो की एकाग्रता किसी भी रूप में हो मगर दोरडा पर नृत्य करते इलायची के प्रति थी। जिससे "इलिका भ्रमर" न्याय के अनुसार वे केवल ज्ञानी बने।

भावना अच्छी हो तो विश्वमें कुछ भी अशक्य नहीं है। भावनाके वलसे मनुष्य धारा हुआ काम कर लेता है।

एक सुखी श्रीमंत के यहां एक सामान्य स्थिति का नौकरी करता था। वह रोज नवकारसी करता, पूजा करता था, शामको चोविहार करता था। यह देखके सुखी शेठ उससे कहने लगा कि अरे! तू तो धर्मघेला (धर्मपागल) वना हैं। ये शब्द वोलनेवाले शेठको यह खवर नहीं कि मुझे परभवमें इसका क्या असर होगा?

धर्म विरुद्ध वातें करने से धर्मकी मश्करी करने से धर्मी की भी मजाक करनेसे भवान्तर में दुःखी होता है। जीभ भी मिलती नहीं है। मिलती है तो तोतला वोबड़ा होता है। धर्मकी रोज अच्छी वातें सुननें पर भी धर्म

अच्छा नहीं लगता है, इसका कारण यह है कि हृदयमें संसार है।

जगत के अगर कोई उद्धारक हैं तो श्री अरिहंत परमात्मा ही हैं। अरिहंत का शासन मिलने पर भी अरिहंत की भक्तिरहित जीवन व्यतीत होता हो तो समझ लेना कि ये दुर्भाग्य की निशानी है।

जहां संसारका रस होता है वहां कषायका रस होता ही है इसलिये अगर कषाय को काबूमें रखना हो तो संसार के प्रति वैरागी बनो।

बुद्धिशाली मनुष्य भूल भी करे तो यह मेरी भूल है ऐसा समझे। जीवन में की गई भूलें जीवनको पायमाल करती हैं।

नरक के जीव चौवीसों घण्टे चिल्लाते हैं दुःख सहते हैं यह तो तुम जानते ही हो?

परभवमें जिसने दान दिया हो वही दान दे सकता है। दान देते हुए दूसरों को रोकने से दानान्तराय कर्म बंधता है।

नवकार का आराधक दुःखी होता नहीं है। लेकिन आज है क्योंकि आराधक भाव हृदयमें नहीं आया।

लालच और लोभसे दिया गया दान एक वेश्या और भांडकी हकीकत जैसा परिणमता है।

एक श्रावक के घरमें गुरु महाराज गोचरी वहोरने जाते हैं। गुरुमहाराज तपस्वी हैं। मास क्षमणके पारणामें मास क्षमण करते हैं। श्रावक के घरमें बादाम, पिस्ता डालके लाडू बनाये। पद्मिनी श्राविका महाराज साहबको देखके प्रफुल्लित हो गई।

मनमें विचार करने लगी कि आजका दिन तो मेरे यहां सोनेका सूर्य उगा हैं। आज मेरे यहां तपस्वी मुनिराज के पुनित पगलां हुए। श्राविका खूब ऊंचे भावसे मोदक वहोराती है और तपस्वी मुनिकी हो रही इस भक्तिको देखके देवोंने सोनैया (सोनामुहर) का बरसाद बरसाया।

श्रावक के घरके सामने एक वेश्या का घर है। वह इस प्रकार से होनेवाले सोनामुहर का बरसाद देख गयी। इसलिये वह मनमें तय करती है कि एसे साधुको लाडू वहोराने से सोनेका बरसाद होता है तो लाओने मैं भी लाडू वहोराऊं एसा विचार के लाडू बनाने की तैयारी करने लगी।

इस तरफ श्रावक के घरमें से साधु महाराज भरे पात्रसे बाहर निकले तब वहांसे एक भांड पसार हो रहा था, वह तीन चार दिनका भूखा था। उसके मनमें एसा हुआ कि एसे साधु महाराज के कपड़ा पहनने से जो खाना मिलता हो तो क्या खोटा? लाओने मैं भी एसे ही वेश धारण कर लूं।

एसा विचार करके वह भांड भी साधु वेश धारण करके उस रास्ते से निकला। इस तरफ वह वेश्या भी किसी साधु महाराज की राह देखती हुई दरवाजे में खड़ी थी।

उस वेशधारी (ढोंगी) भांडको जाता हुआ देखके कहने लगी कि पधारो! महाराज पधारो! भांड को तो इतना ही चाहिये था। वह तो घुसा वेश्या के घरमें और पात्रा खोल के रक्खा नीचे।

वेश्या तो पात्रा में लाडू रखती जाती थी और ऊपर

देखती जाती थी। वह भांड तो बात समझ गया। एक एक मोदक रखते रखते वेश्याने पात्रा भर दिया। लेकिन सोनैया (सोनामुहर) वरसाद नहीं हुआ। इस लिये वेश्या का मुँख ढीला हो गया।

यह देखके वह भांड बोला :

ते साधु ते श्राविका तूं वेश्या मैं भांड।
तारा मारा पापथी पथ्थर पडशे रांड॥

तू ऊँचे देखना नहीं देव! तुझे अथवा मुझे किसीको भी प्रसन्न होने वाले नहीं हैं। लेकिन जो रूठेंगे तो सोनैया के बदले पथ्थर (पत्थर) वरसावेंगे और अपन दोनों मर जायेंगे।

कर्म की गति गहन है। कर्म एसे एसे नाच नचाता है कि प्रत्यक्ष देखने पर भी तुम्हें वैराग्य नहीं आता है। ये आश्चर्य है।

कर्म की विचित्रता को समझाने वाली अढारह नातरा की कथनी विचारने जैसी है।

मथुरा नगरी में बसती कुबेरसेना नाम की गणिका मशहूर थी। एक बार किसी पुरुष से उसे गर्भ रहा। गणिकाओं को बालकों की जंजाल कैसे अच्छी लगे? फिर भी उसे गर्भपात कराने का मन नहीं हुआ।

योग्य समय में पुत्र पुत्री की जोडा जन्मा।

गणिका का धंधा होने के कारण इच्छा नहीं होने पर भी बालकों का त्याग करना पड़ा।

एक पेटी (सन्दूक) में दोंनो को सुला के वह पेटी जमुना नदी में पधरा दी। दोनो बालकों के हाथकी अंगुली

में एक एक नामांकित मुद्रिका पहना दी । पुत्र का नाम रक्खा था कुबेरदत्त और पुत्री का नाम रक्खा था कुबेरदत्ता।

तैरती तैरती पेटी दूसरे गाँव गई । सुबह के प्रहर में दो व्यवहारिया नदी में स्नान करने के लिये आये। पेटी को आती देखकर उसमें से जो निकले वह आधा आधा वहेंच लेनेकी शर्त पक्की कर के पेटी वाहर निकाली।

उनको धन सम्पत्ति की आशा थी किन्तु धन सम्पत्ति के बदले पेटी खोलने से एक बालक युगल उनको प्राप्त हुआ। इस से पुत्र की जरूरतवाला पुत्र ले गया और पुत्री की जरूरतवाला पुत्री ले गया।

विधि की घटना कैसी विचित्र बनती है वह देखो। ये दोनो बालक युवावस्था में प्रवेशे । और पालक माता पिता जानते हुये भी दोनों को पति पत्नी के सम्बन्ध से जोड़ दिया।

अकस्मात् दोनो एक दिन सोगठावाजी खेल रहे थे।

कुबेरदत्ता की सोगठी को जोरसे मारने से कुबेरदत्त हाथकी अंगूठी इकदम उछल के कुबेरदत्ता की गोदमें इकदम जाके उछल पडी।

अन्योन्य अंगूठी की जांच करलेसे गाँव और आकार की समानता के हिसाव से खुद भाई-बहन होनेकी शंका होने लगी।

कुबेरदत्ता इकदम अपने पालक पिताके पास पहुंच के हकीकत का खुलासा प्राप्त करने लगी।

खुलासा सुनते ही उसके हृदयमें पश्चात्ताप की अग्नि प्रगट हो गई। अरे। मैंने यह क्या किया ? भाईको ही

पति तरीके भोगा । पश्चात्ताप की ज्वालाने संसारी मोहको जला दिया । अंतरमें वैराग्यकी चिनगारी प्रगटी । और कुबेरदत्ताने संसार छोडके परम पुनीत प्रव्रज्या अंगीकार की । साध्वी बनीं कुबेरदत्ता ग्रामानुग्राम विचरने लगी ।

इस तरफ कुबेरदत्त को भी सच्ची हकीकत का ख्याल प्राप्त हो गया । एक वक्त उसे मथुरा नगरी तरफ व्यापारार्थे जाने का प्रसंग आया । युवानी का सहज आकर्षण उसे कुबेर सेना के पास ले आया । कुबेर सेनाको भी ये ख्याल कहां से हो कि ये मेरा पुत्र है ।

पहले बहनको पत्नी गिनी । अब खुद जनेताको भी भोगी । अपने ही पुत्रके संयोगसे कुबेरसेना को गर्भ रहा । यथा समय बालकको जन्म दिया ।

साध्वी बनी कुबेरदत्ता को संयम पालनकी अडिगता से अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया । अवधिज्ञानी बनी उन साध्वीजी महाराजने अवधिज्ञान के उपयोग से अपने भाई और जनेता का प्रकरण देखा । हृदयमें अपार खेद अनुभवा । माता और भाईको सत् पंथमें लानेको गुरुकी आज्ञा लेकर मथुरा तरफ विहार किया । मथुरा पहुंचके माता गणिका के आवास में ही मुकाम किया ।

एक दिन रोते बालक को शान्त करने के लिये ये गुरुणी जी महाराज मधुर कंठसे हालरडां (पालने का गीत) गाने लगीं ।

इस हालडामें उनने उस बालक को उद्देश करके एकके बाद एक अपने और बालकके बीचके अठारह संबंध गा बताये । पासमें बैठी कुबेरसेना एसा सम्बन्धों के साथ हालरडा सुनके स्तब्ध बन गई । आखिरमें अवधिज्ञानी

साध्वीजी के द्वारा सर्व हकीकत जान ली। और कुबेरसेना वैरागी बन गई। संयमके मार्गसे प्रयाण करके अनुपम आराधना द्वारा कल्याण सिद्ध किया।

लक्ष्मी तुच्छ होने पर भी जो लक्ष्मी को सुमार्ग में लगाया। जाय तो ये महान बन सकती है। लक्ष्मी तुम्हारे साथ रहनेवाली नहीं है। साचवने से सचवानेवाली नहीं है। तो फिर लक्ष्मी के प्रति इतना प्रेम क्यों ?

जिनपूजा सामायिक प्रतिक्रमणादि धर्मानुष्ठान आदि करने के समय मोक्ष कितनी बार याद आता है। उसका विचार करना। जो वारंवार याद आता हो तो मानना कि आराधना फल रही है।

शायद कोई देव अथवा देवी प्रसन्न हो जाय। और तुमसे कहे कि मांग मांग जो मांगे देनेको तैयार हूं। तो तुम क्या मांगोगे ?

साहेब ! लक्ष्मी। धर्म नहीं। नारे ना फिर भी तुम्हारे प्रभुका भक्त कहलाना है ?

लक्ष्मी की मूर्च्छा गये विना धर्म के प्रतिराग नहीं जग सकता है। धर्मका राग जीवन में कितना आया है ? उसकी तुम्हारी तुम पहले परीक्षा करो। फिर धर्मी कहलाने का मोह रखो।

शक्ति के अनुसार प्रभुकी भक्ति होती है। संसार के कार्यों में अधिक आनन्द आता है कि धर्म के कार्यों में ? दीक्षा का वरघोडा गमे (अच्छा लगे) कि लग्न का वरघोडा ? यह सब दूसरों में तपास करने की अपेक्षा खुद तुम्हारे जीवनमें तपासो।

भोगकी अढलक सम्पत्ति होने पर भी परमात्मा के कल्याणक मनाने का मन देवों को भी होता है। तो फिर मनुष्यों को तो होना ही चाहिये।

कल्याणक की उजवणी करने से समकित निर्मल होता है। और समकित न पाये हो तो समकित प्राप्त हो जाता है।

अपनी वर्षगांठ मनाने में जो आनन्द आता है उसकी अपेक्षा अधिकाधिक आनन्द प्रभुकी वर्षगांठ मनाने में आना चाहिये।

भगवानका जन्म सुनके देव दौडा दौड करने लग जाते हैं। क्योंकि भगवान की पुन्य प्रकृति उनको खेंच लाती है।

भगवान की ऋद्धिके आगे देवोंकी ऋद्धि भी कोयला जैसी है। तो मानवों की तो वातही कहां? कल्याण के पंथमें आगे वढो यही शुभेच्छा।
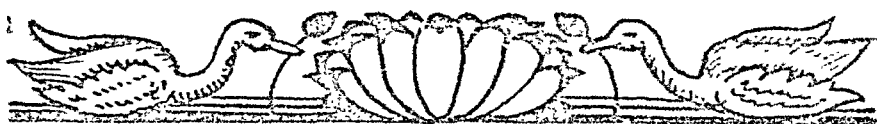
व्याख्यान—पच्चीसवाँ

अनंत उपकारी शास्त्रकार परमार्षी फरमाते हैं कि अपना समकित निर्मल करने के लिये जीवन उज्वल बनाना चाहिये ।

जीवनमें उज्वलता आये विना समकित नहीं आ सकता है। और आ भी जाय तो टिक नहीं सकता है।

लोक जीवन सुखी बनाने के लिये आज कितनी ही जगहों में फंडफाला (टीप, चन्दा) होता है । लेकिन तुम्हें खबर है कि ये फंडफाला की कितनी ही रकम तो बीचमें ही उडा दी जाती है ।

अपने परिवार के मनुष्य सुखी हैं कि दुःखी? यह जानने की भी जिनको फुरसद नहीं है ऐसे लोग जगतको क्या सुखी बना सकते हैं?

जीवनकी सुसाधना में श्रद्धा न हो तो जीवन बिगड जाता है । घासकी गंजीमें अग्निकी छोटी भी चिनगारी गंजीको जला देती है । उसी प्रकार श्रद्धा विना का जीवन जोखम में पडता है । श्रद्धाकी ज्योतको जलती रखनेके लिये प्रयत्नशील बनो तो कार्य सिद्ध अवश्य ही होगा ।

जैनशासन को प्राप्त हुये जैन जगतके आधार स्थंभ समान एक आचार्य महाराज के जीवन में सब कुछ था

किन्तु एक श्रद्धा नहीं थी। एक श्रद्धाके अभावसे जीवन कितना विगड जाता है उसका ये नमूना जानने जैसा है।

अषाढाचार्य नामके ये आचार्य खूब ही विद्वान और तपस्वी थे। अनेक शिष्यों के ये गुरु थे। लेकिन किसी कमनसीब पलमें ये श्रद्धा भ्रष्ट हो गये।

बात यों है कि उनका एक शिष्य मरने लगा। मरते समय उनने उसके पाससे वचन लिया था कि देवलोक में जाने के वाद मेरी खबर लेना और मुझे कहने योग्य कहके मेरी सेवा करना।

मृत्यु पाके देवलोक में गये ये शिष्य गुरुके वचनको भूल गये। गुरुको शंका हुई कि शिष्य चारित्रवान होनेसे देवलोक में ही गया होना चाहिये। परन्तु वह आया नहीं। इसलिये मुझे लगता है कि देवलोक जैसा कुछ होगा कि नहीं? ये निश्चय से नहीं कहा जा सकता।

संजोगवशात् तीन चार शिष्यों के पाससे भी एसे वचन लिये थे। फिर भी देवलोक में जाने के वाद शिष्य ये वचन भूल गये। और कोई भी नहीं आये। इससे अपाढाचार्य की शंका दृढ वनी। और मनमें निश्चय किया कि देवलोक जैसा कुछ भी नहीं है। इसलिये धर्मध्यान तप संयम वगैरह सब मिथ्या है। धर्म श्रद्धासे चलित हो के एक रात साधुता को त्याग के घर तरफ चल पडे।

देव हुये चौथे शिष्यने ये हकीकत अवधिज्ञान से जान ली। अपना वचन खुद हो नहीं पालने से वहुत दुःख हुआ। लेकिन, आखिर में गुरुको सत्यमार्ग पर लानेके लिये कटिवद्ध वना।

अपनी देव मायाके द्वारा इसने मार्ग में नाटक खडे

किये। जिससे अषाढाचार्य को रास्ता में जाते जाते ऐसा सुरम्य नाटक देखने को मिला। शृंगार रससे तरबोल (तल्लीन) बन गये।

आगे चलते हुये अषाढाचार्य ने एक छोटे किशोरको अलंकारों से सज्ज हुआ देखा। माया देखके मुनिवर भी चलित हो जाते हैं तो फिर अषाढाचार्य का तो कहना ही क्या?

उनके मनमें ऐसा आया कि इस बालक की गरदन मरोड के मार डालूं और इसके सब अलंकार ले लूं तो यहां कोई भी कहनेवाला नहीं है। ऐसा विचार के बालहत्या करके अलंकार उतार लिये।

और फिर आगे जाने पर दूसरा ऐसा ही बालक देखा। उसकी भी ऐसी दशा कर दी।

फिर रास्ते में चलते हुये अलंकारों से सज्ज और गर्भवन्ती साध्वीजी दिखीं। ऐसी साध्वी को देखकर ही आचार्य गुस्से हो गये। तू साध्वी है कि कुलटा? तूने ये क्या काला किया है? साध्वीने भी धीरे से टकोरकी कि महाराज। दूसरों को सीख देनेके पहले अपनी चीज तरफ देखना चाहिये। बोलो। इस पात्रमें क्या भरा है? आचार्य क्या बोले? गुपचुप हो के आगे चले!

वहां रास्ते में बडे सैन्य सहित राजा रानी मिले। युद्ध करने जाते थे रास्ते में मुनिवरको देखके आनन्द को प्राप्त हुये। मुनिवरको गोचरी स्वीकारने का खूब आग्रह किया। परंतु पात्रमें अलंकार भरे होनेसे गोचरी कैसे जा सकते थे? खप नहीं है। ऐसे बहुतसे बहाने

काढे । लेकिन राजाने खूब ही आग्रह करके गोचरी ले जानेके लिये हाथ पकडा ।

मुनिने पातरां की झोली को वगलमें दवा रखने का बहुत ही प्रयत्न किया । लेकिन, पाप छिपा रह सकता नहीं है । खेंचाखेंच में झोली टूट पडी । पातरां जमीन पर पड गये । और उसमें से घरेणां (अलंकार) वाहर आये ।

अरे । ये तो हमारे गुम हुये दो पुत्रों के ही अलंकार हैं । इसलिये तुमने ही हमारे पुत्रों को मार डाला है ।

पोल खुल जानेसे मुनिको वहुत ही पछतावा हुआ ।

इतनेमें यह सव लीला वन्द करके वह शिष्य हाजिर हुआ और आचार्य को सव वात समझा दी ।

अषाढाचार्य को अपनी भूलके लिये पछतावा हुआ । फिरसे महाव्रत अंगीकार करके मोक्षगामी वनें ।

इसलिये समझो कि जीवन में धर्मश्रद्धा आये विना धर्म नहीं होता है । श्रद्धा विना जीवनभर तप करो तव भी नहीं फले और श्रद्धा पूर्वक थोड़ा भी करो वह भी महालाभ को देनेवाला हो । श्रद्धा यह जैन शासन का दीपक है ।

किए हुए कर्म किसीके भी छूटते नहीं हैं ।

सती कलावती गर्भवंती थी । प्रसूति के लिये पियर से आमन्त्रण आया । साथमें इसके भाई जयसेनने वहन के लिये दो वेरखा (वाजूवन्ध) भेजें । वेरखा की सुन्दरता देखके सखियोंने प्रशंसा करते हुए पूछा कि यह किसने भेजें ? प्रत्युत्तर में कलावतीने कहा कि मेरे व्हाला (प्रिय)

ने भेजें। शंखराजा के कानमें यह शब्द पड़े। व्हाल
से इसे शंका उत्पन्न हो गई। शंकामें मनुष्य की
भ्रष्ट हो जाती है। विवेकबुद्धि मन्द पड़ जाती है
है कि वहम का कोई औषध नहीं है। क्रोध-क्रोधमें
सेवकों को आज्ञा करदी कि रानीको मधरात में
ले जाके दोनों बेरखा सहित इसके कांडा (हाथ
डालो और कांडा यहां हाजिर करो! सेवकोंने अ
पालन किया।

कांडा कट जाने से भयानक जंगल, निर्जन
पेटमें गर्भ, प्रसूतिका समय, इन सब संजोगोंमें व
हैयाफाट रोने लगी, इतनेमें तो नदी की सुकोमल
पुत्रका प्रसव हुआ लेकिन हाथोंके बिना पुत्रको कै
प्रसूतिकार्य कौन करे? इसने मनमें दृढता रखके ह
पूर्ण भावनासे शासनदेवी की प्रार्थना की। सच्चे
की गई प्रार्थना फले बिना नहीं रह सकती है
तापस इसकी मददमें आया। रानीको आश्रममें ले
इतना ही नहीं बल्कि पूरा वातावरण बदल गया
नदी पानीसे भरके बहने लगी। हाथके कांडा फिर
गये। दुःखकी वर्षा सुखकी वर्षामें बदल गई।

उस तरफ सेवकोंने रानीके काटे हुए कांडा
सहित राजाके सन्मुख हाजिर किये। बेरखा के
अंकित किया राजाने जयसेन का नाम पढ़ा। जय
कलावती का भाई होता है और बहनको भाई तो
व्हाला (प्रिय) होता है।

आवेशमें आके खुद किये दुष्कृत्य पर खूब पश्

मन्त्रीने रोका। मन्त्रीने कलावती की तपास कराके पता प्राप्त किया और आदरपूर्वक ले आये। बाजते गाजते बहुत ही सन्मान पूर्वक रानीको नगरप्रवेश कराया।

एक दिन कोई महाज्ञानी मुनिराज उस नगरमें पधारे, राजाने उनके पास पूर्व वृत्तान्त का निवेदन किया। ज्ञानी मुनिने उनका पूर्व भव सुनाया।

मुनिराजने कहा कि हे राजा! तू पूर्व भवमें पोपट (तोता) था। कलावती राजकुँवरी थी। खुदको मनपसंद तोता न उड़ जाय इसलिये कुंवरीने उसकी दोनों पाखें (पंख) कटा डाले। वह सब विगत विस्तारसे समझाई।

इस भवमें तुम्हारा दोनोंका संबन्ध पति-पत्नी के रूपमें हुआ। किन्तु पूर्व भवके कर्मों के कारण कलावती के कांडा काटे गए। यह पूरा वृत्तान्त जानके राजा-रानी प्रतिबोध को प्राप्त हुए। संसार छोड़के आत्मकल्याण के पंथमें संचरे।

नजर से देखा भी खोटा हो सकता है तो सुनी हुई बात पर एकान्त से विश्वास कैसे रखा जाय। इसलियें बोलते हुए खूब विचार करना।

एक मुनीम शेठके चौपड़ा (खाता) खोटे लिखें तो ये भी पापका भागीदार होता है।

कलावती अपने सिर पर आए कष्टके समय नवकार गिननेमें तदाकार थी। नवकारमंत्र पर वह खूब श्रद्धालु थी इसीलिये उसे सहायता करने के लिये देव दौड़ आए।

आजकी मान्यता ऐसी है कि जिसके पास पैसा अधिक वह सुखी अधिक। भूतकाल में पैसा नहीं था।

भूतकाल में तो जो संतोषी और धर्मी हो वही सुखी कहलाता था।

हाथीके दांत चबाने के जुदे और खाने के जुदे होते हैं इसी प्रकार लुच्चा आदमी की बातमें और वर्तन में फेरफार होता है।

दुःखी को देख करके हृदयमें जिसके दया नहीं प्रगटे वह मनुष्य नहीं है। धनसे सुखी मनुष्य भी जो असंतोषी हो भिखारी से भी महा दुःखी कहलाता है।

जब जब विषय रस बढ़े तब यह मानना कि दुःख आनेकी निशानी है।

जगतके सभी जीवोंको शासन का रसिया बनने की भावना तीर्थंकर नामकर्म का बन्ध करने वाली होती है और अपने कुटुम्बीजनों को शासन का रसिया-आराधक बनाने की भावनासे गणधर नामकर्म बंधता है। नामकर्म की प्रकृतियों में गणधर नामकर्म जुदा बताया है परन्तु तीर्थंकर नामकर्म के अन्तर्गत समझना।

अपने पूर्वजोंने जो मन्दिर आदि बनायें हैं उनको रक्षित रखना अपनी फर्ज है। नये बंधाने की अपेक्षा पहले पुराने मन्दिर के जीर्णोद्धार का लक्ष होना चाहिए क्योंकि उसमें लाभ अधिक है।

इन्द्रियों के विषयसुख खराब हैं। इन सुखोंमें नहीं फंसना चाहिए। जो दुःख आता है वह कर्मजन्य है यह समझने के बाद दुःख हैरान नहीं करता है।

कर्म खिपाने के लिये सुन्दर सामग्री होनी चाहिए सुंदर साधन होने चाहिए और सुंदर स्थान भी चाहिए।

अभी तक जितने मोक्ष गये हैं वे सब मानवजन्म को प्राप्त करके ही गए हैं और भविष्य में भी मोक्षमें जाने वाले मानव जन्मको पाकर के ही जायेंगे।

जिसने तुम्हारा बिगाड़ा हो वह तुम्हारे सामने आवे तब तुम्हें क्या विचार आयेगा?

सालेको मार डालूं ऐसा ही विचार आयेगा कि नहीं?

पण्डित मनुष्य एसा नहीं बोलेगा कि मैं पण्डित हूं। बड़ा मनुष्य एसा नहीं कहेगा कि मैं बड़ा मनुष्य हूं और जो कहे तो समझना कि इसमें कुछ भी कस तत्त्व नहीं है।

धर्माराधना में इतनी शक्ति है कि पुन्य मांगने की जरूरत नहीं होती है। विना मांगे भी पुन्य बंधता जा रहा है।

आराधना करने से जितना होगा इतना सुख अपन को मिलने वाला ही है। और अंत में शिवपुर में ले जायगा।

आराधक आत्माओं को संकट के समय संकट को दूर करने के लिये देव हाजिर ही रहते थे। क्योंकि आराधकों की पुन्य प्रकृति तेज थी।

नियाणा वांधने की शास्त्र में मनाई है। क्योंकि नियाणा वांधने से एक वार तो सुख मिलता है लेकिन फिर दुर्गति में जाना पडता है।

मांग के पुन्य करना ये अज्ञान दशा की निशानी है। आराधना करने से मांगे विना भी ऊँचे से ऊँची पुन्य प्रकृति बंधती है।

तीर्थंकर परमात्मा की तीर्थंकर भवमें होने वालीं

तमाम प्रवृति कर्म निर्जर करने वाली ही होती है। परन्तु उन परमात्मा का जीवन ज्ञान प्रधात होता है। और अपना जीवन आज्ञा प्रधान होना चाहिये।

उपधान की माला ये सभी मालाओं में उत्तम माला है। क्योंकि उपधान तप ये साधुता की (सर्व विरति-पणा) की वानगी है.।

तीर्थंकर भगवान जब बालक होते हैं तब उन्हें खिलाने के लिये देव भी आते हैं।

भगवान ऋषभदेव के लग्न इन्द्र महाराज ने आके किये थे। तभी से लग्न प्रथा चालु हुई। लोक व्यवहार को बताने वाले आदिनाथ प्रभु हैं।

पुत्र पुत्री के लग्न होना हो तो दो महीना पहले से घर में बाईयां काम करती जाये और गीत गाती जायें राग की कितनी पराधीनता ! यह पराधीनता जबतक नहीं जायं तबतक ये सब लग्न कर्म बन्धन में हीं निमित बनने वाले हैं। परन्तु धर्मी आत्मा समझे कि संसार में बैठा हूं। इसलिए करना ही पड़ेगा। इसलिए करता हूं। परन्तु भावना को टिका रखने के लिए उस प्रसंग में साथ साथ में प्रभु भक्ति के निमित्त जिन मन्दिर में महो-त्सव चालु रक्खा जाय तो करने पडते संसारी कार्यों से होने वाले कर्म बन्धन की तीव्रता से बचा जा सकता है।

साधुपना लेने के पीछे भिक्षा लेने कौन जा सकता जो गीतार्थ हो, दश वैकालिक के पांच उद्देशा का जानने वाला हो, पिन्ड निर्युक्ति आदि का जिसे ज्ञान हो।

इसलिए गीतार्थ की गोचरी कल्पे। अगीतार्थ की गोचरी न खपै और वापरे तो दोष लगे।

कोई बहन अपनी सन्तान को स्तन पान कराती हो तो गोचरी को गए साधु पीछे फिर जाते हैं। लेकिन गोचरी वहोरे नहीं। यह साधु की समाचारी है। कच्चे पानी से आंगन भींगा हो और हरी चीज बीचमें पडी हो तो भी गोचरी को नहीं जाया जाता है। गोचरी लेते समय साधु की नजर नीची होती है। गोंचरी सिवाय अन्य बातें वहां नहीं हो सकती। दूसरी बातें करने लगे तो गुरू की आज्ञा भंग का दोष लगे।

भूतकाल में एक साधु महाराज गोचरी के लिए गये थे। वहां उनकी नजर कामिनी के ऊपर पडी। कामिनी के नयन के साथ नयन मिलन से काम विकार जागृत हुआ।

पहले आंखों में जहर फैला। फिर वाणी से जहर फैला। इस तरह से मुनिके मन का पतन हुआ। महा-संयम को वे भूल गए।

अषाढ़ भूति नाम मुनिराज एक नट के दरवाजे भिक्षा के लिए जाकर खडे रहे। रूप सुन्दर एसी दो नट कन्याओं ने मुनि को भाव से मोदक वहोराया। मोदक की मोहक सुगन्ध से मुनि रसनेन्द्रिय की लालच में पड़ गए।

यह लाडू तो पहले गुरू को देना पडेगा इसलिए लाओ ने दूसरा ले आऊ। एसा विचार के वेश पलटा करके दूसरा लाडू ले आये। यह दूसरा लाडू तो गुरूके बाद के साधुओं को देना पडेगा इसलिए तीसरा ले आऊ एसा विचार करके वेश पलटा करके तीसरा लाडू ले आये। इस तरह चौथी बार भी वेश बदलकर अषाढ-भूति मुनि लाडू ले आये।

झरोखे बैठे नट कन्या के पिताके द्वारा वेश परिवर्तन द्वारा बारबार आते हुए मुनिराज का यह कार्य देख लिया।

उसने पुत्रियों से कहा कि यह साधु अभिनय विद्या में कुशल लगता है। इसे खुशकरके तुम्हारा स्वामी बना लेने लायक है।

रूप सौन्दर्य में मुग्ध बने अषाढ भूति रोज यहां आने लगे। सुन्दरियों उन्हे वशकर लिया।

आखिर मुनि ने दीक्षा छोड़कर गुरू के पास लग्न करने की आज्ञा मांगी। गुरू को बहुत आघात लगा। फिर भी जाते जाते एक शर्त की किन्तु मांस मदिरा को हाथ नहीं लगाना। और उनके उपयोग करने वाले का संग नहीं करना।

इतनी भी गुरू की आज्ञा को उसने स्वीकार कर लिया। और इन कन्याओं को भी मांस मदिरा त्याग कराके उनके साथ परन्या (शादी करली)।

नृत्य नाटक संगीत वगैरह कलाओं में रात दिन मग्न रहने लगे। एक दिन परदेस से आये नाटककार ने राजा के पास चेलेन्ज (पडकार) फेका कि मुझे कोई हरा सके एसा कोई नाटककार हो तो मेरे सामने हाजिर हो।

राजा ने आषढभूति को बुलाया। खेल की तैयारी हुई। अपना स्वामी तो नाटक पूरा करके सुबह आयेगा एसा समझकर दोनों स्त्रीओं ने खूब शराब पीली। मांस भक्षण किया। क्योंकि अषाढ भूति की शरत के अनुसार उन्होने बहुत दिनों से इस चीज का उपयोग नहीं किया था।

और आज छिपी रीत से उनका उपयोग करने का उनको मौका मिला था। दारू (शराब) का नशा उनको खुब चढा, देह का भान नहीं रहा। वस्त्र अस्त व्यस्त हो गये। उल्टीयां होने लगी और इसी गन्दगी में लोटती पडी रही।

अकस्मात नाटक बन्द हुआ और अषाढभूति घर आया। अपनी पत्नियों का एसा वर्तन देखके तिरस्कार उपजा। एसी स्त्रीओं का संग नहीं चाहिये एसा निश्चय कर लिया।

नशा उतरते ही स्त्रीयां भान में आई। पति के निश्चय का ख्याल आते ही पश्चाताप करने लगी। लेकिन अब क्या हो सकता था।

उनकी आजीजी (प्रार्थना) से एक नाटक भजके उसकी तमाम आमदनी इन लोगों को देकर चले जानेका विचार अषाढभूति ने किया।

भरत चक्रवर्ती का खेल भजा जा रहा था। राजा, रानी तमाम नगरजन नाटक देख कर मुग्ध बनते जा रहे थे।

इसमें से अरीसा भवन (दर्पण भवन) में से जैसे अंगूठी निकल जानेसे भरत महाराज को केवलज्ञान हो गया था उसी तरह इस नट अषाढभूति को भी एसा ही केवलज्ञान हो गया। पांचसौ राजकुमारों के साथ उनने फिरसे संयम स्वीकारा और आत्मसाक्षात्कार किया।

श्रेणिक राजा के पुत्र नन्दिषेण एक दिन भगवान महावीर की वाणी सुनके संयम लेनेको उत्सुक हो गये। भगवानने चेतावनी दी कि अभी तेरे भोगावली कर्म का

उदय बाकी है। भगवान की बात पर लक्ष नहीं देते दीक्षा ली! अनेकविध तपश्चर्यायें करने से कुछ ऋद्धियां भी प्राप्त हुई।

छट्ठके पारणामें एक दिन भिक्षाके लिए निकले। एक बड़ी हवेली देखके उसमें घुसे, धर्मलाभ दिया। इनको खबर नहीं थी कि यह तो गणिका का निवास है। गणिकाने म्हेणां मारा कि महाराज! यहाँ धर्मलाभ का काम नहीं है। यहाँ तो अर्थलाभ का काम है। एसा कुछ कर सकते हो तो बताओ। मुनिको गणिकाके इस म्हेणां से गुस्सा चढ़ गया। अपनी शक्ति के प्रताप से गणिका का घर धनके बरसाद से भर दिया। गणिका आश्चर्यमुग्ध बन गई। उसने सब कलाओंसे खुश करके मुनिको अपने पास रख लिया।

मुनि नन्दिषेण को अपनी तोफानी प्रवृत्तियां समझाने की जरूरत थी। वे गणिका के रहते थे फिर भी उनने प्रतिज्ञा ली कि रोज कमसे कम दश मनुष्यों को दीक्षा के पंथमें लगा के फिर भोजन करना। एसा करते करते बारह वर्ष बीत गये। एक दिन दोपहर तक नव मनुष्यों को प्रतिबोध किया। लेकिन दशवाँ एक सोनी (सुनार) तैयार नहीं हुआ। जीमने का समय हो गया था। भोजनवेला बीत गई थी। लेकिन की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार दशवें को प्रतिबोधन दे तब तक किस तरह से जीमे? गणिकाने ठंडी हो रही रसोई तीन तीन वक्त फेंक दी। चौथीवार रसोई बनाके खुद नन्दिषेण को बुलाने गई। और उतावल से कहा गया कि दशवाँ कोई प्रतिबोध न प्राप्त करता हो तो दशवाँ तुम खुद तो हो।

हंसते हंसते हो गई मश्करी नन्दिषेण के हृदयमें उतर गई। इनको लगा कि अब फिरसे संयम के मार्ग जाने का समय पक गया है।

गणिका तो रोती ही रही। और मुनिवर चल निकले। बनाये हुये भोजन पसे के पसे ही पडे रहे। प्रभु महावीर के चरणमें पुनः विराज के मुनि नन्दिषेण ने जीवन सफल करने का प्रयाण किया।

वेश्याने खूब समझाया प्रार्थनायें की मगर नन्दिषेण ने नहीं माना। क्योंकि उनके भोगावली कर्म पूरे हो गये थे। वेश्याके संग का त्याग करते हुये देर नहीं लगी।

चले प्रभुके चरणमें। आके चरणमें भाव पूर्वक नमस्कार किया। पुनः दीक्षा लेके आत्म साधना में तदाकार बन गये।

वेश्याको तो कल्पना भी नहीं थी कि पसे एक शब्दसे पसा हो जायगा। वेश्या खूब पश्चात्ताप करने लगी। भूल होना ये सहज है किन्तु हो गई भूलका पश्चात्ताप करना असहज है।

जिस आत्माको पश्चात्ताप हो जाय वह आत्मा धन्यवाद के पात्र है। उग्र तपश्चर्या के द्वारा आत्माको निर्मल बनाने के लिये नन्दिषेण लयलीन न हो गये।

इसी तरह अपन भी कल्याण के पंथके अनुगामी बनें यही मनो कामना।

व्याख्यान—छब्बीसवां

अनंत उपकारी तारक श्री जिनेश्वर देवों नें धर्म का जिस तरह से उपदेश किया है, उस तरह से जीवन में उतरने वाले बने तो आत्म कल्याण दूर नहीं है।

प्रशस्त कषाय को करने का आदेश है। विष्णु-कुमार ने नमुची को दबा के प्रशस्त कषाय किया था।

उत्सर्ग और अपवाद को जाननें वाला हो वह गीतार्थ कहलाता है। संसार का रस जबतक कम नहीं होगा तबतक शासन का रस नहीं आता है। ज्यों ज्यों शासन रस बढे त्यों त्यों समकित आने लगे।

तुम्हें तुम्हारे परिवार पर प्रेम है। और परिवार को तुम्हारे ऊपर प्रेम है। यह संसार का रस है। इससे कर्म बन्धते हैं।

हाथी के पीछे कुत्ते बहुत भोंकते रहते हैं फिर भी हाथी तो मलकाता मलकाता चला ही जाता है। घब-राता नहीं है। इसी तरह महापुरुषों की पीठ पीछे निन्दक निन्दा करने वाले ही है। परन्तु उस निन्दा से घबराये बिना अपने शुभ कार्यों में सज्जन तो अडिग ही रहने वाले हैं।

महापुरुष सुन्दर मार्ग को केवल बातों से नहीं बताते हुए आचरण से बताते हैं। सुन्दर आचरणमय जीवन बनाओ इससे दुनिया में महापुरूष तरीके प्रख्याति हो जायगी।

धर्म की आराधना करते करते जो विराधना हो जाये तो कर्म बन्धते हैं।

तामली तापस ईशानेन्द्र बना है। वहांसे महा विदेह में जायगा। वहां से दिक्षा लेके आराधना में तदाकार बनके मोक्ष में जायगा।

अपने धर्म में भी जिसे पूण रूचि हो उसका नम्बर चरमावर्ति में आता है। धर्म रूचि भी भाग्य के बिना नहीं हो सकती है। धर्मरूचि वाला आत्मा जो धर्म न कर सके तो उसका उसे पश्चाताप रहता है।

अपन मरके किस गति में जाने वाले हैं? उसका सामान्य पनेसे अपन ख्याल कर सकते हैं क्योंकि जीवन में अपलने पुण्य-पाप कितने किये हैं वे अपन जान सकते हैं।

जिस कालमें जो वस्तु बननेवाली होती है उसे कोई मिथ्या नहीं कर सकता है।

देवोंको छः महीना पहले अपनी मृत्यु की खबर हो जाती है क्योंकि उस समय उनके गलेमें रही फूल की माला कुम्हला जाती है।

नूतन देरासर (मन्दिर) बनवानेकी अपेक्षा जीर्णोद्धार में अष्टगुणा लाभ होता है।

निरतिचार श्रावक धर्म की आराधना करने से ईशानेन्द्र हो सकता है। ईशानेन्द्र उत्तर का अधिपति है। शक्रेन्द्र दक्षिणका अधिपति है। यह दोनों मिल के काम करते हैं। अगर दोनोंमें किसी समय वादविवाद खड़ा हो जाय तो सनत्कुमार देवलोक के इन्द्र आकर के समाधान करा देते हैं।

अल्पसंसारी, बहुसंसारी, अनन्त संसारी और चरमावर्ती इस प्रकार जीव चार प्रकारके हैं ।

कितने जीव तो सुलभबोधि होते हैं और कितने ही जीव दुर्लभबोधि होते हैं !

निरतिचार धर्म करनेवाले को आराधक कहा जाता है । चौसठ इन्द्र समकिती ही होते हैं ।

भगवानकी भक्ति दो तरह से होती है । आत्माको रंजन करने के लिये और लोकरंजन करने के लिये । उसमें आत्माके रंजनको की जानेवाली भक्ति ही सच्ची भक्ति है ।

चौसठ हजार सामानिक देव भगवान पर्षदा का रक्षण करने के लिये और भगवानकी भक्ति करने के लिये आते हैं । देव देवी भगवानको आके कहते हैं कि हे भगवन् ।

हम आपके समक्ष नाटक करना मांगते हैं । तब भगवान कुछ भी नहीं बोलते हैं । मौन रहे । क्योंकि भगवानको भक्ति नहीं चाहिये । सेवक की फर्ज है कि भगवानको कहे विना भी भक्ति करे ।

इसी प्रकार गुरुकी भक्ति के विषयमें भी शिष्यको समझ लेना चाहिये ।

कपूरचन्द नामके एक शेठ थे । वे सुबह किसी गाँवसे आ रहे थे । वहां गाँवके पादरसे (अगीवरी भाग) रास्ता की तरफसे खाडामें से (गड्ढेमें से) उनके कान पर गिन्नी की आवाज आई । वह आवाज सुनके शेठ एक वृक्षकी आडमें छिपकर यह क्या हो रहा है ? यह देखने लगे ।

वहां पासके गड्ढेमें एक बाबा संडास जाते जाते एक-दो-तीन-चार-पांच-छः-सात-आठ-नव-इस प्रकार तीन दफे गिन्नीं गिनता था।

शेठने यह सब देखा। बाबाने नवकी नव गिन्नियां गिनके अपनी जटामें बराबर बाँध लीं।

बाबाको ये डर था कि इस समय के सिवाय अगर किसी दूसरे समयमें गिनी जायें तो कोई देख ले। इसलिये जब सुवह संडास जाय तब उसकी चारों ओर देख ले तपास कर ले पीछे जटामें से गिन्नियां काढ के, गिनके, सम्हालके पीछे जटामें रख देता था।

बाबा तो था अलखनिरंजन। लंगोटी के सिवाय शरीर पर कुछ भी कपडा पहनता नहीं था। इसलिये गिन्नी दूसरी किस जगह रखे? अपनी जटामें छिपाके रखता था।

इस तरफ बाबाने नौ गिन्नियां गिनके पीछे जटामें पेक कर लीं यह सब यह शेठ देख गया।

बाबाजी खडे हुये कि चुपके चुपके टुका रास्ता से होकर गाँवके दरवाजे पहले से ही पहुंच गया। और कुछ शोधता हो इस तरह फांफला फांफला (घवराई नजरसे) चारों तरफ देखने लगा। इस बातको उस बाबाको कुछ भी खबर नहीं थी इसलिये सीधे बाबाजी चले जा रहे थे उनकी तरफ शेठ दौडा। और सीधे बाबाजी के चरणमें ढल पडा।

बाबाजी तो आश्चर्य करने लगे। इतने में तो शेठने खडे हो के कहना शुरू किया कि हे महाराज! आज मेरा स्वप्न फला। बाबाजीने कहा बच्चा किसका स्वप्न

फला ? उस वनियाने कहा कि महाराज । आज मुझे सुवहसें उठती वेलामें एसा सुन्दर स्वप्न आया था कि मैं किसी भी साधु महात्मा को जिमाये विना जीमता नहीं हूं । और एसे साधु महात्मा भी सडकमें नही जडते । परन्तु आज स्वप्नमें मुझे कहने में आया कि तू उठ करके शीघ्र ही दरवाजा के वाहर जाना ।

वहां एक महान योगी तुझे मिलेगा । उनको वडे सन्मानपूर्वक तू तेरे घर तेड ले आना । और भक्ति करना । इससे तू खूब सुखी हो जायगा । इसलिये यह स्वप्न सच्चा होगा कि खोटा इसका विचार करता हुआ मैं खडा था । इतने में तो आपको आते हुये देखा । और मेरा मन आनन्द से नाच उठा ।

हे महाराज । मेरा स्वप्न फला । इसलिये आप दूसरी किसी भी जगह नहीं जाके सीधे सीधा मेरे घर पर ही पधारो । और मेरा घर पावन करो । महाराजको भी एसाही चाहिये था । क्योंकि उनको गाँवमें फिरते फिरते पेट पूरता भी खाना नहीं मिलता था ।

और एसी भक्ति से सामनेवाला तेडने आया है तो एसा अवसर कैसे चुकाया जा सकता है ? एसा मानके महाराजने कहा कि वेटा ! चल मैं तेरे घर ही सीधा आता हूं । शेठ दोनों हाथ जोडके आगे चले । और वावाजी चले पीछे । घर आके शेठने शेठानी से कहा कि सुनती है कि ? आज अपने घर वडे महात्मा पधारे हैं । आज अपना आंगन पावन हो गया । इसलिये टुवाल, साबुन, और पानी की डोल ले आ ।

शेठानी तो विचारमें पड गई । किसी दिन नहीं: किन्तु आज इनको ये हेत कैसे उभरा गया ?

"लालो लाभ विना लोटे नहीं" इसलिये जरूर कुछ न कुछ दालमें काला है। लेकिन अभी कुछ भी नहीं पूछना है। फिर पूंछूगी। एसा विचार के उस स्त्रीने तुरन्त ही सब वहां हाजिर कर दिया।

मोरके अण्डोंको तो कहीं चितरना पड़ता है? इस तरफ खुद शेठने महाराज के पैर धोये, लूंछे ओर पलंग पर बैठाया। फिर अपनी स्त्रीसे कहा कि सुन! मूंगके आटेका घीसे भरा हुआ शीरा (हलुवा), भजिया, पुरी, दाल-भात, साग अच्छे से अच्छा जल्दी बना। यह सुनके महाराज के मुंहमें तो पानी आ गया। थोड़ी देरके बाद रसोई तैयार हुई।

चाँदीकी थाली कटोरीमें रसोई परोसके महाराज को जीमने बिठाये। कपूरचन्द और उनकी पत्नी खड़े होकर उनकी भक्ति करने लगे। आग्रह करके महाराज को जिमाने लगे।

महाराजने जितना खाया गया उतना खाया और दो-तीन दिनकी भूख दूर की। शेठने जिमाने के बाद मसाला से भरपूर सुंदर पान खिलाया। महाराज एसा भोजन कभी जीमे नहीं थे इसलिये जीम करके शेठ-शेठानी पर खुश खुश हो गए।

जीम लेने के बाद कपूरचन्द शेठने दो हाथ जोड़के महात्मा से कहा कि महाराज! हमतो रहे संसारी लेकिन मेरा मन तो तुम्हारे पास से क्षण भी दूर होना नहीं चाहता है परन्तु दुकान लेके बैठा हूं इसलिये घण्टा दो घण्टा दुकान पर जाके वापस आता हूं तबतक आप मजे से पलंग पर आराम करें।

घरकी पत्नीको भी शेठने सूचना कर दी कि महाराज आराम कर रहे हैं इसलिये कोई भी रूममें नहीं जावें और न आयें। आवाज भी कोई नहीं करे एसा कहके शेठ तो दुकान पर चले गए।

महाराज भी खुदको पेट भरके अच्छा अच्छा खाना मिलने से और सोनेके लिये सवामन रूईकी गादीवाला पलंग मिलनेसे मनही मनमें आनन्दित वन गए। महाराज पलंग पर सोए कि नहीं सोए इतनेमें तो नसकोरां बोलने लगे (घुर्राने लगे) यानी एसे सोए कि उनकी नाक के छिद्रोंमें से जोर-जोरसे आवाज आने लगी।

आधा घण्टा पूरा भी नहीं हुआ था कि इतनेमें तो कपूरचन्द शेठ खूब गुस्से होते हुए और चिल्लाते हुए वापस घर आए और उनकी स्त्रीसे कहने लगे कि जहाँ महाराज सो रहे हैं उस कमरेमें एक गोखला (आला) के अन्दर मैंने नव गिन्नियाँ रक्खी थी वे कहाँ गई?

स्त्रीने कहा मुझे खबर नहीं है, एसा जवाव मिलते ही शेठका गुस्सा आसमान पर चढ़ गया और हाथमें जो चीज़ आई उससे शेठानीको मारने लगे।

घरमें तो धमाचकड़ी मच गई और शेठानी बूमबराडा पाडने लगी यानी चिल्लाने लगी। मैं मर गई, बचावो! बचावो!

शेठानी का चिल्लाना सुनके आसपास मोहल्ला के पच्चीस पचास मनुष्य इकट्ठे हो गए और शेठको शान्त करके पूछने लगे कि हुआ है क्या? वह वात तो करो!

शेठने कहा—क्या वात करूं? मेरा कपाल! मैं मेरे रूमके अन्दर के गोखलामें नव गिन्नियाँ रखके गया था।

दुकानसे आके तपास करता हूं तो गिन्नियाँ गुम ! वैरीमें यानी पत्नीमें कुछ भी ठिकाना नहीं है। वह घरमें थी फिर भी ध्यान नहीं रक्खा कि गिन्नियाँ कौन ले गया ? क्या गिन्निको गोखला निगल गया एसा कहके कपूरचन्द शेठने लकड़ी का एक घा महाराज जिस पलंग पर सोते थे उस पलंगके एक पाया पर किया।

लाकड़ी (डंडा)का धडाका होते ही महाराज जग गए। शेठने कहाकि हमारे यहाँ आज सुवहसे ही यह महात्मा पधारे हैं। मैंने इनकी जितनी वन सकी भक्ति भी की है। इस रूम (ओरडा) में वे सो रहे हैं, वे तो कहीं गिन्नीयाँ ले सकते ही नहीं हैं ! और अगर उन्होंने ले भी ली हों तो उन्हें रक्खे कहाँ ?

नींदमें से एकदम जग गए महाराज वावाजी तो यह सब धमाल देखके घवरा गए।

इतने में तो शेठने इकट्ठे हुए मनुष्यों से कहा कि शायद तुमको इन महाराज के ऊपर शक आता हो तो उनके पास जटा सिवाय गिन्नीयाँ रखने का कुछ भी साधन नहीं हैं इसलिये मैं खुदही महात्मा की जटा तपास लेता हूं ऐसा कहके शेठने वावाजी की जटा पकड़ के झटका मारा इतनेमें खरर करतीं नव गिन्नियों का ढगला (ढेर) हो गया।

गिन्नियाँ सबने गिनी तो वरावर नव ही हुईं, फिर तो लोग पकड़में रहे ? कोई लात, कोई मुक्का, कोई थप्पड इस तरह जिसे जो आया जैसा ठीक लगा उससे वावाजी को मैथीपाक चखाने लगे यानी मारने लगे।

महाराज खूब चिल्लाने लगे किन्तु उनका सुने कौन ?

और जो आया वह कहने लगा कि साला, लुच्चा, चोर, लफंगा, ठग एसे शब्दों के साथ बाबाजी को पीटने लगे ।

सभी कहने लगे कि बिचारे शेठने आगता स्वागता करके इसे घर लाये, सेवा-मिठाई खिलाई और इस शेठके घरही इस सालेने हाथ मारा इसलिये ठगको तो छोड़ना ही नहीं, पोलीस को बुलाके पकड़ा ही दो ।

बाबाजी को मार मारके बिचारे का खाया पिया सब लोगों ने उका लिया ।

महाराज बहुत ही प्रार्थना करने लगे किन्तु अधिक मनुष्यों में उनकी सुने कौन ?

अन्त में सेठ ने कहा कि देखो भाई ! मनुष्य मात्र भूल के पात्र है । कैसा भी हो लेकिन फिर भी है तो साधु ! उसने को भूल की सजा उसे मिल गई है । अब तो एसी भूल करने का नाम ही भूल जायगा इसलिये अब जाने दो ।

बडी मुश्किल से महाराज बचे, सब मनुष्य भी अपने अपने घर चले गये । फिर से सेठानी को याद आ गया कि "लालो लाभ विना लौटे नहीं" ।

संसार में सुख ये आश्चर्य है, और दुख ये वास्तविक है । इस दुख को दूर करने के लिए साधुपना है ।

जीवन में न्याय नीति आवश्यक है । एसा धर्म शास्त्रकार कहते हैं । धर्मके रक्षण के लिये जीवन का बलिदान भी देना पडे तो देना चाहिए । एसा शास्त्रकार कहते हैं ।

संसार के रसिया को मोक्ष का ज्ञान नहीं हो सकता है।

संसार का सुख दुख रूप लगे विना मौत नहीं मिल सकता है।

भूख लगती है इसलिये खाना पड़ता है। प्यास लगती है इसलिये पानी पीना पड़ता है। इसी प्रकार भोग की इच्छा से भोग भोगना पड़ते हैं। यह सब कर्म की लीला है। एसा विचार करते हो जाओ।

संसार में मजा करते करते समकित प्राप्त कर लेंगे यह वात में कोई मजा नहीं है।

अपन चेतन होने पर भी जड़ में फसे हुए है। पूरा संसार पाप में डूबा हुआ है।

भोग की इच्छा वाले के पाससे जव भोग दूर होते हैं तव उसे दुख लगता है। उसी तरह जव धर्मी से धर्म दूर होता है तव उसे दुख होता है।

दुखी मनुष्य साधु के पास आकर दुख का रोना रोवे तो साधु कहे कि हे महानुभाव। पाप का उदय है। इसलिए दुखी हुए हो। अव धर्म की आराधना में मस्त वनो तो दुख चला जायगा।

विषय रस, कषाय रस, मोहरस, संसार रस और स्नेह रस इन सव रसों में लीन वना आत्मा सुखी होने पर भी दुखी ही है। दुखी की दया द्रव्य से की जाती है और सुखी की दया भाव से की जाती है।

माता पिता की भक्ति करने से धर्म प्राप्त होता है। ये भक्ति निस्वार्थ से भरी होनी चाहिये।

समाज सुधार के लिए निकले हुए सुधारकों को

समाज सुधारने के लिए ये नहीं मालूम कि सुधार एसे नहीं हो सकता है। सुधार करना हो तो प्रथम अपना जीवन सुधारना पडेगा।

संसार वर्धक पुरुषार्थ को धर्म पुरुषार्थ नहीं कहां जाता किन्तु मोक्ष प्रापक पुरुषार्थ को धर्म पुरुषार्थ कहा जाता है।

भगवान तो नवकार मय बने होने से नवकार की साधना अपन को भी करना है। जो साधना में लीन बनेंगे तभी अपन नवकार के सच्चे आराधक कहलायेंगे।

जैन शासन में सच्चा समझदार वहीं है जिसे अपनी आत्मा पर दया प्रगट हुई है। अपनी आत्मा अनन्तकाल से जन्म मरण के चक्कर में भटक रही है। उसका विचार करना चाहिए।

सुभद्रा सती के रुप लावन्य से आकर्पित होकर एक युवान ने तय किया कि लग्न तो सुभद्रा से ही करना।

लेकिन कुल में और धर्म में फर्क होने से ये नहीं हो सकता था, लेकिन लग्न जो सुभद्रा के साथ न हो तो जीवन धूल है।

सुभद्रा के प्रति एसी लगन लगी होने से युवान ने तो धर्म परिवर्तन भी किया।

स्वयं जैन धर्म का कृत्रिम उपासक बनके नित्य दर्शन पूजा आदि करने के लिये जाने लगा। जब सुभद्रा मन्दिर में आती थी तभी वह मन्दिर में आता था।

खूब भक्ति भाव करते युवान को देखकह सुभद्रा को उसके प्रति स्नेह जगा। स्नेह आगे बढा। आखिर

उसके माता पिता ने भी सुभद्रा का उस युवक के साथ ही लग्न किया।

कपट युक्त जीवन बनाके युवक ने लग्न करके ये नवयुवान अपनी प्रिया सुभद्रा को लेकर चम्पानगरी में आया।

सुभद्रा ने श्वशुगृह में पग रखे। सुभद्रा समझ गई कि ये तो जैनेतर का घर है। संस्कार विहीन है। कपट भाव से धर्मी बनकर यह युवक मुझे परणा है। (यानी मेरे साथ शादी की है)।

खैर! जो बनना था सो तो बन गया। अब शोक करने से क्या हो सकता है? एसा विचार करके शान्ति से जीवन जीने लगी।

सुभद्रा का धर्ममय वर्तन घर के लोगों को पसन्द नहीं आया। इससे ससुराल में सुभद्रा को नफरत से देखने लगे।

एक दिन एक संत महात्मा सुभद्रा के ससुर के घर गोचरी को आये।

सुभद्राने भाव से वहोराया। मुनि की आंख के सामने देखने से सुभद्रा को मालुम हुआ कि मुनि की आँख में तगखला (तिनका) पड़ा है, और उनकी आँख लाल चोल बन गई है। सुभद्रा ने कुशलता से अपनी जीभ से मुनिकी आँख में से तिनका दूर किया।

लेकिन इसकी कपाल (ललाट) के सिन्दुर का दाग मुनि के कपाल में लग गया।

गोचरी लेके घर बाहर निकलते मुनि कपाल में

तिलक देखके सुभद्रा की सास शंकाशील बन गई। फिर तो घर के सभी मनुष्य सुभद्रा पर जुल्म गुजारने लगे।

सुभद्रा समताभावसे सहन करती थी। इतनेमें तो अचनवी (आश्चर्यजनक) घटना बन गई।

चंपापुरी के चारों दरवाजा बन्द हो गये। मनुष्य अन्दर के अन्दर और बाहर के बाहर रह गये।

इतने में आकाशवाणी हुई कि जो सती होगी वह सूतके तांतण से चालनी को बांधके कुवासें से पानी निकाल के नगर के दरवाजे को छांटेगें तो नगर के दरवाजे खुलेंगे।

अपने को सती स्त्री कहलानेवाली अनेक स्त्रियोंने इस तरह करने का प्रयत्न किया। लेकिन सभी की फजेती हुई। फिर किसीकी भी हिमत नहीं चली।

आखिर में सुभद्राने अपने पति और साससे आज्ञा मांगी। घरके मनुष्यतो इसे कलंकित ही मानते थे। इतनेमें तो मानो दैवी आज्ञा हुई हो इस तरहसे सुभद्रा घरसे निकल पडी।

नवकारमंत्र का स्मरण करते करते उसने देववाणी के अनुसार कुवासें से जल निकाला। दरवाजा के ऊपर वह पानी छांटते ही तीन दरवाजे खुल गये। लोगोंने धन्यवाद दिया। जय जयकार किया।

चौथा दरवाजा इसने जानवूझ के बन्ध रक्खा। शायद कोई कहे कि मैं नगरमें हाजिर नहीं थी। हाजिर होती तो मैं दरवाजा खोल देती। ऐसा अहंकार किसीको न रहे इसलिये चौथा दरवाजा नहीं खुला।

सुभद्रा का चमत्कार देखके पति, सास, वगैरह

लज्जित हो गये। सभीने क्षमा मांगी। परन्तु सुभद्रा को अब संसारमें रस नहीं लगा। दीक्षा लेके सुभद्रा ने जीवन उज्जवल कर लिया।

भगवानके ऊपर भक्ति कब जगती है? भगवानके ऊपर प्रेम जगे तब? भगवानकी भक्ति क्यों करते हो? आत्म कल्याण करने के लिये?

द्रव्य भक्ति किये विना भावभक्ति नहीं आ सकती है।

साधु मन वचन और कायासे धर्म करते हैं। तुम तो चारसे धर्म करते हो। चौथी लक्ष्मी ठीक है ना?

धर्मके महोत्सव देखके तुम्हें आनन्द होता है? कोई भी महोत्व करो नुकशान नहीं। किन्तु आनन्द तो सभीको होना चाहिये।

उत्सव करना, कराना और करनेवाले को अच्छा मानना ये धर्मकी मूल (पाया) की निशानी है।

उपकारियों के उपकार को नित्य याद करना यह अपनी फर्ज है। भूतकाल की सतियों के जीवनको याद करो। मानवलोक में एसी भी सतियाँ थी कि जिनकी परीक्षा देव भी आकर कर गए। उसमें वे उत्तीर्ण हुई तभी उनका नाम शास्त्रमें लिखा गया।

महा सती मदनरेखा का जीवन वृत्तान्त जानते हो? मृत्युको प्राप्त हुए पतिदेव को आराधना कराके देवलोक में भेजती है। तुम्हें अगर एसा प्रसंग आवे तो तुम देव लोकमें भेजो या संसारमें ही रखडाओ?

महानुभाव! शास्त्रमें गाया जाय एसा बनना हो तो गुणियल (गुणी) बनना होगा। गुणियल बने बिनाके नाम शास्त्रों में नहीं लिखे गए हैं।

जैन शासनके प्रत्येक महोत्सव में समकित प्राप्ति, धर्मप्राप्ति आदिके निमित्त रचने में आये हैं।

हमें धर्म अच्छा लगता है एसा बोलने वाले प्रायः पोकल वातें (गप) मारनेवाले होते हैं। एसी पोकल वातों में न आ जाओ।

मदनरेखा राजाकी वातमें आ गई होती तो धर्म न कर सकी होती और सतीत्व भी चला जाता लेकिन जैन शासनको प्राप्त हुई मदनरेखा किसी की वातमें आ जाय एसी नहीं थी। राजाके एक शब्दसे वह सव समझ गई।

कैसे कैसे प्रयत्नों के द्वारा उसने जीवन का रक्षण किया वह विचारो। विचारोगे तो समझमें आ जायगा कि एसी सतियों का नामस्मरण करना भी जीवन का अनुपम ल्हाला (लाभ) है।

इसीलिये प्रतिदिन प्रातःकाल प्रभात समय प्रतिक्रमण की क्रियामें भरहेसर की सज्झाय में बोलते समय श्रीसंघ सोलह सतियों को याद करता है।

यहां मदन रेखा का जीवन वृत्तान्त जरा विचारते है। :—

सुदर्शनपुर नाम के नगर में उस समय मणिरथ नामका राजा राज्य करता था। इस राजा के युगवाहु नाम का छोटा भाई था। राजा ने अपने छोटे भाई को युवराज पद पर स्थापित किया था।

युवराज युगवाहु के मदन रेखा नाम की धर्मपत्नि थी। मदनरेखा खुव ही रूपवान थी। जितना वो रूपवती थी उतनी ही वह शीलवती भी थी। और जितनी वो शिलवती थी उतनी ही वो सच्चे अर्थ में धर्मपत्नी भी थी।

किसी समय ये मदनरेखा मणिरथ राजा के देखने में आ गई। मदनरेखा के सौन्दर्य को देखने के साथ ही मणिरथ एकदम काम वश बन गया। उसे ऐसा हो गया कि किसी भी भोग से इस सौन्दर्यवती को तो भोगना ही चाहिये।

लेकिन मदनरेखा का मन पिगले बिनातो ये बन ही नहीं सकता था।

इसलिये मदनरेखा के मन को पिगलाने के लिये और उसे अपने ऊपर रागवती बनाने के लिये राजा मणिरथ बारबार विविध प्रकार की भेंट मदनरेखा को भेजने लगा।

मदनरेखा के हृदय में पाप का भय नहीं था। मणिरथ के हृदय में पाप वासना थी। लेकिन मदनरेखा को तो ऐसी कोई कल्पना भी नहीं थी। इसलिये राजा मणिरथ की तरफ से मदनरेखा को जो भेंट आती थी उसे सहर्ष स्वीकार लेती थी। और इस तरह आती हुई भेंट से वडील की वडीलता (वड़ो का वड़प्पन) की योग्यता वह समझती थी।

भद्रिक भाव से भेंट को स्वीकार करती मदनरेखा के प्रति पाप वासना से पीड़ित राजा तो ऐसा ही समझता था कि मदनरेखा भी मुझे चाहती है।

काम ऐसा है कि वह देखने को भी अंधा बनता है और बुद्धिमान को भी बेवकूफ बनाता है।

अब एक दिन एकान्त प्राप्त करके खुद राजा मणिरथ ने मदनरेखा से प्रार्थना की।

लाज मर्यादा को छोड़के उसने नफटाई (बेहयाई)

से मदनरेखा से कहा कि तेरे रूप को देखकर मैं तुझमें आसक्त बना हूं। तो तू मेरे स्नेह को स्वीकारेगी तो मैं तुझे सभी राजसम्पति की मालकिन बना दूंगा।

मदनरेखा तो वडील के मुख से एसी बात सुनके आश्चर्यचिन्त बन गई। उसने तो खुब ही स्वस्थता से और खूब ही दृढता से राजा को कहा कि ये तुम क्या बोले? यह तो इस लोक से भी विरूद्ध का काम है। और परलोक से भी विरूद्ध का काम है।

अच्छे मनुष्य दूसरों के जूठे भोजन की तरह किसी भी स्त्रीकी इच्छा नहीं करते हैं। फिर भी मैं तो आपके लघुभ्राता की पत्नी होने से आपके लिये तो पुत्रीके समान हूं। मदनरेखा ने एसा ही कितनी बातें करी इसलिये मणिरथ गुपचुप (चुपचाप) वहां से चला गया।

मदनरेखा को एस लगा कि वडील समझ गये। पाप से बच गये। और मैं संकट में से बच गई। एसे विचार से उसे आनन्द हुआ। और कुटुम्ब क्लेश न हो इसलिये उसने इस बनाव सम्बन्धी कोई भी हकीकत अपने पतियुगबाहुको नहीं कही।

सद्गुणों के भावमें रमते मनुष्यों को ज्यों सच्चे विचार ही स्वाभाविक रीतसे आते हैं। उसी तरह दोषों में रमते मनुष्यों को दुष्ट विचार ही स्वाभाविक रीतसे आते हैं।

राजा मणिरथ मदनरेखा के पाससे चला गया। लेकिन वह अपनी भूलको भूलकी तरह नहीं समझा था। लेकिन धारा हुआ धूलमें नहीं मिले और बराबर सफल बने एसा मौका मिलने की इच्छा से चला गया था।

उसके हृदय में इन्हीं विचारों ने घर कर लिया था कि जब तक मेरा छोटाभाई युगबाहू जीता है तब तक यह मदनरेखा मेरी बनना मुश्किल है। एसे विचारों के योगसे उसे अपना छोटाभाई भी शत्रु जैसा लगने लगा। और उसने कुछ भी करके अनुकूल अवसर की प्राप्ति के समय अपने छोटेभाई को मार डालने का निर्णय किया।

रूपका आकर्षण और कामकी आधीनता ये कितनी भयंकर वस्तु है यह समझने और ख्यालमें रखने जैसी वस्तु है। स्वार्थ में अंध बने जीव सगेभाई का भी संहार करने के लिये तत्पर बन जाते हैं। यह विषम संसार की भयंकरता है।

एक वार युगबाहू अपनी पत्नी मदनरेखा के साथ उद्यान में क्रीडा करने के लिये गया। रात्रि के समय वह निश्चिंतपने से वहीं रहा। राजा मणिरथ को यह मालूम होते ही उसने अपने दुष्ट मनोरथ को सफल करने का सुंदर मौका मान लिया।

इस समय वह दुष्ट राजा खुली तलवार से उद्यान में आ गये। एसी अंधेरी रातमें मेरे भाई को कुछ भी उपद्रव नहीं हो एसा ढोंग से बोलता बोलता वह वहां पहुंच गया कि जहां युगबाहू था।

अपने वडील भ्राता को अपने पास आ पहुंचा हुआ देखके विनयी युगबाहू ससंभ्रम खड़ा हो गया। और अपने वडीले के पगमें लगा।

अरे। एसी भयंकर काली रातमें एसे स्थान में तो रहा जाता होगा। इसलिये चल नगरमें। एसे दांभिक वचनों को बोलते हुये। राजा मणिरथ की आज्ञा को

सिर पर घरके युगवाहू जैसा ही नगर तरफ जानेके लिये चला कि तुरन्त ही राजा मणिरथने उसके गले पर अपनी तलवार फेर दी। (यानी राजा मणिरथने अपने छोटेभाई युगवाहू को तलवार से घायल कर डाला)।

मणिरथ के द्वारा किये गये तलवार के प्रहार से युगवाहू इकदम जमीन के ऊपर पड़ गया। यह देखके मदनरेखा के द्वारा दर्दमय चीस निकल जाने से उद्यान के द्वार में खड़े सुभट आ पहुंचे।

सुभटों को आया हुआ देखके राजाने कहा डरो नहीं। मेरे प्रमादसे मेरे हाथमें से ही तलवार गिर गई है।

राजाने छिपाने का बहुत ही प्रयत्न किया किन्तु फिर भी राजाके चारित्र को सुभट समझ गये। और राजाको बलात्कार से खाना कर दिया। और युगवाहू को बचा लेने के उपाय योजने लगे।

मदनरेखा को पहले तो ऐसी घटना बन जाने से बहुत ही आघात लगा। लेकिन जहां उसने देखा कि क्षण क्षण में पति निश्चेष्ट बनते जाते हैं, घड़ी घड़ी में जीभ खिंच रही है और आँखें बन्द हो जाती हैं। इसलिये वह समझ गई कि अब पतिकी मृत्यु नजदीक में ही है।

ऐसा ख्याल आनेके साथही मदनरेखा फिरसे स्वस्थ बन गई और धैर्यको धारण कर लिया। मदनरेखा अवसर को समझ गई इसलिये अपनी आँखमें एक भी अश्रु बिन्दु को नहीं आने दिया, इतना ही नहीं बल्कि वह अपने पतिको अन्तकालीन आराधना कराने लगी।

मदनरेखा की जगह कोई दूसरी बिन समझदार स्त्री होती तो पतिको मृत्युकी पथारी पर पड़ा हुआ जानके

रोने ही लगे । अरे ! मेरा क्या होगा ? एसे रोदना रोके मरनेवाले की गतिको ही विगाड़ डाले ।

पत्नी जो समझदार हो और सच्ची हितस्विनी हो तो एसे समय वाह्य और आत्मिक भक्ति पति की एसी करे कि जिससे पति उस समय असमाधि से वच जाय। और समाधि पूर्वक मृत्युको पाके सद्गति को पानेवाला वने ।

महा सती मदनरेखा विवेकिनी थी इसलिये अपने पति युगवाहुकी परम हितस्विनी थी इसलिये वह स्वस्थ और धीर वनके अपने पतिके पास वैठ गई ।

उस समय मदनरेखा का एकही ध्येय था कि पति के मरणको विगड़ने नहीं देना चाहिए । इसलिये अपने स्वरको रोजकी अपेक्षा भी अधिक मृदु वनाके उसने अपने पतके कानमें एसी वातें सुनाना शुरू की कि जिससे युग वाहुका उसके भाईके प्रति पूरा रोष उतर गया। उसने उपशान्त वनके अन्तकालीन आराधना सुन्दर रीतसे की।

मदनरेखा समझ गई कि पति का मरण समाधिमय वनाने के लिये उनके हृदयमें उनके भाईके प्रति रोष जरा भी नहीं रहना चाहिए इसलिये उसने सवसे पहले पतिको समझाया कि तुम धीर हो, इसलिये धीरता को धारण करो, तुम्हारे चित्तको सुस्वस्थ वनाओ। तुम वुद्धिशाली हो इसलिये किसी पर रोष नहीं करो और हालमें तुम्हें जिस वेदना का अनुभव हो रहा है उसे तुम धीरता से सहन करो क्योंकि यह वेदना अपने ही पूर्वकृत कर्मों के उदयसे आई है । जीवमात्र का कोई अपराध करनेवाला हो तो वह उसका निजीकर्म ही है । दूसरा कोई जीवका

अपराध नहीं कर सकता है, दूसरे तो सिर्फ निमित्त रूप बनते हैं ।

एसा कहके मदनरेखाने समझाया कि सच्ची बात तो यह है कि तुम्हें मारने वाला तुम्हारा भाई नहीं है लेकिन तुम्हारे कर्म हैं और तुम्हारे भाई तो एसे पाप कर्मसे मरे हुए ही हैं । एसे खुदके पापसे मर रहे को मारने का विचार करना ये आप जैसे समझदार को शोभा नहीं देता है ।

इस तरहसे मनमें शांतवन-आश्वासन देने पर भी मदनरेखा मनमें समझती थी कि मेरे सिर पर भय तुल रहा है । वह समझ गई थी कि मेरे रूपको भोगने की लालसा के पापने ही मेरे जेठके पाससे एसा अतिशय नीच कर्म कराया है ।

जिसे एसा नीच कर्म करते आंचका (झटका) भी नहीं लगा वह अब मेरे ऊपर कैसा गुजारने को मथेगा इसको कल्पना भी मदनरेखा को आ गई थी ।

इतना होने पर भी इस समय तो उसे उसकी आँख के सामने खुदकी चिन्ता नहीं थी लेकिन अपने पति के भले की ही चिन्ता थी ।

यह पवित्र प्रताप किसका? आर्य संस्कार और आर्य शिक्षण क्या चीज है! इसका सुन्दर ख्याल इस प्रसंगमें से मिल सकता है ।

मदनरेखाने अपने पतिके जलते जिगर को ठंडा कर दिया, फिर उसने अपने पतिको परमात्मा आदि के चार शरण स्वीकार कराए और उनके पापसे अठारह पापस्थान कों की आलोचना कराई। सब जीवोंके साथ खमतखमणा

(माफी-क्षमा) कराई । अपने तरफ की ममता का त्याग कराया, सुकृत्यों की अनुमोदना करायी । देहके ममत्वका त्याग कराके इस सती स्त्रीने अपने पति युगबाहुको धर्म के शरणमें स्थापित किया ।

इस तरह आराधना करते करते उसका देह निष्प्राण बन गया । इसलिये एक क्षणका भी विलम्ब किये विना महासती मदनरेखा रातोंरात वहाँसे भागी । क्योंकि वह सगर्भा थी इसलिये उसे अपने शीलके रक्षण के लिये भागना पड़ा ।

मदनरेखा वहाँसे दौड़के जंगल में चली गई । घोर भयंकर जंगलमें चलते चलते मदनरेखा थक गई । एक कदम भी आगे बढ़ने की शक्ति नहीं रही, कांटे और कंकर से पैर छुल गये । एक वृक्षके नीचे मदनरेखा बैठ गई ।

नवमा महीना चालू था । पेठ में पीड़ा होने लगी । भयंकर पीड़ा ! किससे कहें ? यहां कोई खबर लेने वाला नहीं था । वेदना बढ़ गई मदनरेखा अर्ध बेभान हो गई ।

एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ । माताकी आँखे खुली पुत्र को देखा । दायन क्रिया करने वाला कोई नहीं था । महा प्रयत्न से पास में बहती सरिता के तट पर जाकर शुचि कर्म करने लगी ।

सरिता के मीठे जलपान से तृषा शान्त हुई । क्षुधा लगी थी लेकिन खाना क्या ?

एक विद्याधर विमान में बैठकर प्रकृति सौन्दर्य देखता देखता नंदी श्वरद्वीप की यात्रा को जा रहा था ।

उसकी दृष्टि मदनरेखा पर गिरी। और वो चौंक उठा। कितना सुन्दर रूप! एसी सौन्दर्यवती स्त्री यहां जंगल में कहां से? ये तो मेरे अन्तःपुर में ही शोभ सकती है। विद्याधर इस तरह से मदनरेखा को देखकर मोहित बना।

विद्याधर निचे उतरा। मदनरेखा के पास आकर खड़ा हो गया। नवजात शिशु पुत्र वृक्ष के नीचे रो रहा था।

मदनरेखा को उद्देश्य करके विद्याधर बोला :-

देवी! महादेवी! तुम्हें देखने के बाद मैं तुम्हारा चरणदास बन गया हूँ।

तुम्हें ऐसे घोर जंगल में रखडती छोडने वाला कौन दुष्ट है?

मदनरेखा परिस्थिति समझ गई। वह विचार करने लगी कि हाल तो परिस्थिति के ताबे होकर काम निकालना ठीक है। इस समय सामना करने में नुकसान है।

महाशय आप कौन हैं? मदनरेखा ने पूछा।

"मैं विद्याधर हूं! नंदीश्वर द्वीप की यात्रा करने जा रहा हूं। बीच में तुम्हे देखकर परवश बन गया। देवी! मेरा स्वीकार करो।

महाशय! प्रथम मुझे भी यात्रा कराओं। यात्रा करने के पीछे सब अच्छा होगा। विद्याधर को सन्तोष हुआ।

मदनरेखा को विद्याधर ने विमान में डाली। शीघ्र गति से विमान उड़ा। अल्प समय में विमान नंदीश्वर द्वीप के उद्यान में उतरा।

विद्याधर के साथ मदनरेखा ने शाश्वत चैत्यों को जुहार किया। जीवन धन्य बन गया।

एक विशाल पटांगण में एक ज्ञानी गुरु महाराज धर्मदेशना दे रहे थे। दोनों जन बाहर आके धर्म श्रवण करने बैठ गये। महात्माने तत्वज्ञान भरी देशना दी। श्रोता डोलने लगे।

यहां मदनरेखा का पति आराधना के बल से मृत्यु प्राप्त करके देवलोक में उत्पन्न हुआ

देवशय्या में उत्पन्न होते ही उपयोग द्वारा जाना कि मुझे देवलोक में भेजने वाली मेरी प्रियतमा है। इसलिए प्रथम तो मैं मुझे आराधना कराने वाली पत्नी को नमस्कार कर आऊँ फिर देवलोक के सुख भोगने की बात।

नूतन देव चला नन्दीश्वर द्वीप में। जहां महात्मा देशना दे रहे थे। वहां नारी सभा में मदनरेखा एक चित्त से देशना सुन रही थी। वहां आके मदनरेखा के चरणकमल में देव नमन करने लगा।

श्रोता चिल्लाने लगे। अशातना! अशातना! पहले महात्मा को नमस्कार करना चाहिए फिर दूसरे को।

ज्ञानी महात्मा ने ज्ञान बल से देखा कि इस देवका ध्येय उपकारी का बहुमान करना है। लेकिन अशातना करना नहीं है।

गम्भीर वाणी से महात्मा बोले श्रोताओं! अपने उपकारी को नमस्कार करने के लिए देवलोक में से यह देव आया है।

उसकी पूर्व भव की पत्नी और इस स्त्री सभा में बैठी सती मदनरेखा ने अपने स्वामी को आराधना कराके देवलोक में भेजा था। वहां से देव उसे नमस्कार कर रहा है इसलिये शान्त बन जाओ।

सभा में शान्ति फैल गई। मदनरेखा को उपाड के लाने वाला विद्याधर विलख पडा (घबरा गया) आशा निराशा बन गई।

इस तरफ नवजात शिशु जंगल में रो रहा था। राजा शिकार के लिये निकला। वह फिरते फिरते वहां आया। राजा को पुत्र नहीं होने से पुत्र को ले लिया।

राजभवन में जाके पुत्र रानी को सोपा। हंसमुख तेजस्वी पुत्र को देखके रानी आनन्दित बन गइ।

राजाने जाहिर किया कि रानी ने पुत्र को जन्म दिया है। पुत्र जन्म महोत्सव चालू हो गया।

यहां मदनरेखा वैराग्य वासित बन गई। दीक्षा ले ली। आत्म कल्याण में मस्त रीत से एकतान बन गई।

देव देवलोक में चला गया। विद्याधर स्वस्थ चित्त से स्व स्थान में गया।

कामके दुष्टपने को धिक्कार हो। बड़े बड़े महात्मा भी कामसे अंध बन गये के द्रष्टान्त शास्त्रों में मौजूद हैं।

जिस विद्याधर के अनेक रूपयौवना पत्नियां थीं फिर भी मदनरेखा पर रागी बन गया। हाथमें कुछ भी नहीं आया फिर भी मन और वचन से कितने कर्म बांधे ?

काम अग्नि जैसा है। वह कभी भी शान्त नहीं होता है।

चक्रवर्ती राजा भी काममें अन्ध बनके मृत्यु को प्राप्त हों तो नरकमें जाते हैं।

वैक्रिय लब्धिवाली देवियां भी काममें अंध बनके मानव के साथ विषय भोगने के लिये तैयार होती हैं।

गंगादेवी धन्यकुमार को देखके परवश बनी। धन्य-कुमार के पास दुष्ट मांगनी की। परन्तु कुलीन धन्यकुमार ने देवी को याचना नहीं स्वीकारी। और माता शब्द से संबोध के प्रतिबोध दिया।

तुम सब कामवासना से अलिप्त रह के जीवन को धन्य बनाओ यही मनो कामना।

व्याख्यान–सत्ताईसवाँ

अनंत उपकारी शास्त्रकार महर्षि श्री भगवती सूत्रमें फरमाते हैं कि जीवन विकास के लिये गुणवान बनना पड़ेगा । जीवन में धर्म उतारना पड़ेगा ।

तीर्थंकर देवों का जगत के ऊपर जितना उपकार है इतना उपकार किसी का भी नहीं है ।

अष्टकर्म से सहित बनना इसका नाम मोक्ष । मोक्ष प्राप्त करने के लिये धर्म करना है ?

समकिती आत्मा घरके कौने में पाप करे तो भी उसे एसा लगे कि इस पापकी सजा भोगनी पड़ेगी ।

भूतकाल में घरके वडील (वड़े) कार्य सोंपने के सम्बन्ध का निर्णय लेने के पहले परीक्षा करते थे ।

एक शेठजी थे । वे संपत्तिवन्त और आवरूदार भी थे । उनके चार लड़के थे । ये चारों पुत्र माता–पिता आदि सभी गुरुजनों का विनय करने में तत्पर रहते थे ।

इन चारों जनोंने शेठको इतना अधिक सन्तोप दिया था कि अपने पीछे पेढी (व्यापार) कैसे चलेगी । इसकी शेठजी को बिलकुल चिन्ता नहीं थी । शेठ और शेठानी दोनों वृद्ध हुये ।

इसलिये शेठने विचार किया कि कुटुम्ब का भार तो वड़ी वहूको ही सौंपना जिससे कुटुम्बमें सुख, शान्ति स्थापित हो और लोकमें भी कुटुम्बकी इज्जत वढे ।

इस बावत का निर्णय करने के लिये शेठने चारों पुत्रवधूओं को परीक्षा करनेका निर्णय किया।

शेठ इतने डाह्या (बुद्धिशाली) थे कि जो भी काम करें वह डहापण (बुद्धि) से करते थे। जिससे वह जो काम करें उसमें सभी संमत रहें और उसमें किसीको भी अनजानपने से भी विरोध करनेका मौका नहीं मिले।

इसलिये उन शेठजीने चारों पुत्रवधूओं की परीक्षा करके चारों को जो योग्य हो वह सौंपने की विधि सभी कुटुम्बीजनों के समक्ष करना एसा निर्णय किया।

एसा निर्णय करके शेठने एक वार भोजन समारंभ की योजना की। उसमें जैसे अपने कुटुम्बके मनुष्यों को आमन्त्रण दिया उसी तरह चारों पुत्रवधूओं के कुटुम्बीजनों को भी आमन्त्रित किया।

सबको अच्छी तरहसे जिमाने के बाद शेठने योग्य स्थान पर सबको बिठाया और अपनी चारों पुत्रवधूओं को बुलाया।

पुत्रवधूयें आ गईं। इसके बाद शेठजीने हरेक को डांगर (धान) के पांच पांच दानें दिए और कहा कि यह दाना जब मैं पीछे माँगू तब तुम मुझे शीघ्रही दे देना। फिर शेठने सबको विदा किया।

शेठने एसा क्यों किया? इसका मर्म किसीको समझ में नहीं आया।

सबके चले जानेके बाद बड़ी बहूने विचार किया कि मेरे घरमें दाना की क्या खोट है? जब ससराजी मांगेंगे तब कोठारमें से निकाल के उनको पांच दाना दे दिए

जायेंगे। ऐसा विचार करके उसने शेठके द्वारा दिए गए पांच दानों को उसने फेंक दिया। उसको तो ऐसा ही लगा होगा कि ससराजी पागल हो गए जिससे डांगर के दाना दिए। किन्तु ससराजी की दीर्घद्रष्टि का डहापणका ख्याल उस जडबुद्धिवाली को कहाँ से आवे।

दूसरी वहूमें बुद्धि की जड़ता इतनी अधिक नहीं थी लेकिन उसकी बुद्धिमें भी थोड़ी जड़ता तो थी ही इसलिये उसने विचार किया कि अपने घरमें डांगर (धान) के कोठार तो भरे ही हैं इसलिये ससराजी जब मांगेंगे तब क्षणभर में दाना कोठारमें से काढके दे दिए जायेंगे।

लेकिन फिर उसको ऐसा भी लगा कि पिताजीने ये दाना दिए हैं तो फेंक देने लायक तो नहीं हैं। इसमें वडील (वड़ों) का अपमान होता है ऐसा विचार करके दूसरी वहू शेठके द्वारा दिए गए दाना खा गई।

तीसरी वहू इन दोनों जैसी नहीं थी। इसलिए उसने विचार लिया कि ससराजी डाह्य (वुद्धिशाली) हैं। किसी भी कारण के विना इस डांगर के पांच दाना सुरक्षित रखने के लिए नहीं दे। खैर। कारण तो जो होगा सो होगा। लेकिन ससराजी की आज्ञानुसार ये पांचों दाना सुरक्षित रख देना चाहिए। ऐसाविचार करके उसने वे पांचों दाना एक चिंदरडी (कपड़ा) में वांध के गहनों के डव्वे में रख दिये।

चौथी वहू विलक्षण ही थी। उसने विचार किया कि इस प्रकार पांचदाना देने में ससराजी का कुछ वड़ा आशय होना चाहिए। नहीं तो वुद्धिवन्त ऐसे ससराजी डांगर के पांच दाना देने की विधि स्नेही जनों की हाजरी

में सम्भारम्भ पूर्वक नहीं करें। इसलिए इसमें कुछ हमारी अक्ल की परीक्षा करने का हेतु ससराजी का होना चाहिये।

एसा विचार करके उसने भाई को बुलाकर ये पांचों दाना देकर उससे कहा कि वर्षा ऋतु में इन पांच दानों को वो देना। इन दानों में से जितने पके उन सब दानों को दूसरे वर्ण वो देना। इस तरह वर्ष वर्ष करते जाना।

इस प्रसंग को वने पांच वर्ष वीत गये। इसलिए शेठ नें पुनः पूर्व की माफक ही स्नेही जनों का भोजन समारम्भ योजा। सबको अच्छी तरह से जिमाने के वाद सबको एक स्थान पर उचीत आसन पर वैठाया।

इसके वाद शेठने अपनी चारों पुत्र वधुओं को बुलाया और कहा कि पांच वर्ष पहले मैंने पांच दाना तुम्हें दिये थे। वे पीछे दो।

पहली वहू पहले तो फीकी पड़ गई। क्योंकि उसे तो पांच दाना की वात याद भी नहीं रही थी। फिर उसने कोठार मेंसे डांगर के पांच दाना लाके शेठ को सुप्रत किये।

शेठने उससे पूछा कि जो दाना मैंन तुम्हें दिये थे वे यही हैं कि ये दूसरे? तव वह समझ गई। और कवूल किया कि उन दानों को तो मैंने घरके वाहर फेंक दिये थे।

दूसरी वहू भी इसी प्रकार फीकी पड़ गई। और उसने कहा कि आपके द्वारा दिये गये दानों को तो मैं तुरन्त ही खा गई थी।

तीसरी वहू को नम्वर आया। इसलिये वह तो गहनों के कवाट में रख दिये गये उन दानों को लेके आ गई। और शेठको सुपरत किये।

शेठने जब चौथी वहू से दाना पीछे लौटाने को कहा तब उसने कहा कि ये दाना तो इतने अधिक बढ गये हैं कि उनको यहां लाने के लिये तो बहुत से गाडे भेजने पड़ेंगे ।

शेठके पूछने से उसने दाना का उत्तरोत्तर वावेतर (खेतमें वोनेका) करने की हकीकत कही ।

इतनी विधि पूरी होने के बाद शेठनें अपनी चारों पुत्र वधुओंसे पूछा कि तुम सब हमारे घरका भला चाहनेवाली हो तो तुम्हीं कहो कि इन चारों में से किसको क्या काम सोंपूं । तब सब कहने लगी कि आपको जैसा योग्य लगे वैसा करो ।

फिर शेठने सबकी संमति लेके वड़ी वहूको घरका कचरा काढने का काम सोंपा, क्योंकि वह फेंक देने में कुशल थी । दाना खा जानेवाली दूसरी वहूको रसोड़ा का (भोजनशाला) का काम सोंपा । दाना सावधानी पूर्वक रखनेवाली तीसरी वहूको घरके दागीना, जवाहरात वगैरह रक्षणका काम सोंपा और चौथी वहूको शेठने घरके नायक तरीके स्थापी। इससे पूछके यह जैसा कहे वैसे सभी काम करें एसा सबसे कह दिया ।

चौथी वहू सबसे छोटी थी फिर भी शेठने उसकी होशियारी देखके सबकी आगेवान बना दी ।

गृह संचालन की आगेवानी किसे सोंपी जा सकती है? जिसमें योग्यता हो उसे । अयोग्य के हाथमें गृह संचलनका कार्य सोंपने में आवे तो धूलधानी करके यानी घरकी इज्जत का दिवाला निकाल दे ।

अन्यको प्रतिवोध करने को देव नरक में भी देवपने के शरीरसे जा सकते हैं ।

किसी मित्रका जीव नरकमें गया हो तो उसे शान्त करने के लिये, वैर हठाने के लिये जा सकते हैं। रावण और लक्ष्मण वैरके योगसे नरकमें लड़ते होनेसे सीताजीने बारहवें देवलोक से वहाँ जाके उनको शांत किये थे।

देव मानवलोक में दो कारण से आते हैं। मित्रोंको मदद करने के लिये और दुश्मनों को हैरान करनेके लिये देव मूल स्वरूपमें कहीं नहीं जाते। तिर्च्छालोकमें उनकी गतिका विषय असंख्यात द्वीप समुद्र तक होता है।

भगवान के पांचों कल्याणकों में देव नन्दीश्वर द्वीपमें जाके महा महोत्सव पूर्वक कल्याणक की उजवणी करते हैं।

भगवान महावीर को संगम देवने एक रातमें बीस उपसर्ग किये। उपसर्ग करके जब संगम जीनेको तैयार होता है तब भगवान महावीरने कहाकि हे संगम! अभी भी शक्ति वापरके उपसर्ग कर कि जिससे मेरे कर्म दूर हों। तब संगमने कहा कि भगवन्! अब मुझमें शक्ति नहीं है। एसा कहके जाता है तब भगवान की आँखमें से आँसू आ गइ।

"कृतापराधेऽपि जने कृपामंथरतारयोः।
इषद् बाष्पाद्रयो भंद्रं श्री वीरजिन नेत्रयोः॥

भगवानने विचार किया कि हमारा समागम पाके भी यह विचारा संगम डूबके जाता है। कर्म बांधके जाता है। भावदया वढ गई और आँखमें आँसू आ गए।

धनगिरिजी की बात प्रसिद्ध है, उनके पुत्र व्रजस्वामी कि जिन्होंने शासन के महान कार्य किये हैं उनकी थोड़ी बात करें।

पुन्यशाली एसे बालक का जन्म हुआ। परभव की

आराधना प्रबल थी । इस आराधना के प्रतापसे जन
ही सब जानने की शक्ति थी और रोना शुरू करते
क्योंकि जन्म होनेके साथ ही उस बालकने सुना था
उसके पिताने दीक्षा ली थी, यह सुनते ही जाति स्म
ज्ञान हुआ और स्वयं संयम लेनेका निर्णय किया । माता
उनके प्रति ममता और माया न बढ़े इसलिये लाग
एक धारा छः महीना तक रोना चालू रक्खा । मात
कंटाला आने लगा (माँ थक गई) । आखिर में माता
बालकसे कंटाल गई ।

इतनेमें इसके पिता साधु अपने गुरुके साथ गाँ
आए । माताने उनसे कहा कि अब तुम्हारे इस दी
(पुत्र) को तुम रक्खो । मैं तो कंटाल गई । मुनिने उ
समय बालक का स्वीकार किया । क्योंकि गुरुने अ
की थी कि आज जो भी वस्तु मिले उसका तुम स्वी
कर लेना ।

यह बालक वही है जो शास्त्रों में व्रजस्वामी
नामसे प्रसिद्ध हुए ।

गुरु महाराजने उस बालकको पालके बड़ा करने
लिये साध्वीजीयों को सौंपा । साध्वीजीयों के उपाश्रय
यह बालक पालना में झूलने लगा । श्राविकाओं ने
अच्छी तरहसे पाला ।

साध्वीयों के मुखसे सुनते ही वह बालक ग्य
अंगका ज्ञाता बन गया ।

पीछे से एसे शान्त और ज्ञानी पुत्रको ले जाने
लिये माताकी इच्छा जागृत हुई ।

राजा के पास इसने न्याय मांगा। राजाने न्याय किया। राजसभा में एक तरफ माता और दूसरी तरफ बालक के पिता साधु खड़े हुए। बीचमें इस बालक को खड़ा रक्खा। माताने खिलौना दिखाये और गुरुने ओघा और मुहपत्ती दिखाई। बालक खिलौनों की तरफ नहीं जाके ओघा लेके नाचने लगा। सभामें आश्चर्य फैल गया। माता हार गई और पीछे से उसने भी दीक्षा ले ली।

यह व्रजस्वामी महाज्ञानी तथा प्रतिभाशाली तरीके खूब प्रसिद्ध हुए। शासन्नोति के अनेक काम उनके हाथ से हुए।

एक समय माहिष्पुरी नगरीमें व्रजस्वामी चातुर्मास में थे। वहाँका राजा बौद्धधर्मी था। राजाने फरमान निकाला कि किसीको भी जैन मन्दिरमें फुल नहीं चढ़ाना।

पर्यूषण पर्व के दिन नजदीक आए। वहाँ का संघ इकट्ठा होके आचार्य श्री व्रजस्वामी महाराजके पास गया, खिन्नवदन वाले संघको देखके आचार्य महाराज पूछने लगे कि पुण्यशाली, निराश क्यों दिखाते हैं?

संघने कहा कि हे प्रभो, आपकें जैसे गुरु महाराज हों और हम प्रभुकी पुष्पसे पूजा न कर सकें यह कितना दुःखका विषय है? यहाँ के राजा का हुक्म है कि जैन मन्दिरमें पुष्प नहीं देना।

संघकी लागणी और प्रभुभक्ति देखके आचार्य महाराज बोले—पुण्यशालियो, चिन्ता न करो। पुष्प मिल जायँगे! आचार्य महाराज की मधुर वाणी सुनके संघ आनन्द में आ गया।

अब आचार्य महाराज लब्धिका उपयोग करके

आकाश मार्गसे मेरु पर्वत पर गए। वहाँ देवीको विनती करके लाखों फूल विमानमें रक्खे, देवके द्वारा बनाये उस विमानमें बैठके आचार्य महाराज उस नगरीमें पधारे।

जैन संघमें आनन्द आनन्द व्याप गया। पौरजनों में आश्चर्य फैल गया। राजा दौड़ आया। आचार्य महाराज के पास माफी मांगी। आचार्य महाराजने उपदेश दिया, राजा जैन धर्मी बना। प्रजा भी जैन धर्म के प्रति आदर रखनेवाली बन गई। "यथा राजा तथा प्रजा।"

एक समय गुरू महाराज ठल्ले गये। तब वज्रस्वामी छोटे थे। उपाश्रय में कोई साधू नहीं ऐसा जानके वज्रस्वामी ने उपाश्रय के द्वार बन्द कर दिये। सब साधुओं के वींटियां (तकिया) लेके सामने रख दिये। बीच में वज्रस्वामी बैठे। सब वींटियों को वांचना देने लगे।

किसी को आचारांग सूत्र की, किसी को ठाणांग सूत्र की, किसी को भगवती सूत्र की, वांचना के पाठ बुला रहे थे। गुरू महाराज ठल्ले जा के उपाश्रय के पास आए। द्वार के छिद्र मेंसे देखा। वज्र। वींटियों को आगम की वांचना दे रहा हैं। क्या? वज्र इतना पढ़ा है? श्रुतज्ञानी की अशातना नहीं करना चाहिए। इन्हें क्षोभ न हो इसलिए गुरू महाराज दश बीश कदम पीछे चले गये। और जोर से नीसीही नीसीही बोलते बोलते आए। इस शब्द को सुनते ही वज्रस्वामी उठ गये। वींटिया रख दियें। बाहर आये। गुरू महाराज के चरण धोने लगे।

गुरू महाराज परीक्षा करने के लिए एक दिन बाहर गांव गये। साधु पूछने लगे कि साहब! हमें वांचना

कौन देगा ? गुरू महाराज ने कहा तुम्हे वांचना वज्र देगा । साधू विचार में पड़ गये ।

गुरू महाराज चले गए । दोपहर का समय हुआ । गुर्वाज्ञा के अनुसार सभी साधू वांचना लेने बैठे । वज्र–स्वामी ने इतनी सरलता से वांचना दी कि सबको सर–लता से याद रह गया । सब साधुओं ने निर्णय किया कि अब गुरू महाराज को विनती करके अपने वांचना-चार्य वज्रस्वामी को बनाना ।

गुरू महाराज दूसरे दिन आ गए । साधूओं ने वन्दन करके विनती की कि हे प्रभो । अब हमारे वांचना-चार्य वज्रस्वामी को बनाओं । इनसे हम शीघ्र सीख लेते हैं ।

गुरू महाराज ने तभी से वांचनाचार्य वज्रस्वामी को बनाया । इस तरह से वज्रस्वामी के अनेक प्रसंग शास्त्रों में टांके गए है । उनमें से यहां तो दो तीन ही प्रसंग का वर्णन किया है । अन्तमें तेओश्री रथावर्थ पर्वत ऊपर जाकर अनशन करके साधना में लीन बने । धन्य हैं इन महापुरूष को ।

मानव जीवन में प्रभु शासन मिलने के बाद भी कितने ही जीव शासन के हार्द को नहीं समझते । और शासन को बदनाम करते हैं । उनसे दूर रहके आत्म–कल्याण में एक तान बनो यही हृदय की मनो कामना ।
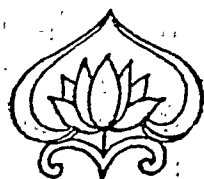
व्याख्यान—अट्ठाईसवाँ

अनन्त उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि मानवजन्म दश दृष्टान्तों से दुर्लभ है। दुर्लभ एसे मानव जीवन को प्राप्त करके आराधना में तदाकार बनने के लिये प्रयत्नशील बनना चाहिये। संसार की प्रत्येक क्रिया में सावधान बनना चाहिये। क्रिया करना और पाप न बंधे उसका नाम सावधान कहलाता है।

दीक्षा लिये बिना एक भी तीर्थंकर देव केवलज्ञान को प्राप्त नहीं हुये। और प्राप्त करेंगे भी नहीं।

तीर्थंकर परमात्मा को दीक्षा के लिये एक वर्ष जितना समय बाकी हो तब लौकान्तिक देव आके विनती करते हैं कि हे भगवन्त! तीर्थप्रवर्ताओ! जगत का कल्याण करो।

इस विनती को सुनकर के तीर्थंकर उपयोग के द्वारा दीक्षा काल को जानते हैं। और वार्षिक दान की शुरुआत करते हैं।

वार्षिक दान की लक्ष्मी जिसके हाथ में जाती है। उसको लक्ष्मी की ममता उतर जाती है।

दानांतराय कर्म के उदय वाले मनुष्य पैसा होने पर भी दान नहीं दे सकते। लक्ष्मी की ममता वाला जीव मरके लक्ष्मी के ऊपर साँप हो के फिरता है।

दान देने से संसार सागर तिरा जाता है। दान इस तरह से दो कि लेने वाले को मांगने की जरुरत न पड़े। इसका नाम दान।

बारह महीना तक तीर्थंकर एसा दान देते हैं कि लेने वाला एसा बोले कि ये तो दान गंगा आई है।

आज मानव कल्याण की बातें करने वालों के हाथ से ही मानव का कितना नुकशान हो रहा है। इसकी तुम्हें खबर है?

आज मानव सुख की योजना बनाने वालों के हाथ से प्रायः कर मानवों को दुःख बहुत होता है।

जिसे देवलोक के सुख तुच्छ लगते हैं। उसे मानव-लोक के सुख तुच्छ लगें इसमें आश्चर्य की बात नहीं है।

परमात्मा की हार्दिक भक्ति अपनने नहीं की इसी लिये अपना उद्धार नहीं हुआ।

तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होने के साथ ही देवों के विमान डोल उठते हैं। क्योंकि तीर्थंकरों की पुन्याई महान होती है।

नजर से देख लेने पर भी सच्ची बात की खात्री नहीं करें तबतक निर्णय नहीं किया जा सकता है। जो करने में आवे तो महा अनर्थ हो जाता है। खंधक मुनि के जीवन में भी एसा ही बना है।

प्रसंग एसा बनता है कि खंधक मुनि एक समय गोचरी को गये।

उनकी तपश्चर्या घोर थी। छट्ठ के पारणे छट्ठ और अट्ठम के पारणे अट्ठम और मास क्षमण के पारणे मास क्षमण। घोर उपसर्गों में भी ये आनंद मना सकते थे।

खंधक मुनि विहार करते करते एक समय जिस शहर में आये उस शहर के रानी राजा उनको संसारी बहन बहनोई थे। राजा रानी सोगठे (चौसर) खेलते थे इतने में ये मुनि वहां से निकले।

बहन ने भाई को देखा और अश्रु आ गये। राजाकी नजर इस रानी को अश्रुभींजी चक्षुओं की तरफ एकाएक जाने से राजा शंकाशील बना। विचित्र घटना बन गई।

राजा मन में विचार करने लगा कि वह साधु मेरी पत्नी का पूर्व स्नेही होना चाहिये। इसोलिये रानी की आँख में से आंसू आये।

शंका के आवेश में क्रोधातुर बन गये। राजा ने सेवकों को आज्ञा की उस साधु की जिन्दा चमड़ी उतारो। राजा की आज्ञा का अमल करने के लिये सेवक छूटे। वे कहने लगे कि :—

"अम ठाकुरनी ए छे आणा, खाल उतारी लाओ"

यह शब्द सुन के महात्मा विचार करने लगे कि :

"कर्म खपाववानो एवो अवसर फरीने क्यारे मलसे"

खाल उतार ने को आये सेवकों से ये धैर्यवन्त मुनि कहने लगे कि हे भाई! तुम्हें खाल उतारने में सगवड (सरलता-अनुकूलता) रहे। मैं इस तरह से खड़ा रहता हूँ तुम संकोच नहीं करो।

वाहरे मुनि! कैसी अनुपम शान्ति। वाह रे मुनि। कैसी अनुपम शान्ति।

शरीर में एक छोटी सी सुई चुभे तो भी मनुष्य चीसाचीस पाड़ने लगता है (चिल्लाने लगता है)। तो यहां तो पूरे शरीर की खाल उतारी जा रही थी।

सहनशीलता की हद है? देह और आत्मा को भिन्न जानने वाले खंधक मुनि एक के बाद एक विकास के सोपान पर चढ़ने लगे। मृत्यु मंगलकारी बन गया। ओघा और मुहपत्तीवस्त्र खून में रंग गये।

इन्हें भक्ष्य समझ के गीधने चोंच में लिया तो सही लेकिन फिर दूसरी वस्तु समझ के फेंक दिया। और ये गिरे राजमहल के चौक में। रानी ने ये उपकरण पहचान लिये। और अपने भाई को किसीने मार डाला यह जानके खूब कल्पांत करने लगी (रोने लगी)।

राजा को रानी के कल्पांत से सच्ची बात का ख्याल आया। और बिना विचारे खोटी शंका लाके एसा भयंकर मुनि हत्या का दुष्कृत्य करावे के बदले खुद उसे खूब पश्चात्ताप हुआ। वृद्धि करते राजा को केवलज्ञान हो गया। रानी को भी वैराग्यभाव की धारा वृद्धि पाते पाते केवलज्ञान हो गया।

पति की आज्ञा मानना ये पत्नी की फर्ज है। लेकिन अहितकारी आज्ञा नहीं मानी जाय। ये माने तो दोनों को नुकशान हो।

आजके सुधरे हुये मनुष्य अभक्ष्यत्यागी स्त्री के मुँह में जबरदस्ती वस्तु डालने में होंशियारी मानते हैं। और कहते हैं कि धर्म के धतिंग (ढोंग) छोड़ दे। एसे धतिंग से कुछ भी हाथ में नहीं आयेगा।

जो यह चीज खाई नहीं जाती होती तो जगत में बनती ही क्यों है? बिन समझे अज्ञानी बिचारे एसे युवक कर्मों को उपार्जन करके दुर्गति में जाते हैं। इसका उनको भान ही कहां से है।

तुम्हारी सन्तान जब युवान होती है तब तुम किसी दिन बुलाके पूछते हो कि साधु होना है अथवा संसारी?

कृष्ण महाराजा अपनी बेटियों से पूछते थे कि बेटा रानी होना है या दासी?

जो पुत्री कहती कि हे पिताजी! मुझे रानी बनना है तो उसे भेजते थे प्रभु नेमिनाथ भगवानके पास दीक्षा लेने को। अपनी संतान की हितलागणी उनको कितनी थी? तुम्हें भी अपनी संतान की एसी हितभावना है?

धर्मकि घरमें धन, भोग और संसार के झगड़े नहीं होते लेकिन धर्म, तप और त्यागके झगड़े होते हैं।

तुम्हारे घरमें किसके झगड़े हैं।

आवश्यक सूत्रों के अर्थका ज्ञान कितनों को है? जगचिन्तामणि सूत्रमें क्या आता है? सुवह प्रतिक्रम में बोलते हो?

पोषध करते हो तब भी बोलते हो। लेकिन इनमें क्या आता है? ये तुम्हे खबर नहीं है।

सूत्र के अर्थ को समझे बिना सूत्र बोल जाते हो इसमें शायद लाभ मिल भी जाय लेकिन मनमाना नहीं।

जग चिन्तामणी में तमाम शास्वत चैत्यों की गणना की है। उनको नमस्कार करने की योजना है। भरत क्षेत्र के आए हुए तीर्थों के नाम देके वहाँ रहे जिन बिम्बों को नमस्कार करने में आया है। देखो! उसका अर्थ इस प्रकार है :-

" जग चिंतामणी जग नाह, जग गुरू जग रक्खण।
जग बन्धव जग सथ्थ वाह,
" जग भाव विअक्खण।
अट्ठावय संठविय, रुव कम्मट्ट
विणासण। चउविसंपि जिणवर
जयंतु अप्पडिहय सासण। "

भव्य जीवों को चिंतामणी रत्न समान, निकट भव्य जीवों के नाथ, समस्त लोक के हितोपदेशक, छः काय

जीव के रक्षक, समस्त वोधवंत के भाई मोक्षा भिलाषी के सार्थवाह, षड्द्रव्य, तथा नव तत्व का स्वरूप कहने में विचक्षण अष्टापद पर्वत ऊपर स्थापना किये हैं विम्ब जिनके, अष्टकर्म के नाश करने वाले एसे चौवीस तीर्थंकर जयवन्ता वर्तो। जिनका शासन किसी से हणाय नहीं एसा है।

"कम्मभूमिंहिक कम्मभूमिंहि पढम संघयणि, उक्को।
सय सत्तरिसय जिणवराण विहरंत लब्मई।
"नवकोडिंहि केवलिण, कोडिसहस्स नव साहु गम्मई।
संपई जिणवर वीस मुणि, विंहु कोडिंहि वरनाण।
समणह कोडि सहस्स दुअ थुणिज्जई निच्च विहाणि॥

असि, मसि और कृषि जहां वर्तत है। एसे कर्म भूमि के क्षेत्रों के विषे प्रथम संधयण वाला उत्कृष्ट पने से एक सौ और सत्तर तीर्थंकर विचरते पाये जाते हैं। केवल ज्ञानी नवक्रोड, और नव हजार क्रोड साधू होते हैं। एसा सिद्धान्त से जातते हैं।

वर्तमान में सीमंधर स्वामी प्रमुख तीर्थंकर, दो करोड़ केवल ज्ञानी तथा दो हजार क्रोड साधू हैं। उनकी निरन्तर प्रभात में स्तवना करते हैं।

"जय उ सामिय जय उ सामिय रिसह सत्तुंजि, उज्जिंति पहु नेमि गिण, जय उ वीर सव्व उरिमंडण, भरू अच्छहिं मुणि सव्वय, मुहरिपास, दुह दुरि अखंडण, अवर विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसिविदिसि जिंकेवि, ती आणागंय, संपइअ, वंदू जिण सव्वेवि। उ॥

जयवंता वर्तो श्री शत्रुंजय ऊपर श्री ऋषभदेव भगवन्त, श्री गिरनारजी पर्वत ऊपर प्रभु नेमिनाथ। और

साचोर नगर के आभूषण रूप श्री महावीर स्वामी। भरूच में श्री मुनि सुव्रत स्वामी।

टीटोई गाँव में श्री मुहरी पार्श्वनाथ। ये पांचों जिनेश्वर दुख और पाप के नाश करने वाले हैं। दूसरे (पांच) महा विदेह विषे जो तीर्थंकर हैं वे और चारों दिशाओं में, विदिशाओं में जो कोई भी अतीतकाल अनागतकाल और वर्तमानकाल सम्बन्धी तीर्थंकर हैं उन सबको मैं वन्दना करता हूं।

"सत्ता तण वई सहस्सा लक्खा छप्पन अट्ठकोडिओ;
वत्तीसय वासि आई तिय लोए चेइए वंदे॥

आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार वत्तीस सौ औह वियासी तीनलोक के विषें शाश्वत जिन प्रासाद है उनको मैं वंदता हूं।

"पनरस कोडिसयाइं कोडिवायाल लक्ख अडवन्ना।
छत्तीस सहस्स असिइं सासय विवाइं पणमामि॥

पन्द्रह अब्ज, वियाली करोड़, अट्ठावन लाख, छत्तीस हजार और अस्सी (पूर्वोक्त प्रासाद के विषे) शाश्वत जिनविंव हैं उनको मैं वंदना करता हूं। अब जब चिन्तामणी वोलो तब इस प्रकार अर्थका चिन्तवन करना।

पूरण नामका तापस तापसी दीक्षा ले के उग्र तप करता था। पारणामें एक काष्ठ पात्रमें भोजन लाता था, पात्रमें चार खाना थे। उसमें से पहले पात्रका आतेजाते भिक्षुकों को देता था।

दूसरे पात्र का कौवा-कुत्तों को देता था। तीसरे पात्र का मछलियां, काचवा (कछुआ) आदि को देता था।

और चौथे पात्र में जो आता था वह खुद खाता था। एसे नियमपूर्वक तप करता था। तप उग्र होने पर भी ज्ञान विना किया गया। तप ये तप नहीं है। आश्रय के त्याग विना संवर का लाभ नहीं मिलता है।

लघुता में प्रभुता रही है। धर्म से रंगे आदमी में प्रभुता आती है। उपधान करने को आये थे तब जो कषायें थीं वे पतली हुई कि नहीं?

मनुष्य के कपाल (ललाट) ऊपर से मालूम होता है कि ये शान्ति में है अथवा क्रोध में।

नीचेके इन्द्र भी ऊपरके इन्द्रों के भवन में नहीं जा सकते। फिर तो मनुष्य कहाँ से जा सकते?

भवरूपी रोगको काढनेवाली औषधि के समान धर्मामृतका सेवन करना चाहिए।

रावण विमान में वैठ के कहीं जा रहा था। नीचे अष्टापद पर्वत के ऊपर वाली मुनि ध्यान धर रहे थे। वाली मुनिके सिरपर आते ही वह विमान रूक गया।

रावण गुस्से हो गया। अरे! इस साधुने मेरा विमान रोका! क्रोधावेशमें नीचे उतरके पर्वतको हिलाके, मुनिको उठाके समुद्रमें फेंक देनेकी दुष्ट बुद्धि सूझी।

पर्वत हिलाया, शिखर गिरने लगे। वाली मुनिने देखा कि रावण क्रोधावेशमें एसा अपकृत्य कर रहा है। मुनिको गुस्सा आ गया। मुनिने दाहिने पैरसे पहाड़ दबा दिया। रावण दबने लगा। खूनकी उल्टियाँ होनें लगी। हा! हा! शब्द मुखसे निकलने लगे तभीसे उसका नाम रावण पड़ा।

मुनिकी अशातना और तीर्थकी अशातना से कैसी सजा भोगनी पड़ती है वह नज़रसे देखा?

रावण ऊपर आके वाली मुनिसे क्षमा मांगने लगा। यहां वाली मुनिको क्रोध आया लेकिन यह क्रोध प्रशस्त कहा जाता है। प्रशस्त क्रोध करने की जैन शासन की आज्ञा है।

पर वस्तुकी इच्छा करना उसका नाम दुःख! अपनी मालिकी की वस्तु भी पुन्यके विना नहीं भोग सकते।

"परस्पृहा महादुःखं!" पर वस्तुकी स्पृहा में महा दुःख है। आत्मानंदी तो स्ववस्तु में ही रमण करनेवाले होते हैं। पर वस्तुकी इच्छा द्रव्यानंदी अथवा भवानंदी को होती है।

आत्म धर्मको चूक करके तेईस विषयों के पीछे अंध बनके चलना यह अंधापा है।

भूलको नहीं करे वह प्रथम नंबरका है। भूल करके पश्चात्ताप करे वह दूसरे नंबरका है। भूल करने पर भी भूलको भूल तरीके नहीं स्वीकारे वह अधम कहलाता है।

तुम्हारे जीवनमें कभी भूल हो जाय तो समझ के सुधारने के लिये प्रयत्न करना।

सांसारिक अनेक विध भोगोपभोग की सामग्री में आसक्त बने रहके जीवन सुधारणा की अपेक्षा करनेवाले को नागदत्त शेठका वृत्तान्त समझने जैसा है।

वारह वर्ष से नागदत्त शेठ एक भव्य प्रासाद वंधा रहे थे। एक समय कलाकारों के साथ वह शेठ वातचीत कर रहे थे। तव वहां से एक ज्ञानी मुनिराज पसार हो रहे थे। नागदत्त की वात सुनके मुनिराज को हँसना आया। नागदत्त विचारमें पड़ गए।

दूसरे दिन नागदत्त जीमने वैठे। छोटा वालक रोता था जिससे जीमता जाय और पालना झूलाता जाय। वहां

उसकी थालीमें बालक की मूत्रधारा आके गिरी। बराबर इसी समय वे ही मुनिवर वहांसे पसार हो रहे थे। यह दृश्य देखके भी उनको हँसना आया। नागदत्त का आश्चर्य चढ़ गया।

उसके बाद एक समय यह नागदत्त शेठ दुकान पर बैठे थे वहां रास्तेसे पसार हो रहा कसाई का एक बकरा शेठकी दुकान पर चढ़ गया। किसी भी तरह से बकरा नीचे उतरता नहीं था। यहां भी मुनिको उसी समय वहांसे निकलने का प्रसंग आया और यह दृश्य देखके भी मुनिको हंसना आया।

इस प्रकार तीसरी बार मुनिके हंसने से नागदत्त का सिर फिर गया।

उपाश्रय जाकर के मुनिसे हंसने का कारण पूछा। मुनिने जवाब दिया कि आज से सातवें दिन तेरी मृत्यु होनेवाली है और तू तो अभी तक प्रासाद को भव्य (सरस) बनाने का उछंग ले रहा है इसलिये मुझे तेरी इस मोहदशा पर हंसना आया और जिसका तू सूत्रभरा भोजन कर रहा था वह बालक तेरी पत्नीका पूर्वभव का प्रेमी था। तूने ही उसे मार डाला था। जबकि आज तू उसे प्रेमसे हिंडोल रहा था यह देखके मुझे हंसना आया।

उसके बाद—जिस बकरे को कसाई से रक्षण करने के लिये तूने आश्रय नहीं दिया वह तेरा गये जन्म का बाप था।

बोकड़ा (बकरा) को जातिस्मरण ज्ञान होतेही अपनी दुकानमें अपने पुत्रसे रक्षण पानेको आया था। तूने उसे निकाल दिया और उस कसाईने उसको मार डाला। यह हंसनेका तीसरा कारण था।

नागदत्त को मुनिके इन वचनों से आत्मज्ञान हुआ। संसार त्यागके; सातवें दिन कालधर्म पाके (मरके) देवलोकमें गया।

बत्तीस प्रकार के नाटक देवलोक में होते हैं। यह नाटक देखने को बैठो तो छः महीना बीत जाय। उन नाटकों के आगे मानवलोक के नाटक सिनेमा कचरा जैसे लगते हैं।

तुम्हारा उपादान पके बिना देव और गुरु तुम्हें सुधार नहीं सकते। उपादान पक गया हो तो हम निमित्त बन सकते हैं।

भगवानके समवशरणमें देशना के समय ३६३ पांखडी बैठते हैं। जी, जी, करे लेकिन समवसरण के बाहर जाय तो एसा ही बोलें कि यह इन्द्रजाली आया है। जगतको ठगने का धंधा करता है। एसा बोलनेवालों को तो तीर्थंकर देव भी नहीं सुधार सकते।

साधु-साध्वी और पोषध करनेवाले श्रावक-श्राविका खास कारण बिना यहां से वहां आंटा-फेरा नहीं मारते, नहीं रखड़ते। क्योंकि बारम्बार फिरनेसे कायी की क्रिया का दोष लगता है। शरीर के द्वारा कर्म बंधाय उसका नाम कायी की क्रिया।

ऐसे सूक्ष्म तत्वज्ञान को समझके जीवन सफल करो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–२९ वां

शासन नायक श्री महावीर देव फरमाते हैं कि :— संयम जीवन प्राप्त करने के लिये जन्मोजन्म की आराधना काम लगती है।

सम्पत्ति का लोभ गये विना संयम नहीं आता है। तीर्थंकर परमात्मा राज्य स्वीकारते हैं वह भी कर्म खिपाने के लिये।

परमात्मा के संयम के आगे दूसरे का संयम झाँखा लगता है।

तीर्थंकर देव द्रव्य और भाव दोनो तरहसे उपकारी हैं। द्रव्य दया वही कर सकता है कि जिसमें भाव दया आई हो।

जैसे विष्टा के कीडाको विष्टा में ही आनन्द आता है इसलिये विष्टा में ही रमता होता है। उसी प्रकार संसारी जीवको संसार के विषय कषाय में ही आनन्द आता है। इसीलिये ये संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

संसार के जीवों को अशुचि के घर रूप देह पर बहुत प्रेम है। इसीलिये यह देह छूटती नहीं है। और देहकी ममता छूटे विना संसार नहीं छूट सकता है। जब जीव जन्मता है तब शरीर पर एसी चमड़ी होती है कि देखना भी अच्छा नहीं लगे।

असार कायामें से सारभूत धर्म साधना हो तभी आत्मा को मोक्ष हो सकता है।

शरीर को कायम (हमेशा) एक समान रखने की भावना को देशवटा (देशनिकाल) दो।

खारे समुद्र में से भी शृंगी मच्छ मीठा पानी पीता है। इसी प्रकार दुर्गन्धी कायासे भी उत्तम धर्म का आराधना हो सकती है।

अरणीक मुनि पिताके साथ दीक्षित हुये थे। अरणीक मुनिकी बाल उमर होनेसे पितामुनि अरणीक को गोचरी आदिको नहीं भेजते थे। सब खुद ही करते थे। परन्तु काल कालका काम करता है। इसी तरह अरणीक मुनि के पिता देवलोक को प्राप्त हुये।

अरणीक मुनिको पारावार दुःख हुआ। खूब घबराये। अब क्या करना? क्या होगा? एसी अनेक विचारधारा अरणीक मुनि कर रहे थे। अन्तमें समझमें आया कि "जानेवाले तो चले गये" अब क्या हो? अब तो मुझे आराधना में लग जीना चाहिये। एसा विचार करके संयमकी आराधना में तल्लीन बने।

एक दिन अरणीक मुनि गोचरी को गये। गोचरी लाये विना चले एसा नहीं था। इसलिये गोचरी को तो जाना ही पडे। कभी गये नहीं थे। आज पहला ही मौका था।

वैशाख जेठ का असह्य ताप था। दोपहर को पैरमें फुल्ला उठें एसी गरमी थी। एसे समय में बाल दीक्षित अरणीक मुनि गोचरी को गये। युवानी की लालीसे वदन तेजस्वी था।

गरमी से कंटाल के आराम लेनेके लिये थोडी देर ओटला पर खड़े रहे। सामने से जिसका पति वहुत वर्षों से परदेश था एसी एक युवती इन तेजस्वी साधुको देख के मुग्ध वन गई। दासी को भेजके मुनिको आमन्त्रण दिया। मुनिवर इस युवती के घरमें आये।

लेकिन कम नसीब पलमें इस स्त्रीने इनको फँसा लिया। और घर रख लिया। साधु अव संसारी वन गये।

इनकी साध्वी माताको मालूम हुआ कि अरणीक मुनि गोचरी को गये थे सो अभी तक पीछे ही नहीं फिरे। माता को खबर हुई। उनकी शोधमें माता निकल पडीं। पता नहीं लगा। दिन पर दिन वीतने लगे माता पुत्र को खोजने में पागल जैसी वन गई थी।

एक दिन अरणीक मुनि और वह युवती गवाक्ष में बैठकर सोगठावाजी (चौसर) खेल रहे थे। वहां तो अरणीक को अपनी माता की आवाज सुनाई दी।

वह खड़ा हो गया। अरणीक अरणीक कहती माता को देखा। वह खड़ा हो गया अपनी स्थितिका भान आया। गवाक्ष से नीचे उतरकर माता के पैरों में गिर के चोधार आंसू रोते रोते अरणिक ने क्षमा मांगी।

"निरखी निज जननी ने त्यां तो
थयेली भूल समजाय।
चरणे ढल्या मुनि निज माताने
करजो मुजने सहाय॥"

विलास में डूबे हुये पुत्रको माताने फिर गुरु के पास हाजिर किया। फिरसे दीक्षा दिलाई।

और अपनी भूलके कारण इन अरणीक मुनिने एक

धखधखती (धधकती) शिलाके ऊपर अनशन किया। और आत्मा का उद्धार किया।

निकाचित कर्म के उदय से एक वक्त मुनिका चारित्र से पतन हुआ लेकिन जहां कर्मोदय पूरा हुआ वहां माताके सहकार से आत्मज्ञान जागृत हुआ। यह है कर्म की दशा?

महानुभाव। कर्म के उदय से कोई गिर जाय तो उसकी निन्दा नहीं कर के भावदया का चिंतवन करना।

सर्व विरतिधर अप्रमत्त होता है नींदमें भी शरीरका करवट वदलना हो तो ओघा से पूंजके फेरना चाहिये। भूतकाल के महापुरुषों में जव्वर अप्रमत्त भाव था।

शरीर के द्वारा एसी क्रिया नहीं करनी चाहिये जिस से अशुभ वन्धन हो।

उपधान के आराधकों से चलते चलते वोला नहीं जा सकता है। वे गीत भी नहीं गा सकते। यह हीर प्रश्न में कहा है।

जिस मनुष्य को मोक्ष सुख की प्राप्ति की इच्छा है उसे स्वभाव वदलना पड़ेगा। उपधान की आराधना करते करते स्वभाव वदल जाता है।

शस्त्र लाके बेचने से कर्म वन्धन होता है। इसे अधि-करणी की क्रिया लगती है।

श्रावक के २१ गुण हैं। उनमें दाक्षिणता भी है।

इस संसार में कदम कदम पर अधिकरणी की क्रिया लगती है।

वीतराग के शासन को प्राप्त हुआ आत्मा अधिक मकान नहीं रखता है। और अगर रखेभी तो किराये से नहीं देता है।

धर्म की हेलना (उपेक्षा) करने से खुद भी डूबता है। और दूसरों को भी डुबाता है। काम के विना बोलना नहीं चाहिये ये गुण है। मौन रहने से कलह नहीं होता है। और आत्मशक्ति का विकास होता है। बहुत सी लड़ाइयाँ और कंकास में से बचना हो तो मौन रहना सीखो।

किसी की भूल कहना है। तो आँख के सामने कहो लेकिन पीछे से नहीं कहो।

ठाणांग सूत्र में श्रावकों को चार प्रकार के कहा है। (१) माता समान (२) पिता समान (३) भाई समान (४) शौक (सौत) समान।

श्रेणिक महाराजा के द्रढ समकित की प्रशंसा इन्द्र महाराजा ने की। एक दुष्ट देव से यह प्रशंसा सहन नहीं हुई। उसने साधुके वेशमें सरोवर के किनारे मछलियां पकड़ना शुरू किया। श्रेणिक महाराजा फिरने गये थे। वहां यह द्रश्य देखकर कहते हैं कि साधु वेश में यह क्या करते हो?

तब वह देव साधु कहने लगा कि महावीर भगवान के सभी साधु एसे ही हैं।

श्रेणिक महाराजा आगे गये। वहां तो सामने से एक साध्वीजी सगर्भावस्था के चिन्हवाली होकर के सामने से आ रहीं थीं। पांचवाँ महीना चल रहा हो एसा संभवित हो रहा था। श्रेणिक महाराजा देखके चौंक उठे। अरे! साध्वीजी! साधु वेश में यह क्या किया? वेश को लजा दिया।

श्रेणिक महाराजा ने उस साध्वी की गर्भ प्रसूति की तमाम क्रियायें गुप्त कराई। किसी को खबर होगी तो साधु धर्म की निन्दा होगी। कैसी श्रद्धा है?

श्रद्धा की परीक्षा करने आया हुआ देव सन्तुष्ट होके चला गया ।

नगरी के ऊपर उपद्रव आने से युग प्रधान श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने उवसग्गहरं स्तोत्र रचा था । उसके पसाय से उपसर्ग टल गया । उवसग्गहरं स्तोत्र का महिमा अपार है ।

इस महिमा को समझ के तुम भी इस स्तोत्र के गिनने वाले नित्य बनो । तो जीवन निरुपद्रवी बन जायगा ।

यह उवसग्गहरं अर्थ सहित प्रतिक्रमण सार्थ की किताब में से देख लेना ।

काल काल में इस स्तोत्र का महिमा प्रबल है। ज्यादा नहीं तो सातबार इस स्तोत्र का पाठ अवश्य करो ।

बालवय में दीक्षित बने साधु दोडें, रमें (खेलें) फिर भी यह सब उन की बालवय कराती है । यह देखके समझदार मनुष्य टीका नहीं करते हैं ।

जगत में अपना कोई दुश्मन हो तो उसके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये । द्वेष करने से प्राद्वेशि की क्रिया लगती है ।

किसी मनुष्य को अपने स्वार्थ खातिर दुःख हो ऐसा नहीं कहना चाहिये । और कहें तो परितापनी की क्रिया लगती है ।

किसी जीव की हिंसा करने से प्राणातिपाती की क्रिया लगती है । जैनेतर शास्त्रों में हिंसा नहीं करने को कहा है । किन्तु हिंसा से बचने के लिये सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवशास्त्री तो जैनदर्शन में ही जानने को मिलता है ।

अगर कोई देवी प्रसन्न हो के कहे कि मांगो । जो

मांगना हो मांगो । तो क्या मांगो ? मेरी सात पेढी सुखी रहे । जरा भी दुख न आवे । यही मांगोगे ? कि सात पेढी तक धर्म टिका रहे यह मांगोगे ?

जीवन जीने में सत्य को मजबूत करो । सद्‌गुरूओं के प्रति उपकार भावना नहीं भूलनी चाहिये । संसार के कादव कीचड में से डूवते हुये मुझे वाहर काढा है यह तो मानते हो ? उपकारी के प्रति भी आज तो अपकार की भावना करने वाले वहुत हैं ।

जहर खाने से एक वार मरना पड़े किन्तु हिंसा करने से अनन्त मरन करना पड़ते हैं । मेघ के आगमन से जैसे मोर नाच उठते हैं वैसे ही जिनवाणी के सुनने से भक्तों के हृदय नाच उठना चाहिये ।

नमस्कार का अर्थ है पंचांग प्रणिपात । पांचों अंग इकट्ठा करके वंदन करना उसका नाम है पंचांग प्रणिपात । यानी उसे पंचांग प्रणिपात कहा जाता है ।

क्रोधके कडवे फलका वर्णन श्री उदयरत्न महाराजने सज्झायमें किया है । उस वर्णनको सुनके क्रोधसे पीछे हठो और समता सागरमें लीन वनो यही सत्य कल्याण का उपाय है ।

समकितमें अतिचार लगाने से व्यंतर आदि योनियों में जाना पड़ता है । मोक्षमें जाने के लिये समकित यह चावी है, अनन्त भवकी औषधि है ।

दुर्जन मनुष्य अन्य का अहित करके राजी (प्रसन्न) होता है लेकिन सज्जन मनुष्य दूसरों का भला करके राजी होता है ।

भीमकुमार के सत्वसे देव, देवी, राजा और विद्याधर

प्रसन्न हो गए थे। भीमकुमारने अपनी बुद्धिसे मिथ्यात्वी राजाओं को समकिती बनाया। राजा, प्रजा खुशी हुई। खुशी हुए राजाने भीमकुमार को राज्यधुरा सौंपके खुद दीक्षा लेके आत्मकल्याण किया।

केवल साधुवेश से ही केवलज्ञान होता है एसा नहीं है। भावना शुद्ध होनी चाहिए।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि एक भावनाके बलसे मोक्षमें गए। इलाचीकुमार भावना के बलसे केवली बनें।

भरत महाराजाने भावना के बलसे आरीसा भवनमें केवलज्ञान को प्राप्त किया।

पृथ्वीचन्द्र और गुणसागर भावना के बलसे चोरीमें और राजसभा में केवलज्ञान प्राप्त किया।

इसलिये भावना ही धर्म प्राप्ति की महान् औषधि है।

अयोध्या के राजा हरिसिंहके पुत्र पृथ्वीचन्द्र बालपन से ही वैरागी थे। माता-पिताके अति आग्रह से सोलह कन्याओं के साथ लग्न ग्रंथि से जुड़ाना पड़ा। लेकिन मन तो जल-कमलवत् था।

पुत्रको पक्का संसारी बनाने के लिये राजाने इनको राजगादी सोंप दी।

एक दिवस सिंहासन पर बैठके पृथ्वीचन्द्र चिंतनमें डूबे थे उस समय सुधन नामका व्यापारी आया। इस सुधनने एक कौतूक देखा था उसका वर्णन उसने पृथ्वीचंद्र के पास किया।

गजपुर गाँवमें रत्नसंचय नाम के शेठ के गुणसागर नाम का पुत्र था। ये भी बालपन से उच्च संस्कार ले के जन्मा था। संसार के प्रति उदास रहता था। माता पिताने

लग्न की वात कही माता पिताने लग्न की वात कही। तब पुत्रने कहा कि मैं शादी करके दूसरे दिन ही दीक्षा लूंगा। इसके साथ शादी करने वालीं आठों कन्यायें यह वात जानकर के भी उसके साथ परणनेको (शादी करनेको) तैयार हो गईं। यह कौतुक था।

चोरी (लग्नमंडप) में लग्नविधि चल रही थी। वहीं पर गुणसागर का आत्मा उच्च श्रेणी में संचरता है। और यह लग्नमंडप में ही केवलज्ञान को प्राप्त करता हैं। एसा उत्तम पति मिलने के वदले में शुभ भावना भातीं हुई वे आठों कन्यायें भी केवलज्ञान को प्राप्त करती हैं।

सुधन के मुखसे एसा मंगलमय वृत्तान्त सुनते सुनते पृथ्वीचन्द्र केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। यह है भावना का जादू।

भावना से राज्य सभामें केवलज्ञान होते ही आश्चर्य फैल गया। देवलोक से देव दौड़ आये। और साधु वेश दिया।

भरत महाराजा आरीसा भवन में गये। वहां उनकी अंगुली की मुद्रिका गिर गई। ओहो! जगत अनित्य है। काया अनित्य है। कुंडल अनित्य हैं।

एसे विचारोंमें ही विचारमें भरत महाराजा ऊंची भावना में चढ गये। और केवलज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान होते ही देव आये। देवोंने आके कहा पहले साधु-वेश लो। पीछे वन्दन करेंगे। भरत महाराजा ने साधुवेश पहना। पीछे देवोंने वंदन किया। इस वेष की भी कितनी महिमा है।

वारह व्रत यह सैनिक हैं और समकित ये सेनापति

है। जो सेनापति न हो तो सैन्य में भगदड़ मच जाय और सेना व्यवस्थित ढंगसे नहीं चले इसलिये सेनापति की जरूरत है। इसी तरह समकित न हो तो दूसरे व्रतो की कोई कीमत नहीं है। इसलिये सर्व प्रथम समकित होना चाहिए।

धर्मपरायण कुमारपाल महाराजा को हेमचन्द्रसूरिजी महाराजने अठारह देशके राजाओंकी हाजिरीमें "परमार्हत्" की पद्वी दी थी। जैन शासन के लिये कितनी तत्परता बताई होगी तब यह पद्वी उनको मिली।

तुम्हारे भी पद्वी चाहिये तो जीवन धर्म-परायण सुंदर बनावो।

हेमचन्द्रसूरिजी महाराज की हाजिरी में ही उनकी चरणपादुका तैयार कराके कुमारपाल राजाने त्रिभुवनपाल विहार नामके मन्दिर में स्थापित की। अनन्य गुरुभक्त एसे राजा कुमारपाल को धन्य हो।

जो कोई हिंसा करेगा वह राजद्रोही कहलायगा। और राज्यकी भयंकर सजाको प्राप्त करेगा। एसा बट हुकम (विशेष आदेज) कुमारपाल महाराजाने अपने अठारह देशोंमें जाहिर किया था।

ऐसे बटहुक्म से मिथ्यात्वी लोग खूब खिजाये लेकिन राज्य शक्ति प्रबल थी। किसी का कुछ भी नहीं चल सकता था।

सचमुच में जैन शासन की प्रभावना करना हो तो सत्व चाहिये।

कुमारपाल राजने हेमचन्द्रसूरिजी के संयोग को प्रात करके जैसी शासन प्रभावना की है वैसी आजतक किसी राजाने नहीं की।

उस प्रभावना की अनुमोदना करने से प्रभावना करने की शक्ति सभीको प्राप्त हो यही शुभेच्छा।

व्याख्यान–तीसवाँ

अनंत उपकारी शास्त्रकार परमर्षि फरमाते हैं कि मानव शरीर को उत्तम गिनने का कारण यही है कि मोक्षसाधना इस शरीर से ही हो सकती है। इसलिये।

व्यवहार शुद्ध बनाये बिना जीवन शुद्धि नहीं हो सकती है। भूमिका शुद्ध किये बिना चित्रामण को (चित्र) सुन्दर नहीं बनाया जा सकता है। एक चित्रकार की भूमि शुद्धि की बात जानने जैसी है:

एक राजा की सभामें एक मनुष्य नजराना ले के राजा के चरण में भेट धरने को आया। वह इसी राज्य का वतनी था। लेकिन कमाने के लिये परदेश गया था। बहुत बहुत स्थानों में फिरके और कमाई करके ये पीछे देशमें आया था।

राजाने उसकी खबर पूछी। और कहां कहां फिर आया वह बताने के लिये कहा। इस मनुष्यने भी खुद जहां जहां फिरा होगा वहां का और वहां जो महत्व का देखा था वगैरह उसका वर्णन किया।

राजाने पूछा कि तू सब जगह फिर आया। और सब देख आया। लेकिन तू ये बता कि दूसरे राज्य में तूने एसा क्या अच्छा देखा जो अपने राज्य में नहीं हो।

उसने कहा कि अमुक राज्यमें एसी चित्र सभा देखी

कि जो दूसरी जगह कहीं भी नहीं है। अपने राज्यमें भी उसकी खामी (कमी) है।

राजाने उसी समय अपने मनुष्यों को हुक्म दिया और दूसरे राज्यमें जिन कारीगरों ने चित्रशाला बनाई थी उनमें से ही दो कारीगरों को बुलाया।

यह कारीगर आए इसलिये राजाने उन कारीगरोंको बुलाके हुक्म किया कि तुम दोनो जनें मिलके उस राज्य में है इससे भी सुंदर ऐसी चित्रशाला छः महीना में बनाओ और उसके लिये तुम्हें जो चाहिए वह मिलेगा।

कारीगर काममें लग गए। छः महीना पूरे हुए। इसलिये राजाने उन दोनों कारीगरोंको बुलाया और पूछा कि तुम दोनोंका काम पूरा हुआ?

एक कारीगरने कहा कि मैंने तो मेरा भाग बराबर चित्रमय बना दिया है।

दूसरे कारीगरने कहा कि महाराज! मैंने तो अभी तक पींछी भी हाथमें नहीं ली।

राजाने कहाकि तो फिर तुमने अभीतक किया क्या?

उसने कहा कि मैंने तो अभी तक सिर्फ सफाई का ही काम किया है। वह शब्द से कहकर तुमको समझाया जासके ऐसा नहीं है। आप वहां देखने के लिये पधारो इससे आपको ख्यालमें आ जायगा। राजा अपने परिवार सहित नई चित्रशाला देखने के लिये गया।

राजा देखता है तो पूरी चित्रशाला को चित्रमय देखकर के राजा खुश हो गया।

जिस कारीगरने यह कथा कि मैंने अभी तक पींछी

भी हाथ में नहीं ली उस कारीगर से राजा कहने लगा कि तुमने तुम्हारा काम पूरा कर दिया फिर भी तुम एसा क्यों कहते हो कि अभी पींछी भी हाथ में नहीं ली।

उसने कहा महाराज! मैंने जो वात कही थी वह सच है। देखो!

इस प्रमाण कहके कारीगरने चित्रशाला के मध्यभाग में जो परदा था वह डाल दिया।

वीच में परदा आजाने से चित्रशाला के ये अडधे भाग की भीत कोरी कट (चित्र विना) दिखाई दी।

राजाने पूछा एसा क्यों चित्रकारने कहा कि चित्र चितरी हुई दीवाल में से इस साफ की हुई भीत में उस चित्र का प्रतिबिम्ब गिरता था। वीचमें परदा गिरा इस लिये प्रतिबिम्ब गिरना बन्द हो गया।

दीवाल को पहले स्वच्छ करना चाहिये। और फिर चित्रामन हो तो चित्र एकदम अच्छा उठे। इसी प्रकार जीवन शुद्धि के लिये व्यवहार शुद्धि की पहली भी आवश्यकता है।

महापराक्रम के विना परमपद मिलनेवाला नहीं है। इस संसार में कर्म के सिवाय दूसरा कोई भी शत्रु नहीं है।

कुमारपाल महाराजाने सात व्यसन के सात पुतले बनाये थे। उन सातों के काले मुँह करके गधे पर बैठाके पूरे शहर में फिराये। यह द्रश्य देखकर नगरवासीयों को एसा लगा कि अगर इन सात व्यसनों में से अपन एक भी व्यसन का सेवन करेंगे तो अपनी भी यह दशा होगी। इस लिये चेतते रहना। कुमारपाल का सात व्यसन पर कितनी घृणा थी वह तो देखा?

कुमारपाल राजा-सामायिक में बैठे थे। समताभाव में लीन बनके बैठे थे। इतने में एक मकोडा राजा के पैर में चिपक गया (काटने लगा)। प्रयत्न करने पर भी नहीं निकला। राजाने विचार किया कि अगर इसे दूर करने जायेंगे तो मर जायगा। एसा विचार के उतनी अपनी चमडी काटके चमड़ी सहित मंकोडे को रख दिया। अपने को पीडा हुई उसकी परवाह नहीं करके मंकोडा को बचा लिया। कैसी दया भावना!

तीन खंड के मालिक लक्ष्मणजी मृत्यु को प्राप्त हुये। वह देखकर रामचन्द्रजी के पुत्र लव और कुश को वैराग्य आया। उनको विचार आया कि अरे! तीन खंड के मालिक और बत्तीस हजार स्त्रियों के भोक्ता एसे काका मर गये। हमारी भी मृत्यु हो उसके पहले आत्मसाधना कर लेनी चाहिये। बस! वैराग्य भावना शुरू हो गई।

रामचन्द्रजी मूर्छित होके लक्ष्मणजी के शव के पास पडे थे। बोलने की ताकत नहीं थी। वहां पुत्र आके कहने लगे कि पिताजी! काका मर गये हैं। यह दृश्य देखकर हमें वैराग्य आया है। इसलिये दीक्षा लेना है। तो अनुमति दो। एसा कह के दोनों पुत्र चलते बनें। एसे प्रसंग में रजा (मंजूरी) मांगना योग्य है?

दीक्षा की बात करना योग्य है? क्या? उन्हें व्यवहार का ज्ञान नहीं था? एसे अनेक विचार तुम्हें आगये होंगे।

दोनों पुत्र केवलज्ञानी महात्मा के पास पहुंचे। धर्मदेशना शुरू हुई। दोनों जनें देशना सुनने को बैठ गये। वैराग्य रस झरती देशना को सुनके दोनों प्रफुल्ल चित्त बन गये। देशना पूरी हुई। दोनों जनोंने दीक्षा की मांग

की। केवली भगवन्तने दोनों को दीक्षा दी। दोनों जनें अत्यन्त हर्षित हुये। इसका नाम जैन शासन की आराधना की तमन्ना।

गाँव में दोनों वर्ग हों। प्रशंसक भी हों और निन्दक भी हों। दोनों को समान गिनके चले उसका नाम मुनि।

जहां विषय का विराग हो उसका नाम धर्म। जब तक विषयों का विराग नहीं आवे तब तक मोक्ष नहीं मिले। धर्म समझे हुये आत्मा संसार के कुरिवाजों के त्यागी होते हैं। कुरिवाजों को रखनेवाला धर्मी नहीं है।

बातों में धर्म नहीं है। वर्तन में धर्म है। दुनिया में रहने पर भी अभ्यंतर पने से दुनिया से अलग रहे उसका नाम धर्मात्मा।

दुनिया की नीति भिन्न है। और धर्म की नीति भिन्न है। स्वार्थ के लिये नहीं किन्तु परमार्थ के लिये अपनी जात को निचोदे उसका नाम धर्म।

परमात्मा के पास जाके चैतन्यवंदन करते हो। उसमें अंतमें प्रार्थना सूत्र "जयवीराय" बोलते हो। लेकिन उसमें क्या आता है? ये तुमको मालूम है? उस में कहा है कि हे भगवन्! तुम्हारे शास्त्र में नियाणा को बांधने का निषेध किया है किन्तु फिरभी मुझे भव भव में तुम्हारे चरणों की सेवा हो।"

धर्म से अमुक फल मिले एसी इच्छा करना उसे "नियाणुं" कहते हैं। इस तरहसे नियाणुं करनेकी शास्त्र में मनाई है।

सुहपत्तीके बोलमें आता है कि "माया शल्य, नियाण शल्य और मिथ्यात्व शल्य परिहरूं।" फिर भी भवभवमें वीतरागदेव की चरणसेवा इच्छी है।

इस इच्छा को नियाणुं नहीं कह सकते। क्योंकि उसमें कोई सुख-सामग्री नहीं मांगी। अरे! मोक्षकी भी मांग नहीं है।

प्रभुके चरणों की सेवा रूप भक्ति की मांग है। उसमें समर्पण भाव है और यह भाव प्रशंसनीय गिना जाता है।

"जय वीयराय" यह प्रार्थनासूत्र है। जिसके अन्दर याचना अंतरकी अभिलाषा प्रदर्शित की जाय उसका नाम प्रार्थना सूत्र।

क्या क्या अभिलाषायें जिनेश्वर परमात्मा के पास प्रगट की जा सकतीं हैं, यह समझना हो तो जयवीयराय सूत्रके अर्थ गुरुगम से समझ लेना। इस सूत्रमें इतनी भव्य भावना भरी है कि जो समझने में आवे तो जीवन का कल्याण हुए बिना नहीं रहे।

उपयोग से चलो तो जीवहिंसा से बचा जा सकता है। शरीर को भी सुख हो सकता है और उपयोग का भी लाभ मिले—

"नीची नजरे चालतां, त्रण गुण मोटा थाय।
कांटो टले दया पले, पग पण नहि खरडाय॥

हालमें लोकशाही राज्य है। इस राज्य में कितनी हिंसा चालू है? आजके कुर्सीधारी (सत्ताधीश) इतनी हिंसा करावें, हिंसामें प्रोत्साहन दें एसा होता हो वहांकी प्रजामें किस तरह सुसंस्कार आ सकते हैं?

पुत्री दो लेकिन पैसा लेके दो उसका नाम लोहीका व्यापार! इसमें दलाली करनेवाले भी इसी कोटिके होते

हैं। पुत्रीका पैसा लेने से कौनसी गति में जाना पड़ेगा उसका विचार करना चाहिए।

भगवान गौतम स्वामी महावीर परमात्मा से पूछते हैं कि हे भगवन्! मनुष्य पहले क्रिया करते है? कि पहले वेदना भोगता है?

परमदयालु भगवंतने उत्तरमें कहा कि :-पहले क्रिया करता है फिर वेदना भोगता है। क्रिया करने से कर्म बंधता है। वह उदयमें आवे तब अनुभव करना पड़ता है।

आत्माके परिणाम पल-पलमें बदलते रहते हैं। जैसी क्रिया वैसे परिणाम। बाहरकी क्रिया का असर अन्तरमें पड़ता है।

आज विज्ञान बढ़ गया है। विज्ञानका अर्थ होता है विचार बिना का ज्ञान। यह अर्थ आजके कहे जानेवाले विज्ञानको अनुलक्ष करके ही है।

जहां आत्मा का जरा भी विचार नहीं है, परन्तु दैहिक लालसा की तृप्तिका ही विचार है। ऐसे ज्ञानको विचार बिना का ज्ञान कहने में क्या विरोध? डगले ने पगले (कदम कदम पर) वैज्ञानिक साधनोंका बढ़ना मानव जीवनको भयभीत बना रहा है।

जैसे शुष्क घासको जलाते देर नहीं लगती है उसी तरह आश्रवका द्वार बंद करके धर्म करो, इसलिये धर्म तुरंत असर करेगा।

मन, वचन काया के योग एक समान नहीं होने से प्रमाद से कर्म आते हैं। प्रमाद से जीव अनेक जीवों की हिंसा करता है। प्रमादी साधुका काल कितना? जघन्य

से एक समय अथवा अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्व क्रोड वर्ष तक।

योगजन्य सुख यह वास्तविक सुख नहीं है, लेकिन सुखकी आशा है।

पर्व तिथियों में आयुष्य का बंध पड़ता है इसलिये पर्व तिथियोंमें विशेष धर्म करना चाहिए एसी शास्त्राज्ञा है।

संसारमें रहने पर भी वैराग्यभाव से रहनेवाले एक राजा का कितना महत्व बढ गया है यह नजरोंसे देखने के बाद रानी चौंक उठी। अहा! मेरे प्रियतम मेरे से बिलकुल निराले हैं।

दो सगे भाई थे! दोनों वैरागी थे। बड़े भाईने राज्यधुरा छोटे भाईको सौंप करके दीक्षा ले ली। दीक्षा लिये बारह वर्ष बीत गये। आज भाई मुनि नगरी के उद्यानमें पधारे। यह समाचार सुनकर राजा वंदन करके घर आया।

रातका समय था। अपनी प्रिय पत्नी के साथ राजा बैठा था। बातबात में राजाने कहा कि हे प्रिये! मेरे भाईने दीक्षा ली थी उस बातको आज बारह वर्ष बीत गए। वह भाई मुनि उद्यानमें पधारे हैं। मैं वंदना करने गया था। सचमुच में उन्होंने तो तप करके काया को सुखा डाली है।

क्या? तुम अकेले जाके आये? साथमें मुझे नहीं ले गये? देखो? सुनो! आवती काल सुबह में वंदन किये बिना अपन को कुछ भी नहीं खाना है। ये मेरी प्रतिज्ञा।

एसी सख्त प्रतिज्ञा सुनके राजा प्रसन्न हो गया।

बनवाकाल एसा बना कि रातको मूशलधार बरसाद

गिरी। नदी नाले छलक गये। प्रातःकाल हुआ। पौरजनों का आना जाना वढ गया। रानी विचारमें पड़ गई। अव क्या करना? राजा के पास जाकर के कहने लगी कि प्रियतम। वर्षाने तो कमाल कर दिया। अव मुझे तो वंदन करने जाना है तो क्या करना?

प्रिये! रथमें जाओ। नदी के किनारे जाके कहना कि हे नदी देवी! मुनि जव से दीक्षित वने हैं तव से जो उपवासी हों तो मुझे जानेकी जगह दे। रानी प्रसन्न चित्त होकर के गई। राजा के कहे अनुसार कहा। रानी को जगह मिल गई।

इसके वाद मुनि महाराज के पास जाके वंदन करके साथ में लाये हुये अपने नास्ता में से महात्मा को भक्ति करके वहोराया।

रानी को आश्चर्य हुआ कि मुनिको प्रत्यक्ष वहोराया है। तो फिर ये उपवासी कैसे? और उनको उपवासी कहने से ही नदीने मार्ग दिया है तो इसमें समझना क्या?

वहां से वापिस आते समय नदी का पूर फिर से आजाने से आना मुश्किल हो गया। तव मुनिने कहा कि तू नदी के पास जाकर के एसा कहना कि "मेरा पति ब्रह्मचारी हो तो हे नदी! मुझे जगह देना"।

जव रानी ने एसा कहा तो सुलभता से अपने स्थान में पहुंच गई। लेकिन उसे आश्चर्य हुआ कि मैं हूं फिर भी मेरा पति ब्रह्मचारी कैसे कहा जा सकता?

पति ने मुनि उपवासी होने की शंका का समाधान करते हुये कहा कि भाई मुनि उग्र तपस्वी है। फिर भी पारणा के दिन आहार लेने पर भी निराशंसपने और

रस कस विना का आहार लेते होने से वे उपवासी कहलाते हैं ।

मुनि के पास जाके पति ब्रह्मचारी होनेकी शंका का समाधान ये मिला कि तेरा पति स्वदारा संतोषी होनेसे देश से ब्रह्मचारी गिना जाता है । मुनि ने कहा कि मैंने दीक्षा ली तभी से मेरा भाई भाव से वैरागी है । तेरे संतोष के लिये संसार में रहा है ।

यह सुनकर के रानी सन्तुष्ट बनी ।
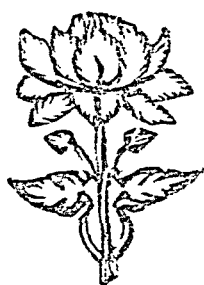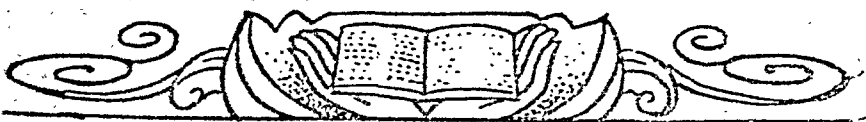
व्याख्यान-इकतीसवां

चरम तीर्थ पति आसन्न उपकारी श्रमण भगवान महावीरदेव ने अपने ऊपर अमाप उपकार किया। उस उपकारका स्मरण करने जैसा है।

छट्ठी और सातवीं नरक में पांच करोड़ अडसठ लाख निन्यानवे हजार पांचसौ चौरासी रोग हैं। वहां कितनी वेदना होगी? ये सब वेदनायें क्यों भोगनी पड़ती होंगी? आरंभ समारंभ खूब करने से। अति आरंभ और समारंभ नरक का कारण है।

भवदत्त मुनि दीक्षित बनके घर भिक्षा के लिये आये। उनका छोटा भाई भवदेव घरमें था। गई काल ही लग्न करके नागीला नाम की रूपवती कन्या को परण के लाया था। उसका श्रृंगार कर रहा था। उसके साथ प्रेम मस्ती में पागल बना था। वहां भाई मुनि का मीठा शब्द कर्णपुट पर सुनाई दिया।:—

"धर्मलाभ"। भवदेव नीचे आया। मुनिको भिक्षा वहोराई। इसके बाद भवदेव मुनिके साथ चलने लगा।

भाई मुनि के पास झोली में अधिक वजन होने से भवदेव भवदत्त मुनिके पास से थोड़ा वजन खुद ही उचक लिया। और मुनि के साथ चलने लगा।

चलते चलते मन तो उसका नागीला में ही रम रहा

था। लेकिन भाई मुनि जब तक छुट्टी नहीं दें तब तक पीछे जाय किस तरह से?

स्वस्थाने पहुंचने के बाद भवदत्त मुनि भवदेव से पूछने लगे कि तुझे दीक्षा लेना है? शरम से भाई ना नहीं कह सका। और भवदेव भी दीक्षित बन गया।

मुनि अवस्था में भी मन तो नागीला में ही रम रहा था। एक समय भी नागीला विसराती नहीं थी। आखिर मुनिमंडल अन्यत्र विहार कर गये।

दीक्षा विनाभाव शरम से ली थी। प्रतिसमय दिलमें नागीला का ध्यान चालू था। एसा करते करते बारह वर्ष का समय बीत गया।

यहां सज्ज बनी नागीला अपने पतिकी राह देख देख के थक गई। अंतमें उसने मान लिया कि मेरे पति भी भाई मुनिके साथ चले गये। और संयम स्वीकार लिया।

बारह वर्ष के बाद भवदेव मुनि विहार करते करते अपनी नगरीमें आये। मन से तैयार होके आये थे कि घर जाना नगीला के पास से क्षमा मागना और साधुपना छोड़ देना इस विचार से वे घर आये थे।

गाँव के बाहर कुवा के किनारे नगर की नारियां पानी भर रहीं थीं।

शरीर से कृश बनी पानी भरने को आई एक नारी से भवदेव मुनि पूछने लगे कि बहन! मेरी नागीला तो मजामें है?

मुनि जिससे पूछ रहे थे वह नारी दूसरी कोई नहीं किन्तु खुद नागीला ही थी।

कहां बारह वर्ष पहले यौवन के पूरमें छलकाई जाती नागीला और आज कृश बनी नागीला। शरीर की शोभा में मुखकी लाली में अत्यंत फरक पड़ गया था। इस लिये भवदेव को कहां से मालूम हो कि नागीला यह खुद ही है।

नागीलाने अपने पति को पहचान लिया। फिर भी कोई भी अधिक बात किये बिना झट जल्दी जल्दी अपने घर पहुंच गई। थोड़ी देरमें तो भवदेव भी घर पहुंच गये। मुनिको आता देखकर नागीला कहने लगी कि पधारो साहेब! शातामें तो हो? मुनि कहने लगे कि नागीला तू है? जी हां! तो मैं तेरे पास क्षमा मागता हूं। मैं द्रव्य से साधु बना हूं भाव से नहीं। भाव तो मेरा तेरे में ही था। इसलिये आज फिर आ गया हूं। अब तो मैं कायम के लिये तेरा ही बनके रहने वाला हूं।

महात्मन्! क्षमा मांगने की कुछ भी जरूरत नहीं है। आपने संयम स्वीकारा है वह अच्छा किया। अब तो दिल स्थिर रखके आत्मसाधना में तत्पर बन जाओ। और मुझे भूल जाओ।

नागीला ने मुनि को स्थिर करनेका प्रयत्न किया।

नागीला! लेकिन तेरे बिना मेरा मन और कहीं भी लगे एसा नहीं है। मैं तो तुझे मिलने के लिये ही आया हूं। मुनिने हृदय का उभरा उकेल दिया।

महात्मन्। अमृत कुंड में स्वाद मानने के बाद पुनः विष कुंड में प्रवेशनेका मन कौन करे? इस लिये आप पीछे गुरु महाराज के पास पधारो और संयम में स्थिर बनो।

इस तरह से नागीलाने समझा के अपने पति को

संयम में स्थिर किया। मुनि गुरु महाराज के पास पहुंच गये। आत्मभाव में स्थिर रहके संयम में स्थिर बने। इस का नाम पतिव्रत स्त्री कहा जाता है।

समकिती का मन मुक्ति में होता है। और शरीर संसार में होता है।

रस झरते मादक पदार्थ खाने से विकार उत्पन्न होता है। इसलिये रस कस विना का भोजन करना चाहिये। विगईयों का त्याग करने से दम भी मिट जाता है।

भूल छोटी हो कि बड़ी हरेकका प्रायश्चित लेना चाहिये। भगवान की आज्ञा रूपी लगाम जिसके हाथ में आजाय वह आत्मा संसार से पार पहुंच सकता है।

अच्छा मिलने पर राजी न हो और खराब मिलने पर मुख खराब नहीं बनावे तो समझ लो कि धर्म बसा है।

हरेक वस्तु में चार निक्षेपा होते है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव। इन चार निक्षेपों को समझ के चलना चाहिये।

कुमारपाल के राज्य में से मोहराजा की पुत्री हिंसा रिसा के चली गई थी क्यों कि कुमारपाल राजा अहिंसा के उपासक थे।

जड पदार्थोंने जगत के जीवों को पागल बनाया है। पैसा जड, घर जड, काया जड, मोटरकार जड, यह सब जड होने पर भी उसके प्रति ये जीव कैसे रागी बन रहे हैं?

अगर उपाश्रय में स्त्री के फोटो (चित्र) हों तो वहां साधु नहीं रहता है। एसा दश वैसालिक सूत्रमें फरमान है। क्यों कि स्त्री का चित्र भी विकार का कारण है।

जिस को विरति रूपी रानी है। समता, विवेक और

विनय नाम के पुत्र हैं। शुभध्यान नाम का सेनापति है। सद्गुण स्वरूप सैनिक हैं और करुणा नाम की पुत्री है। ऐसे मुनि ही इस संसार में सुखी हैं।

मोहराजा के अविरति नाम की रानी है। हिंसा नाम की पुत्री है। मिथ्यात्व नाम का पुत्र है। दुर्ध्यान नाम का दंडनायक है।

भगवान श्री महावीर परमात्मा से श्री गौतम गणधर पूछते हैं कि हे भगवन्! धर्म किस में आता है?

भगवानने कहा कि हे गौतम! जिसे इन्द्रिय जय की भावना हो, मोक्ष की अभिलाषा हो, और संसार के प्रति अरुचि हो उसके जीवन में धर्म आता है।

तीर्थंकर परमात्माओं की कोई भी देशना निष्फल नहीं जाती है। भगवान श्री महावीर देव की प्रथम देशना निष्फल गई वह आश्चर्य गिना जाता है।

उत्सर्पिनी और अवसर्पिणी स्वरूप काल भरत और एरावत क्षेत्र में ही होते हैं। महाविदेह में नहीं होते हैं। वहां तो हमेशा चौथा आरा ही वर्तता है। महाविदेह से हमेशा के लिये मोक्षमार्ग खुला है।

समकितावस्था में परभव का आयुष्य बांधनेवाला मनुष्य नियम से वैमानिक देव का ही आयुष्य बांधता है।

पृथ्वी पर विचरते तीर्थंकरों का अस्तित्व उत्कृष्ट से १७० (१७०) का होता है।

पांच भरतक्षेत्र में, एकएक एसे पांच, ऐरावत क्षेत्र में एक एक ऐसे पांच, और पांच महाविदेह की १६० विजय में एक एक हो तो १६० एसे कुल १७० तीर्थंकर विचरते हो सकते हैं।

इस रीत का संख्या प्रमाण विचरते तीर्थंकर भरत-क्षेत्र में विचरते अजितनाथजी भगवान के समय में थे। एक साथ एक स्थल में एक से अधिक तीर्थंकर नहीं हो सकते।

धर्म मनुष्य को सत्य रूपी वस्त्र तिलक करता है। सदाचार रूप छत्र धारण करता है। दान रूपी कंकन (कंगन) पहनाता है संवेग रूपी हाथी पर बैठाता है, विविध व्रत धारण रूपी जानैया (वराती)ओं से शोभाता है, बारह भावना रूपी स्त्रियों से धवलमंगल गीत गवाता है। क्षमा रूपी बहन के पास से लुंछणा लिखाता है।

और इस तरह से अनुक्रम से मोक्षरूपी वधू के साथ लग्न करा देता है ये सब क्रियायें धर्म ही कराता है। इसलिये पुन्यशालियों को तदाकार बनना चाहिये।

नवपद रूपी नवसेरा हार पहनने जैसा है। श्रद्धा-रूपी वेदिका, सद्‌विचार रूपी तोरण, बोध रूपी अग्नि, नवतत्व रूपी घी से यह आत्मा अपने कर्म रूपी ईंधन को जला देती है।

युगलिक मनुष्य और देवों का परभव का आयुष्य वहां से मृत्यु होने के छः महीना पहले बंधती है।

देव, नारकी, युगलिक और तिरेसठ शलाका पुरुषों का आयुष्य निरुपक्रमी होता है। उनका आयुष्य किसी भी तरह के उपघात से नहीं टूटता है। अपने आयुष्य को उपघात तोड़ सकते हैं।

भाषा कर्मणा के पुद्‌गल टकराने से शब्द श्रवण होता है। और योग्यायोग्य शब्द श्रमणानुसार श्रोता के परि-णाम जगते हैं। इसीलिये ही आगमों का श्रवण करनेवाले श्रोताओं को कर्मनिर्जरा होती है।

चारित्र मोहनीय कर्म के प्रबल उदयवालो को दीक्षा उदय में ही नहा आती है। हंसने से और रोने से मोहनीय कर्म बंधता है।

महापुरुष एक तो हंसते ही नहीं हैं और अगर हंसते भी हैं तो सामान्य मुख मलकाते हैं। इतना ही हंसते हैं ज्यादा हंसने से खराब लगता है।

दुःखके समय अशुभोदय की कल्पना करना, लेकिन दुःखको नहीं रोना। पापोदय की मुद्दत पूर्ण होते ह दुःख अपने आप चला जानेवाला है। परंतु दुःखकी वेला में हायवोय (हाय हाय) करने से दुःख का असर दूना हो जायगा।

गुनहगार को सिपाही पकड़ के ले जाता हो तब गुनहगार छूट जानेका, भाग जानेका अगर प्रयत्न करे तो सजा दूनी भोगना पड़ती है और ऊपर से दंडा खाना पड़े। इसी तरह पूर्वभव में किए हुए पापरूपी गुन्हा से कर्मराजा तुमको शिक्षा (सजा) करने आवे तव आनाकानी (हां-ना) किए विना हंसते मुखसे भोग लो तब तो कुछ भी नुकशान नहीं आवेगा। नहीं तो परम्परा से गुन्हा वढेगा और सजा भी वढेगी यह समझ लेना।

दर्शनावरणीय कर्म का उदय निद्रा को लाता है। अधिक सोने से रोगिष्ट होता है।

कुलका अभिमान करने से भगवान महावीर स्वामी के जीवने मरीचि के भवमें नीचगोत्र कर्म बांधा था ओर इसीलिये देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षिमें वियासी दिन-रात रहना पड़ा। तियासीवें दिन इन्द्र महाराजा की आज्ञा से

हरिणगमेषी देवने मानवलोक में आके गर्भ का संक्रमण किया था।

खरतर गच्छवाले इस प्रसंग को कल्याणक मानके भगवान महावीर के छः कल्याणक मानते हैं। परन्तु कल्याणक होय उस प्रसंगको तो देव-समूह मिलके उसकी उज्रवणी करते हैं। इस संक्रमण के प्रसंगमें तो केवल हरिणगमेषी देवके सिवाय कोई देव भी नहीं आए और इन्द्र भी नहीं आए तो फिर उसे कल्याणक कैसे कह सकते हैं। इसलिये कल्याणक छः नहीं परन्तु पांच की मान्यता ठीक है।

"यात्रा पंचाशक" ग्रंथमें पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी महाराजने इस विषयमें सचोट मार्गदर्शन किया है।

भगवान श्री महावीरदेव के शासनमें २००४ युगप्रधान होंनेवाले हैं। उनमें से ९० जितने हुए हैं। युग प्रधान जहां विचरे वहां मरकी आदि उपद्रव नहीं होते हैं। सर्व साधु समुदाय उनकी आज्ञा में रहे। उनके वचनों का लोगों के ऊपर जब्बर प्रभाव पड़े। एक छत्री साम्राज्य स्थपाय और जैन शासनकी भारे प्रभावना हो।

चक्रवर्ती जब जिनमन्दिर में जाता है तब चक्रवर्ती पना बाहर रखके जाता है और राजा राज्य की खुमारी (अभिमान) बाहर रखके जाता है इसीलिये चैत्यवन्दन भाष्यमें लिखा है कि—

"इह पंच विहा भिगमो अहवा
मुच्चन्ति राय चिन्हाइं।
खग्गं छत्तो वाणहं मउडं
चमरे अ पंचमए॥

गृहस्थ को भी जिनमन्दिर में जाने के पहले—

"सचित्त दव्व मुज्झण
मचित्तं मणज्झणं मणे गतं।
इग साडी उत्तरासंगे
अंजली सिरसी जिण दिट्ठे ॥

राजा महाराजा जिन मन्दिरमें प्रवेश करते ही शस्त्र, छत्र, मोजडी (जूती), मुकुट और चामर (चँवर) ये वस्तुयें जिन मन्दिरके बाहर रखके जाते हैं और एसा करना भी चाहिए उसे पांच अभिगम कहते हैं।

गृहस्थीओं को भी जिनमन्दिर में प्रवेश करते पहले सचित्त द्रव्यका त्याग, अचित्तका अत्याग, मनकी एकाग्रता अखंड उत्तरासन और प्रभुको देखते ही दोनों हाथ जोडना इस तरह पांच अभिगम पालना चाहिए।

मन्दिर और उपाश्रय में जाना तथा पच्चक्खाण करते जो जो सीखे हैं और करते हैं वह ठीक है परन्तु आज वह करने को जितनी तमन्ना है उतनी उसकी विधि जानने की तमन्ना नहीं है। जिस किसी तरह करलेने में ही संतोष है।

देववन्दन, गुरुवन्दन और पच्चक्खाण की क्रिया का उपदेश देने वाले उपदेशक को उसकी विशुद्ध विधि जानने का खास उपदेश देना जरूरी है। आज नास्तिकों के द्वारा अपनी क्रियायें निन्दाती हैं। लोगों को क्रिया के प्रति अरुचि रहती है। उसका मुख्य कारण यही है कि विधि की उपेक्षा पूर्वक करने वाले क्रियाकारकों की क्रिया का दूसरों के ऊपर प्रभाव नहीं पडता है।

महापुरुषोंने देव वन्दन गुरु वन्दन और पच्चक्खाण

की क्रिया विधि के ग्रन्थ बनायें हैं। उनका नाम अनुक्रम से देववन्दन भाष्य और गुरुवन्दन भाष्य तथा पच्चक्खाण भाष्य है। क्रिया विधि के ये खास ग्रन्थ हैं।

आज क्रिया करनेवाले वढ गये हैं किन्तु क्रिया के रहस्यको जीवन में उतारने वाले इस क्रिया विधि के अभ्यासी कितने हैं? क्या यह वस्तु शोचनीय नहीं है?

बालदीक्षितों में से ही भूतकाल में शासन प्रभावक हुए हैं। उनकी खबर तुम्हें है ही कहां?

दुनियाकी नोवल, दुनियाका इतिहास देखने में तुम्हें जितना शौख है उतना शौख धर्मवीरों के इतिहास देखने में है?

घरमें अनेकविध राचरचीलुं (अलंकारों की शोभा) चाहिये मौज शौख के साधन चाहिये, रेडियो चाहिये ये सब जितना हृदय में बैठा है उतना अभी धर्मग्रन्थ घर में बसाने का अपने हृदय में नहीं बैठा। इसी लिये तुम्हारी सन्तान नास्तिक पाकती है (पैदा होती है) और माँ बाप की आज्ञा विराधक बनती है।

अति मुक्त मुनिवरने बाल्यकाल में दीक्षा ली थी।

भगवान महावीर देवने उनको स्थविर मुनियों को सोंपा। एक बार स्थविर मुनियों के साथ ये बाल मुनि स्थंडिल गये थे।

स्थंडिल का कार्य पूरा कर के स्थविर मुनियों की राह देखते एक रास्ता में बैठे थे। बाल्यावस्था। इस लिये खेलने का मन हुआ। कागज की नाव बनाकर पानी में। तैरती रखके खेलने लगे। नावको तैरती देखकर बाल मुनि हर्षित बनें।

"नानुं सरोवर नानुं भाजन
नाव करी अई मुत्ते।
रढियाली आ रमत निरखी
मुनिवर मन आनन्दे॥

स्थविर आये। उन की दृष्टि इन बाल मुनि की क्रीडा पर गई। स्थविरोंने मीठा उपालम्भ दिया। और कहा कि हे भद्र! अपन कहलाते हैं साधु। सचित पानी को छूने से संयमकी विराधना होती है। एसी रमत (खेल) अपन से नहीं रमी (खेली) जाती।

बालमुनि को स्थविरों की शिखामण (सीख) हृदय में बस गई। क्यों कि उनका आत्मा योग्य था। की भूलका हृदय में पछतावा हुआ। स्वस्थानमें आके स्थंडिल जाने की इरियावही करते करते पश्चात्ताप की ज्वालासें उनके चार घाति कर्म भस्मीभूत हो गये। जडमूल से नाश कर दिये। अईमुत्ता मुनि केवलज्ञानी हो गये।

उग्रतप और निरतिचार चारित्र का पालन करने से कर्म समूह शीघ्र नष्ट होता है।

अच्छा बनना हो तो दोप दृष्टिका त्याग करके गुण दृष्टिवाले बनो। छद्मस्थावंत जीवोंसें कुछ न कुछ त्रुटि तो होती ही है। अपनको उसमेंसे गुणही देखना चाहिए दोपको देखना यह अपनी योग्यता नहीं।

कहा है कि—"भैंस की शींग भैंसको ही भारी होते हैं।" जो जिसके दुर्गुण होंगे वे उसको नडेंगे (हैरान करेंगे)।

अपनको किसीका दुर्गुण पोपक नहीं होना चाहिए किन्तु दोष निन्दक भी नहीं होना चाहिए।

दूसरों के दोष निन्दक बनने से अपन ही दोषकारक बनते हैं और दूसरोंके गुण देखनेसे अपन गुणवान बनते हैं इसलिये दोषके प्रति उपेक्षा करके गुणग्राहक बनो। तभी मनुष्य जीवन सुधार सकोगे।

नगरी के एक चौक में श्री कृष्ण महाराजा हाथी पर बैठ के आरहे थे। वहां रास्ते में एक मरे हुये कुत्ते का देह दुर्गन्ध फैलाता हुआ पड़ा था।

जिस जिस वस्तु के प्रति जैसा जैसा उपयोग जाय वैसा वैसा असर इन्द्रियों का सो होता है। आगे चलते सैनिकों का उपयोग दुर्गन्ध की हवा फैलानेवाले कुत्ता के शव तरफ होने से उनका लक्ष दुर्गन्धता में खेंचा गया। सैनिक इस दुर्गन्ध से बेचैन हुये। और नाक के आडे कपड़ा करके जल्दी जल्दी चलने लगे।

कृष्ण महाराजा का उपयोग कुत्ते के शव में से निकलती दुर्गन्ध की तरफ नहीं गया था किन्तु कुत्ते के चमकते दाँतों की तरफ गया था वे हाथी के ऊपर से नीचे उतर के मरे हुये कुत्ते के पास में गये। उनका उपयोग दांत की सुन्दरता के प्रति आकर्षाया हुआ होने से उन्हें दुर्गन्ध मालूम ही नहीं हुई। उनको उसकी दुर्गन्ध हैरान नहीं कर सकी। और वे कहने लगे कि इसके दांत कितने सुन्दर हैं ?

दोषित में से भी गुण लेने की वृत्ति में सज्जनता है। और गुण में से भी दोष देखने की दृष्टि में दुर्जनता है।

कृष्ण महाराज क्षायिक समकिती थे। छप्पन करोड़ यादवों के स्वामी थे। बत्तीस हजार स्त्रियों के प्रियतम थे। वासुदेव थे। ये कृष्ण महाराजा आवती (भविष्यकाल) चौवीसी में बारहवें तीर्थंकर होंगे।

उपकारी के उपकार को भूले वह कृतघ्न कहलाता है।

जिसके घरमें सुसंस्कारी वातावरण नहीं हैं। संस्कारी आचार विचार नहीं है। हय, ज्ञेय और उपादेय का विवेक नहीं है। उस घरके वालक सुसंस्कारी कहां से हो सकते हैं?

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि वालः पश्यति लिंगम् बालक वाहर की क्रिया को देखता हैं। बाहर के आचार देखकर वालक क्रिया करता होता है।

जिनवाणी के श्रवण में कैसा रस होना चाहिये वह दिखाते हुये श्री यशो विजयजी महाराज समकित की सज्झायमें फरमाते हैं कि—

तरुण सुखी स्त्रीं परिवर्यो रे
मधुर सुणे सुर गीत।
तेहथी रागे अति घणो रे
धर्म सुण्यानी रीत रे

प्राणि धरिये समकित रंग। तुम सब भी जिनवाणी के रसिया वनो यही शुभाशीष

व्याख्यान–बत्तीसवाँ

चरमशासनपति आसन्न उपकारी भगवान महावीर देव फरमाते हैं कि दुर्लभ एसा मनुष्यत्व और दुर्लभ एसा समकित पाकर के हे भव्यजनो तुम धर्म में उद्यम करो।

"जीवाई नव पयत्थे जो जाणई तस्स होई सम्मत्तं
भावेण सद्दहंतो अयाण माणे वि सम्मत्तं॥

भगवान श्री जिनेश्वरदेव देव के द्वारा प्ररूपित जीवादि नव तत्व को जाने और उससे अज्ञात जीव उनके प्रति श्रद्धाशील बने रहें वह जीव समकिति कहलाते हैं।

घरमें एक आत्मा भी समकिती होतो पूरे घरका उद्धार हो सकता है।

समकिती कहलाना है सभी को किन्तु समकिती बनने की अभिलाषावाले कितने?

पुत्र और पुत्री कोलेजसे पढके डिग्री पास करके आवें तब आजके माता पिता को गौरव कितना? और वह डिग्री पास कराने की मेहनत कितनी? और अपनी सन्तान में समकित की प्राप्त कराने की मेहनत कितनी? लागणी कितनी? कोलेजकी डिग्री और समकित की डिग्री दोनों के लिये प्रयत्न करानेवाले माँबापों से पूछें कि भाई! समकीत की डिग्री में जो कालेज की डिग्री बाधा कारक हो तो तुम कालेज की डिग्री छोड दोगे?

तुम्हारे पुत्र पुत्री तो समकीत धारी बनें तब ठीक। परन्तु तुम्हारी समकित की कसोटी तो हमने इस रीत से करली है।

आर्यरक्षित चौदह विद्यामें पारंगत होकरके अपने नगरमें आने वाला था। यह हकीकत सुनके नगरवासी आनंदकी लहर तरंगों को झील रहे थे (आनन्द मना रहे थे)। चौदह विद्याका पारंगत बनके नगरी में प्रवेश करने वाला यह आर्यरक्षित ही पहला होने से राजा उसके स्वागत को अनेक विध तैयारियां करा रहे थे। राजाशाही ढंगसे आर्यरक्षितके स्वागत का ढोल पीटा जा रहा था। खुद महाराज-मंत्री वर्ग के साथ गजराज के ऊपर बैठके स्वागत समारोह में पधारे। स्नान पूजन और कपाल (ललाट) में सोलह तिलक करके सजे हुये आर्यरक्षित का सन्मान पूर्वक सुस्वागत खुद महाराजाने हाथी के ऊपर से नीचे उतरके किया। आर्यरक्षित चरणों में झुक गया। राजा भेट करने लगा। नगरी की तमाम जनता आनन्द से भरी आई। आर्यरक्षित के पिता भाई बहन वगैरह सभी आये। लेकिन एक माता नहीं आई।

पुत्र आगमन के समाचार सुन कर माता विचार करने लगी कि ये तो पेट भरने की विद्या शीख करके पुत्र आ रहा है। लेकिन आत्म विद्या में तो उसने अभी तक प्रवेश ही नहीं किया। इस लिये जो आज में भी उसके स्वागत समारोह में जाऊँगी तो मेरा पुत्र आत्मविद्या की उपेक्षा करनेवाला हो जायगा। इस लिये पुत्र को चेताने के इरादा से वह स्वागत समारोह में नहीं आई।

आर्य रक्षित चारों तरफ देखने लगा। कि माता

क्यों नहीं आई ? यह प्रश्न उसके मनमें अनेक विचार उत्पन्न करने लगा। माताकी हाजरी बिना का स्वागत समारोह उसे शुष्क लगने लगा। उसके मुख ऊपरसे हर्ष की रेखा बदल गई। मुख ग्लानिमय बन गया।

स्वागत यात्रा शुरू हुई। सबसे आगे राज दरबारी सुरीले बाजे, उसके बाद सोनेके होदेसे शोभते हुये गज-राजके ऊपर महाराजा, तथा राजारानी. दूसरे गजराज पर आर्यरक्षित अपने परिवार के साथ बैठे, उसके बाद अश्वों के ऊपर राजमन्त्री वगैरह अधिकारी वर्ग उसके बाद श्रेष्ठी वर्ग, और सार्थपति, उसके बाद धवलमंगल गीत गाती हुई प्रसन्न नारियां और अन्तमें हजारोंकी संख्यामें सैनिक चल रहे थे।

स्वागत यात्रा आर्यरक्षितके घरके पास आने पर भोजाईयोंने सच्चे मोतियों से उनको बधाई दी। बहनोंने लुछणां लिये। आर्यरक्षितने अपने घरमें प्रवेश किया। महाराजाने पौरजनों को स्वस्थान जानेको रजा (छुट्टी) दी। महाराज भी राजमहलमें चले गये सब बिखर गये।

आर्यरक्षितने घरमें प्रवेश करके तुरन्त माताके पास जाकरके उनके चरणों में सिर झुकाया। सजल नेत्रसे मातासे पूछाकि सारी नगरीके लोग मेरी स्वागतयात्रामें आए और आप नहीं पधारी उसका क्या कारण ?

माताने कहाकि हे बेटा, तू पेट भरने की विद्या सीखके आया उसमें मैं तेरा क्या स्वागत करूं ? मुझे सिर्फ उस विद्यासे सन्तोष नहीं है। मुझे तो तू तात्म वैभवकी विद्या सीखके आवे तभी संतोष हो।

माताजी ! आपको सन्तोष देनेके लिए आप कहो

वह विद्या सीखने जानेके लिए मैं तैयार हूं। आर्यरक्षित बोले।

माताने कहा तू दृष्टि वादकी विद्या सीखके आ तो मुझे सन्तोष हो।

आर्यरक्षितने पूछा कि वह विद्या पढ़नेके लिये मुझे कहां और किसके पास जाना पड़ेगा? वह आप फरमाओ।

हे पुत्र! महा प्रभावशाली विद्या पारंगत तोषलीक नामके आचार्य महाराज जो संसारीपनेसे तेरे मामा है उनके पास जा।

माताको नमस्कार करके आशीर्वाद लेकर शुभमुहूर्त में आर्यरक्षित विदा हुए। वे कहां कहां गये उसकी खबर माताके सिवाय किसी को नहीं थी। नगरके बाहर जाते ही एक सधवा बाई शेरडी (इक्षुदण्ड) लेकर आ रही थी शुकन उत्तम हुए। अविरत प्रवास करके आर्यरक्षित उस नगरमें आ पहुंचा कि जहां गीतार्थ आचार्य महाराज विराजमान थे। वह पोषधशाला में गया। प्रातः काल का समय होने से अनेक नरनारी गुरूवंदन करने आते जाते थे।

आर्यरक्षितने विचारा कि गुरूमहाराज के पास जाके उचित विधि क्याकी जाती है उसकी मुझे खबर नहीं है। इसलिए कोई गृहस्थ आवे तो उसके पीछे पीछे गुरूमहाराजके पास जाऊँ। इतने में ढड्ढर नामके श्रावक वहां गुरूवंदनार्थ आये।

ढड्ढर श्रावक निःसही तीनवार कहके उपाश्रयमें प्रविष्ठ हुए। वहां जाकर द्वादशावर्त वंदन किया। फिर पच्चक्खाण लेके गुरू सन्मुख बैठ गए। आर्यरक्षित भी

इन ढड्ढर श्रावक की माफक देखा देखी गुरुवंदनकी सर्व विधि करके बैठ गये।

तब आचार्य महाराज बोले कि ये नए श्रावक कहां से आये।

आर्यरक्षित विचार करने लगे कि मुझे नया क्यों कहा ?

श्रावक गुरु महाराज को वंदन करने के बाद वहां बैठे हुये श्रावकों को दो हाथ जोड़के बैठे।

ढड्ढर श्रावक गुरु को वंदन करके बैठे तब अन्य श्रावक वहां कोई नहीं था। इसलिए श्रावक को हाथ जोड़के बैठने का तो उनको प्रयोजन ही नहीं था। आर्यरक्षित वंदन करके बैठे, तब वहाँ एक श्रावक बैठा था। उनको हाथ जोड़के आर्यरक्षित को बैठना चाहिये। परन्तु वह विधि आर्यरक्षित नहीं जानते थे इसलिये सिर्फ गुरु महाराज को वंदन करकेही बैठे। इसलिये गुरुने कहा कि ये नये श्रावक कहां से आये ?

शान्तसुखाकृति से शोभते—आचार्य महाराज बोले कि महानुभाव, कहां से आये और क्यों आये ?

साहेब ! दशपुर नगरी से आया हूँ। और मुझे दृष्टिवाद सूत्र पढ़ना है। आप मुझे पढ़ाने की कृपा करोगे ?

क्यों नहीं पढ़ायें। लेकिन महानुभाव, दृष्टिवाद सूत्र इस श्रावक अवस्था में नहीं वांचा जा सकता। साधु बनना पड़ेगा। तुम संसार छोड़के संयम स्वीकार सकोगे।

खुशी से साहब ! आर्यरक्षित दीक्षित बने। और गुरु महाराज के पास दृष्टिवाद सीखने लगे। चौदह विद्या

के पारगामी आर्यरक्षित ने अपनी कुशाग्रबुद्धि से जैनागमों का शिक्षण अल्प समय में प्राप्त कर लिया। आचार्य महाराज को भी इससे सन्तोष होने लगा।

अनेक शिष्य होनेपर भी आर्यरक्षित पर उनका प्रेम अधिक होने लगा। जो शिष्य बुद्धिशाली और प्रभावशाली तथा प्रभावक हो तो किस गुरू को सन्तोष नहीं हो ?

धीरे धीरे आर्यरक्षित साडानवपूर्व के अभ्यासी बन गए। गुरू महाराज के अनेक शिष्य उनकी सेवा के लिये हाजिर रहते थे।

गुरू महाराज ने अपने शिष्य को योग्य देख करके आचार्यपद पर विराजमान करने का विचार किया। संघ के अग्रणीयों के साथ वातचीत करके तय किया कि यह चौमासा पूर्ण होने के वाद आचार्य पदवी दे देना।

इस तरफ आर्यरक्षित की माताने अपने छोटे पुत्र फल्गुरक्षित से कहा वत्स ! तेरा भाई तोषलीक नाम के आचार्य महाराज के पास गया है। वह अभी तक नहीं आया। इसलिये तू उसको ले आ। तू उसकी आज्ञा प्रमाण करना।

फल्गुरक्षित ने कहा अच्छा माताजी ! माता का आशीर्वाद लेकरके विदा हो गया। जहां तोषलीक नाम के आचार्य महाराज विराजमान थे—वहाँ वहाँ फल्गुरक्षित आया। वंदन करने के वाद भाई के समाचार सुनके अति प्रसन्न हुआ। फिर वह आर्यरक्षित मुनिको मिला। आर्यरक्षित के दिल में भाई के प्रति प्रेम था इसलिये उनने निर्णय किया कि भाई को भी दीक्षा देना।

फल्गुरक्षित ने कहा कि साहव, माताजी ने आप को लेने के लिये मुझे भेजा है। इसलिये आप पधारो।

वत्स! चौमासा में जैनसाधु से विहार नहीं हो सकता है। इसलिये चौमासा पूरा होने के वाद अपने विचार करेंगे।

फल्गुरक्षित विचार करने लगा कि माताने तो कहा था कि भाई जैसा कहे वैसा करना। इसलिये माताकी आज्ञाके अनुसार भाई कहे वैसा ही मुझे करना है। ऐसा विचारके बोला कि अच्छा साहव! आप की आज्ञा के अनुसार यहीं रहूँगा।

चातुर्मास में आर्यरक्षितने लघुवांधव फल्गुरक्षित को अभ्यास चालू किया। अभ्यास वढ़ता गया त्यों वैराग्य आता गया।

भूतकाल का शिक्षण ऐसा था कि ज्यों ज्यों शिक्षण वढ़े त्यों त्यों सदाचार, विनय, विवेक वढ़े। अंत में विराग दशा आवे। उसमें से कितनों को वैराग्य आता है। किसी को वैराग्य न आवे तो विराग दशा में गृह-संसारमें रहते हैं।

चातुर्मास के वाद आचार्यश्री तोषलीकजी महाराजने आर्यरक्षित को वड़े ठाठ माठ के साथ महोत्सवपूर्वक आचार्य पदवी से विभूषित किया। आर्यरक्षित अव आर्य रक्षित सूरि वन गये।

साथ साथ फल्गुरक्षित आदि ग्यारह सात्विक युवानोंने भी इस समय परमपुनीत भागवती प्रव्रज्या अङ्गीकार करी। दोनों आचार्य देवों ने मंगलदेशना दी।

क्रम क्रम से दोनों आचार्योंने शिष्य परिवार के साथ आर्यरक्षित सूरिजी की जन्मभूमि नगरी तरफ प्रयाण किया। किसी शुभ मंगलके दिन उस नगरी के वाहर उद्यान में पधारे। राजा ने स्वागत किया। राजा, गुरूमहाराज

पधारने की बात सुनकर खूब खुश हुआ। और बड़े ठाठ-पूर्वक मुनि पुंगवसहित आचार्य महाराजाओं का प्रवेश महोत्सव किया।

अपने दोनों पुत्र दीक्षित बन गये उनमें से एक तो धुरंधर आचार्य बना है ये हकीकत जानकरके माताका हृदय तो आनन्द की उर्मि में नाचने लगा। पुत्रों को सच्चे मोतियों से बधाई दे के माता ने कृत्यकृत्यता अनुभव की।

घर में एक समकिती माता के प्रताप से दोनों पुत्र दीक्षित बने। अब तो पूरे परिवार को दीक्षित होनेकी भावना जागी।

आर्यरक्षित सूरिजी की देशनाशक्ति प्रबल होने से गुरू महाराजने देशना का काम उनको सोंप दिया।

नित्य प्रवचन श्रवण करने के लिये हजारों लोग आने लगे।

माता पिता और बहन भी आने लगे। एक महीना की देशनाने तो नगर में जादूकर दिया। अनेक भव्यात्मा दीक्षा लेने को तैयार हो गए।

आर्यरक्षित सूरिजी की माता और बहन भी वैराग्य वासित बनके दीक्षा लेने तैयार हो गये। पिताजी विचार करने लगेकि परिवार के सभी सभ्य दीक्षालें तो फिर मैं भी अकेला बाकी क्यों रहूं? लेकिन गुरू महाराजके पास अमुक शरत करके लूं। एसा विचारके गुरूमहाराज के पास अपनी पांच शरतों का निवेदन किया :—

(१) मुझसे खुले पैर नहीं चला जाता इसलिए पावडी पहनुंगा।

(२) मुझसे ताप सहन नहीं हो सकता इसलिए छत्री (छत्ता) रखूंगा।

(३) मैं शुद्ध ब्राह्मण हूं इसलिए जनोई रखूंगा।

(४) चोल पट्टाके बदले में धोती पहनूंगा।

(५) सिर पर चोटी रक्खूंगा।

आर्यरक्षित सूरि महाराज ज्ञानी थे। वे समझ गए कि इस तरह भी पिताजी को दीक्षा देनेमें पिताजी का कल्याण है। ऐसा विचारके पिताके द्वारा कही हुई पांचों शरतें कबूल कीं। और शुभ मुहूर्तमें सब परिवार के साथ उनकी और दूसरे कुछ भव्यात्माओं की दीक्षा हो गई।

दीक्षा देने के बाद आर्यरक्षित सूरिजी ने विचार किया कि अब कोई युक्तिपूर्वक पिता मुनि की पांचों कुटेव दूर करना चाहिए। वे युक्तियां विचारने लगे।

एक समय कितने ही लड़कों को समझा दिया कि देखो बालकों! तुम सबको वन्दन करना किन्तु इन वृद्ध-महाराज को वन्दन नहीं करना। जो वे कुछ कहें कि हमको वन्दल क्यों नहीं करते? तो तुम कहना कि साधु भगवन्त पैर में पावडी नहीं रखते तुमतो पावडी पहनते हो। इसलिये तुम्हें वन्दन नहीं की जा सकती।

बालकों के द्वारा इस प्रकार वर्तन करने से वृद्ध-मुनि को गुस्सा आ गया। और बोले कि लो ये पावडी निकाल दी। अब तो वन्दन करोगे? ऐसा कहके वृद्ध-मुनि ने पावडी निकाल दीं। और बालकों ने भी वन्दन किया। और मुनि खुशी हुए। इस विषय में आचार्य महाराज की युक्ति सफल हुई।

एक समय नगरी में वरघोडा (जुलुस) निकलने ते

के समय आचार्य महाराज ने उन युवानों को बुलाके कहा कि आज सब साधुओं की जय बोलना। मगर इन वृद्ध साधु की जय नहीं बोलना।

जब वे वृद्ध साधु पूछे कि क्यों तुम हमारी जय नहीं बोलते ? तब तुम कहना कि छत्री रखे वह साधु कहलाता।

वरघोड़ा में युवानों के इस तरह के वर्तन से उन वृद्ध साधु को मन में गुस्सा आया। अपनी जय नहीं बोलने का कारण युवानों से पूछने पर युवानों ने स्पष्ट कहा कि जो छत्री राखे वो साधु नहीं कहलाना है। तुम छत्री रखते हो इसलिये तुम्हारी जय भी नहीं बोली जा सकती।

वृद्ध साधुने चत्री अलग करदी। इसलिये युवानों ने उनका जयनाद किया। इस प्रकार आचार्य महाराज दूसरी युक्ति में भी सफल हुए।

एक समय एक साधु महाराज कालधर्म को प्राप्त हुये। भूतकाल में ऐसा रिवाज था कि कोई साधु काल करे तो उस साधु को उपाड़ कर दूसरे साधु जंगल में ले जाते थे। और शव को वहां वोसीरा देते थे।

आचार्य महाराज ने यहां भी एक नई योजना शोध निकाली। आर्यरक्षित सूरिजी महाराज ने साधुओं को उद्देश्य करके कहा कि अरे भाग्यवान साधुओं! जो साधु मृत साधु के शव को उपाड़के ले जाय उसे महान लाभ होता है। यह सुनके वृद्ध साधु तैयार हुए। और कहा कि मैं उपाडके ले जाने को तैयार हूं।

आचार्य महाराज ने कहा कि अच्छा तुम जाओगे

तो लाभ मिलेगा। लेकिन मार्ग में विघ्न आयेंगे। उस विघ्न में आप चलित हो जाओ तो ये आफत मेरे ऊपर उतरे। ईसलिये इसमें आपका काम नहीं है। बाकी तो लाभ महान हैं।

वृद्ध साधुने कहा कि कितनी भी आफत आयेगी तो भी मैं सहन करूंगा। चलित नहीं बनू। इसलिये मुझे ही मन्जूरी दो! गुरूने कहा खुशी से जाओ। लेकिन आफत आवे तो भी कुछ भी नहीं बोलना।

समता भाव से सहन कर लेना।

अच्छा साहब! मथ्थयेण वंदामि। साधुवृन्द मृत शवको लेकर चलने लगा।

आचार्य महाराजने युवान भाइयों को बुलाके कह दिया कि देखो इन वृद्ध साधु की धोती खेंच लेना। और साथ साथ जनोई तोड देना। इधर साधुओं को भी समझा दिया कि जैसे ही ये युवान धोती खेंचे कि उसी समय तुम इनको चोल पट्टा पहना देना।

मुनिवृन्द बाजार में आया। लोगों ने शोर बकोर चालू किया। युवान भाई साधुओं में घुस गये। और हां हुं करते वृद्ध साधुकी धोती खेंच ली। और मुछने जनोई तोड दी। इस लिये उसी समय उनको चोल पट्टा पहना दिया। होहा करता हुआ युवान भाइओं की टोली चली गई। वृद्ध साधु ने विचार किया कि गुरु महाराज के कहे अनुसार बराबर संकट आया। इस लिये अभी मैं कुछ गड़बड़ करूंगा तो गुरु महाराज को भी उपद्रव आयेगा। इस लिये गुपचुप चलने लगे। जो बना वह शान्ति से सह लिया।

शवकी अन्तिम क्रिया करके साधु उपाश्रय में आये। वृद्ध साधुके अंग ऊपर जनोई और धोती के बदले चोल पट्टा ही देखकर आर्यरक्षितसूरिजी महाराजने पूछा कि महानुभाव, जनोई कहां? धोती कहां? अरे जनोई लाओ। धोती लाओ। मेरे पिता मुनिको इस तरह किसने हैरान किया?

साहेब, युवान टोलाने धमाल करके यह सब कुछ किया। यह बात सुनकरके आचार्य महाराज कहने लगे कि गजब हो गया। ये युवालिया कौन थे? साधु ने कहा साहब, कौन पहचाने। भर बजार में यह बना। गुरुने कहा यह ठीक नहीं। मैं तपास करूंगा।

आप धोती पहन लो वृद्ध साधुसे गुरुने कहा। तब वृद्ध साधु ने कहा ना ना। अब तो चोल पट्टा ही अच्छा जनोई तोड डालने के बाद यह भी नहीं पहनी जा सकती। ठीक। तो जैसी आपकी मरजी। इस तरह आचार्य महाराज की युक्ति सफल हुई।

अब रोज प्रतिक्रमण करनें आने वाले श्रावकों से आचार्य महाराजने कह दिया कि देखो। आज तुम सब साधुओंकी पगचंपी करना लेकिन वृद्ध साधुकी नहीं करना। अगर ये तुम्हें पगचंपी करने का कहें तो तुम कहना कि तुम सिर पर चोटी रखते हो इस लिये हम तुम्हारी पग चंपी नहीं करेंगे।

सांजका प्रतिक्रमण शुरू हुआ। श्रावकों ने साधुओं की पगचम्पी करना शुरू कर दी। सबको की किन्तु वृद्ध साधु की नहीं की। तब वृद्ध साधु बोले कि अरे भाइयों मेरा वांसा दुखता है जरा दबा दो। श्रावको ने कहा ना

महाराज। तुम सिर पर चोटी रखते हो इस लिये साधु नहीं। वृद्ध साधुने कहा तो लो यह तोड़ डाली। एसा कहके चोटी का लोच कर डाला। फिर तो श्रावकोंने खूब भक्ति की।

ज्ञानी किसी को दीक्षा देते हैं। तो उसमें लाभालाभ का कारण समझके ही देते हैं। थोड़े दोष हों फिर वे भी समझ के चला लेते हैं। वे यह समझते हैं कि इसी में जीव का कल्याण है। उत्सर्ग और अपवाद दोनों मार्ग को समझ के चले उन्हें गीतार्थ गुरू कहते हैं। भले क्रोधोत्पत्ति के कितने भी कारण उपस्थित होने के प्रसंग हों। फिर भी समतारस का पान करे उन्हें शान्तगुरू कहते हैं। काया की ममता न रखे उसका नाम जैनसाधुमहात्मा।

इस प्रकार वृद्ध साधु के पाँचों दूषणों को आचार्य महाराजने युक्तिपूर्वक छुड़ा दिया। फिर भी ये वृद्धमुनि अभी तक गोचरी को नहीं गये थे।

ये वृद्धमुनि एसा मानते थे कि घर घर भटक के लेने जाना यह मेरा काम नहीं है। इस तरह विचाधारा वाला बने रहने से वे गोचरी को नहीं जाते थे। परन्तु ये वृद्ध साधु आचार्य महाराज के पिता होने से दूसरे साधु उनकी भक्ति में कमी नहीं रखते थे।

फिर भी आचार्य महाराज के दिल में एक बात खटकती रहती थी कि साधुपना लेकरके भिक्षा मांगने में शरम रखना यह एक दोष है। ये दोष निकालने के लिये भी उनने एक योजना विचारी।

एकदिन आचार्य महाराज थोड़े शिष्यों के साथ नजदीक के गाँव में चले गए। जाते समय वहीं बाकी शिष्यों से

कहा कि हम कल आयेंगे । आज तुम सब गोचरी लाकर के वापर लेना । वृद्धमुनि की गोचरी कोई लाना नहीं । और पूछना भी नहीं । सुबह मैं आऊँ उसके पीछे सब बात मैं देख लूंगा । एसा कहके आचार्य महाराज चले गए ।

मध्याह्न का टाइम हुआ । साधु गोचरी लाके वापरने बैठे । वृद्ध मुनि के मननमें एसा था कि साधू अभी मुझे वापरने को बुलावेंगे । लेकिन किसी ने बुलाया नहीं । सब साधु को गुस्सा आ गया । अरे मुनियों, आज मेरा पुत्र आचार्य अन्यत्र गये हैं इसलिए तुमने मुझे गोचरी भी नहीं लादी । मुझे पूछा भी नहीं है । और तुमनें वापर ली । कल सुबह आचार्य महाराज को आने दो । फिर तुम्हारी खबर लूंगा । मुनि निश्चित थे । वृद्ध मुनि ने उस दिन उपवास कर लिया । प्रातः काल हुआ । जय घोष के शब्दों से उपाश्रय गुंज उठा । आचार्य महाराज पधार गये । मंगलींक प्रवचन सुनके श्रावक चले गये ।

वृद्ध मुनि ने आचार्य महाराज के पास हकीकत का निवेदन किया । आचार्य ने कहा गजब किया । अरे साधुओं, क्या तुमको ये खबर नहीं कि ये मेरे उपकारी पिता मुनि हैं ? फिर भी तुमने गई काल जैसा वर्तन किया वह उचित नहीं कहा जा सकता । और वृद्धमुनि से कहने लगे कि कलका तुम्हारा उपवास है इसलिये लाओ तर्पणी और मैं गोचरी ले आता हूं । आपकी भक्ति करना ये मेरी भी फरज है । एसा कहके आचार्य महाराज ने झोली और तर्पणी की तैयारी शुरू की ।

वृद्ध साधु विचार करते हैं कि ये तो प्रभावक आचार्य इसलिए वे गोचरी को जायें तो ठीक नहीं कहा,

जायेंगा। इसलिये चलो न मैं ही जाता हूं। सब साधुओं को भी खबर पाड दूं कि तुम्हारे विना मेरा चल सकता है।

एसा मन में नक्की करके (निश्चित करके) आचार्य महाराज से कहने लगे कि आपसे जाया जाना योग्य नहीं है। मैं ही जाता हूं। एसा कहके झोली लेकर एक बड़ी हवेली में गयें। "धर्मलाभ" कहके वे रसोड़ा (रसोईघर) में खड़े हो गये।

गोचरी कैसे लाना? इसकी उनको खबर नहीं थी। इस लिये वहां जाके सब पातरां रख दिये। शेठानी ने महाराज के पात्र में वत्तीस लाड़ू रख दिये। लाड़ू गिने तो हुये पूरे वत्तीस।

ज्ञान वल से देखकर के वृद्ध साधु से आचार्य महाराजने कहा कि आपके वत्तीस शिष्य होंगे। यह सुनके वृद्ध मुनि प्रसन्न हो गये। वृद्धावस्था में वत्तीस शिष्य हों ये कोई कम आश्चर्य की वात नहीं है।

वृद्ध मुनि सुसाधु वन गये। आर्यरक्षितसूरिजी महाराजने शासन की अपूर्व प्रभावना की।

यह सव प्रताप किसका? एक समकिती माता का। जो माता समकिती न होती तो पूरा घर दीक्षित कैसे वनता?

घर की स्त्रियों में धर्म वस जाय तो घर की रौनक ही वदल जाय। इसलिये घर में स्त्री सद्गुणी और अर्हतधर्म के संस्कार से सुवासित होनी चाहिये।

वस्तुपाल और तेजपाल को धर्मी किसने वनाया? अनुपमादेवीने। इसलिए अगर स्त्री धर्मसंस्कारिणी होगी तो पूरे घर में धर्मकी सुवास फैलेगी?

इस शरीरमें से प्रतिसमय असंख्यात पुद्गल निकलते हैं और घुसते हैं।

ज्ञानी पुरुषों के गुण गाने से अपने दोष नाश होते हैं और अपने को गुणप्राप्ति होती है।

देव और गुरु अपने लिए सेव्य और अपन उनके सेवक। सेवा करे वह सेवक।

जिन मन्दिरोंमें प्रवेश करते समय (१) पान खाना (२) पानी पीना (३) भोजन करना (४) जूता पहनना (५) मैथुन करना (६) सोना (७) थूंकना (८-९) लघुनीति और वड़ीनीति करना (१०) जुआ खेलना ये दश वड़ी अशातना का जिनमन्दिर में त्याग करना चाहिये

इनके सिवाय दूसरी अशातना का भी त्याग करना चाहिए। वे अशातना नीचे मुजव हैं।

ज्ञान दर्शन और चरित्र के लाभका जिससे नाश हो उसे अशातना कहते हैं।

८४ अशातना—

(१) पान सोपारी खाना (२) पानी पीना (३) भोजन करना (४) जूता पहनके अन्दर जाना (५) मैथुन सेवन करना (६) विस्तर विछाके सोना (७) थूंकना तथा गलफा (गले का मैल) डालना (८) पेशाव करना (९) टट्टी जाना (१०) जुआ खेलना (११) अनेक प्रकार की क्रीड़ा करना (खणना वगैरह) (१२) कोलाहल करना (१३) धनुर्वेदादि कला का अभ्यास करना (१४) कुल्ला करना (१५) गाली देना (१६) शरीर धोना (१७) वाल कटाना उतारना (१८) लोही डालना (१९) मिठाई वगैरह डालना (२०) चमड़ी उतारना (२१) पित्त काड़ना (२२) उलटी करना (२३) दाँत निकालके डालना (२४) आराम लेना (२५) गाय भैंस

बाँधना (२६) दाँत का मैल डालना (२७) आँख का मैल डालना (२८) नख का मैल डालना (२९) गाल का मैल डालना (३०) नाक का मैल डालना (३१) सिर का मैल डालना (३२) कान का मैल डालना (३३) चमड़ी का मैल डालना (३४) सन्त्रादि प्रोग्राम करना (३५) विवाह के लिए इकट्ठे होना (३६) कागज लिखना (३७) थापण रखना (३८) भाग पाडना (३९) पैरके ऊपर पैर रखके बैठना (४०) छाणां (उपले) थापना (४१) कपड़ा सुकाना (४२) धान्य सुकाना (४३) पापड सुकाना (४४) वडी करना (४५) छिप जाना (४६) रोना (४७) विकथा करना (४८) शस्त्रास्त्र घड़ना (४९) तिर्यंच रखना (५०) तापणी करना (५१) रसोई करना (५२) सोनरिक की परीक्षा करना (५३) निसीही नहींकहना (५४) छत्र धारण करना (५५) शस्त्र रखना (५६) चाँवर ढोरना (५७) मन एकाग्र नहीं करना (५८) मर्दन करना (५९) सचित्त का त्याग नहीं करना (६०) अखंड उत्तरासन नहीं करना (६१) अचित्त वस्त्राभरण) का त्याग करना (६२) बालक खिलाना (६३) मुगुट रखना (६४) तोरा रखना (६५) पघड़ी का अविवेक करना (६६) होड करना (६७) गिल्लीडंडा से खेलना (६८) जुहार करना (६९) भांड चेष्टा करना (७०) तिरस्कार करना (७१) लांघवा बैठना (७२) संग्राम करना (७३) केश का विस्तार करना (७४) पैर बाँध के बैठना (७५) चाखडी पहनना (७६) पैर लंबे करना (७७) पिपुडी बजाना (७८) काच कीचड़ डालना (७९) अंग की धूल उड़ाना (८०) गुह्य भाग प्रगट करना (८१) व्यापार करना (८२) वैदगारी करना (८३) नहाना (८४) नख उतारना।

ये चौरासी अशातनायें जिनमन्दिर में वर्जना चाहिए।
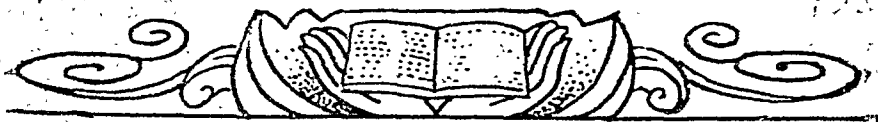
रचयिता :

पूज्य विद्वान मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज ।

* * *

पूज्य गुरुवर्य

आचार्यदेव श्रीमद् विजयभुवनसूरीश्वरजी महाराज ।

जीवनदर्शक—गुरु गुण गीत

* * *

: दोहा :

(१) चौवीस जिनवरने, नमी गौतम लागूं पाय;
प्रणमी माता शारदा, सद्गुरु लागूं पाय ।

(२) प्रथम जिणंद वंदन करी, सादडो नयर मझार;
सुणजो हे नरनारीओ, जग गुरुनी आ वात ।

(३) वणिक कुलमां शोभतो जैन कुल मनोहार;
लक्ष्मी पितानां पुत्र छो, कंकु माता नाम ।

(४) ओगणीससोने त्रेसठे महा मास सुखकार;
सुद तेरसनी रातना, जन्म थयो सुखदाय ।

(५) तस कुक्षी थी उपज्या, भगवती नाम सुहाय;
घरमां आनन्द उपन्यो जाणे पूनमचन्द्र ।

(६) सगा संबन्धी बहुजनो बोले हर्षना बोल;
दान प्रेम पसायथी राम करे प्रतिबोध ।

(७) प्रथम भुवन विजय थया भुवनसूरि महाराज;
सोल वरसनी लघु वये त्याग्यो छे संसार ।

---

(१)

(राग—कोना पगले पगले चाली जाय छे वणझार)।

(१) जिनवर पंथे पंथे चाल्या जाय छे सूरिराज
सूरिजीनुं जीवन सुन्दर सुणजो हे नरनार
सुणजो हे नरनार। जिनवर०

(२) ओगणीससोने त्रेसठ साले, महा मास सुखकार
सुद तेरसना जन्म थयो छे, वर्ते लीला ल्हेर;
वर्ते लीला ल्हेर। जिनवर०

(३) उदयपुरना छो रहेवासी, पिता लक्ष्मीलाल
माता कंकु कुक्षी जाया, भगवती नाम सुहाय
भगवती नाम सुहाय। जिनवर०

(४) ओगणीससोने अेंसी साले, मागशर मास सुहाय
राजोद ग्रामे सुद छठ्ठना, ले संयम स्वीकार;
ले संयम स्वीकार। जिनवर०

(५) सोल वरसनी नानी वयमां त्याग्यो छे संसार
राम गुरुना प्रथम शिष्य, भुवन विजय महाराज
भुवन विजय महाराज। जिनवर०

(६) दान प्रेमने राम गुरुनी, करता भक्ति रोज
दिवसे दिवसे ज्ञानमां वधता करता गुरुनी सेवा
करता गुरुनी सेवा। जिनवर०

(७) तपने करता जपने करता करता आतमध्यान
वैयावच्चने दिलथी करीने साधे निज कल्याण
साधे निज कल्याण। जिनवर०

(८) त्यागीने वैरागी सारा विचरे देशोदेश
एक टंकनो भोजन लईने करता तप अभ्यास
करता तप अभ्यास। जिनवर०

(९) ओगणीससो पंचाणुं साले वैशाख मास सुहाय
सुद पांचम खोपोली नगरे गणी पदवी त्यां थाय
गणी पदवी त्यां थाय । जिनवर०

(१०) वैशाख वदि छठ्ठना दिवसे पूना केम्प मोझार
पन्यास पदवी थाय त्यारे उलटे नरने नार
उलटे नरने नार । जिनवर०

(११) ओगणीससो नव्वाणुं वरसे फागण मास सुहाय
राजनगरमां सुद त्रीजना पाठक पदवी थाय
पाठक पदवी थाय । जिनवर०

(१२) उपाध्यायनी पदवी लईने विचरे देशोदेश
शिष्य प्रशिष्यो साथे फरता आपे छे उपदेश
आपे छे उपदेश । जिनवर०

(१३) बे हजार ने पांचनी साले शेरडी नगर मोझार
महासुद पंचमीना दिवसे, आचार्य पदवी थाय
आचार्य पदवी थाय । जिनवर०

(१४) रामचन्द्र सूरीश्वर गुरूना पहेला पट्टधर थाय
विजय भुवन सूरीश्वर गुरूजी शासन नाशणगार
शासनना शणगार । जिनवर

(१५) भारतभरमां सूरिजी विचरे करता जग उपकार
प्रभुवीरनो संदेश सुणावी करावे जय जयकार
करावे जय जयकार । जिनवर

(१६) प्रभु महावीरनी पाटे आव्या ज्योतिर्विद कहेवाय
दान सूरीश्वर गुरूजी प्यारा शासनना सुलतान
शासनना सुलतान । जिनवर०

(१७) पंचोतेरमी पाटे आव्या प्रेम सूरीश्वर नामे
गच्छ पतिनुं बीरुद धरावे, समकीतना दातार
समकीतना दातार । जिनवर०

(१८) तास प्रथमछे पट्टधर प्यारा रामचन्द्र सूरिराज
अहिंसानो झण्डो लईने फरकावे जगमाय ।
फरकावे जगमांय । जिनवर०

(१९) वाद विवादो घणां करीने विजयने वरनार
तास प्रभावक पट्टधर प्यारा शान्त मूर्ति मनोहार
शान्त मूर्ति मनोहार । जिनवर०

(२०) प्रभु मावीरनी पाटे आव्या सत्यो तरमी पाटे
अमृत सरखी वाणी सुणावी बोधे घरने नार
बोधेनरने नार । जिनवर०

(२१) व्याख्यान आपे अमृत सरखुं गजब पडे प्रभाव
दुनियामां छे दीपक सूरिजी शासनना हितकार
शासनना हितकार । जिनवर०

(२२) गुरूजी विनति एक स्वीकारो आपो भवोभव सेव
साचा गुरूनी आशीष लईने पामूं भवजल पार ।
पामू भवजल पार । जिनवर०

(२३) साचा जोगी साचा सूरिजी ब्रह्मचारी कहेवाय
करूणा नजरे दासने देखी उगारो सूरिराज ।
उगारो सूरिराज । जिनवर०

(२४) बे हजारने सत्तर साले महामास सुखदाय
सुद एकमना सादडी नगरे रचनाकरी मनोहार ।
रचना करी मनोहार । जिनवर०

(२५) जिनचन्द्र विजयनी रचना सुन्दर गावे नरने नार
गातां गातां हर्ष वधे छे थाय आतम उद्धार ।
थाये आतम उद्धार । जिनवर०

❋

प्रेरक

पूज्य विद्वान मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज.

* * *

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
श्री भुवन सूरीश्वरजी महाराजा का

जीवनदर्शक—गीत

तर्ज : (आओ बच्चों तुम्हें दिखायें......)

गीत

आओ बन्धु तुम्हें सुनायें, स्टोरी एक गुरुदेवकी
कान लगाके इसको सुनलो, अजब कहानी संतकी
वन्दे गुरु वरम् । १ ।

संवत उन्नीस सो तिरेसठमें, जन्म लियाथा दिवालीमें
उदयपुरके एक भागमें, राजपूतानाकी भूमिमें
लक्ष्मीलालजीके कुलदीपक, कंकुबाईके रत्न की
वन्दे गुरु वरम् । २ ।

पुन्यशालीके जन्मोत्सव पर धरती माताथी हर्षाई
उमड़ घुमड़कर मेघराजने, 'महिमा गुरुवरकी गाई
माह सुद तेरस मध्यरातको, चांदगगनसे उतराथा
वन्दे गुरुवरम् । ३ ।

लक्ष्मीकुलकी उस बगियामें एक पुष्प ये महकाथा
वायु गतिसे भी चंचलथा गंगासे भी शीतल था
भगवती प्यारा नाम दियाथा गुरुवरके परिवारने
वन्दे गुरुवरम् । ४ ।

बडे प्यारसे बचपन बीता धीरेधीरे यौवन आया
कन्याओंने वरमालासे जीवनसाथी बनाना चाहा
जीवननैया डोल रहीथी भवसागर तूफानमें
वन्दे गुरुवरम् । ५ ।

जलक्रीड़ायें करतें थें गुरु फतहसागर तालमें
सदाघूमने फिरने जाते साँझ-सवेरे नाँवमें
डगमग डगमगनैया जैसा जीवन भी असार हैं ।
वन्दे गुरु वरम् । ६ ।

अश्वक्रीड़ाये करते करते रोज बगीचे जाते थे
जंगल-जंगल खेत-खेतमें गुरुवर हरदम जाते थे
अश्वगतीसे बीत रहा हें जीवन मेरा व्यर्थ है
वन्दे गुरुवरम् । ७ ।

दोहा

धनदौलत वैभव था पर मनकी शान्ति नहीं थी
खेलकूदमें बचपन बीता यौवन बीता जाये । १ ।
पूर्वजन्मके अष्टकर्मसे छुटकारा कैसे होगा
साँझ-सवेरे चिन्तन चलता कब मैं दीक्षा लूँगा । २ ।

ढाल दूसरी

गीत

तर्ज (रातभरका है महिमा अन्धेरा किसके रोके रुका है सवेरा)

मैं भी भटका हूँ मोह भँवरमें, एसाध्यान गुरुको है आया
रामचन्द्र सूरिजी वचन से अपने मनको गुरुने जगाया ।

खानेपीने से मेरा क्या होगा लाखों मरते हैं मैं भी मरूँगा
धन-वैभवतो यहीं पर रहेगा मुझको एक दिनतो जानाही होगा।१।
मगसर सुदी षष्ठीकी वो वेला राजोदनगरीमेंथा दीक्षाका मेला
रामगुरुके बने पहले चेले पंचमहाव्रतका पीतेथे प्याले
प्राणीमात्रको जीतनेवाला नाम भुवन विजयजी है पाया।२।
ग्राम ग्राम हैं तबसे विचरते अनवानी पगसे ही चलते जाते
घर घर जाकरके गोचरी लाते संयमसे ही कार्य चलाते ॥
कंचन कामिनिको नहीं छूते पैसा टका पास नहीं रखते ॥
प्राणीमात्रको प्रवचन देते एसे फ़क्कड़ जोगी वे वनके।३।
छः छः महीनासे लोच कराते हंसते हंसते पीडाको सहते
ज्ञानध्यानमें मनको लगाते सूत्रोंका सार ग्रहन करते ॥
कभी उपवास कभी आयंबिल तपस्या घोर करते ही जाते
एक टकका भोजन लिया है पन्द्रह वर्षकी तालीम पाते।४।
प्राणियोंकी ये हिंसा न करते जूठा वचन कभी नये वदते
दूसरोंकी वस्तु न चुराते ब्रह्मचर्यका पालन करते ॥
अपरिग्रहका व्रत है गुरुने पाला पंचमहाव्रत धारे हैं ॥
सेवा गुरुवरकी खूब बजाई ज्ञान गंगा है उनसे ही पाया ॥५॥

— दोहा —

कदम कदम पर कीर्ति चढती, नगरी नगरी जाते हैं
लाखों लाखों वंदन करते नर नारी गुन गाते हैं।१।
जो भी आवे धर्म लाभ ये उसको देते जाते हैं
भेद् भाव नहीं सुखी दुखी का सबको सीख सुनाते हैं।२।
ज्ञान ध्यान से पदवी पाकर नगर नगर विचरते हैं
जैसे जैसे आगे जाते शिष्य संवभी बढ़ता जाये।३।

ढाल तीसरी

तर्ज (तेरी प्यारी प्यारी सूरत को किसी की नजर न लगे चश्मवधू।)

गीत

विचरे फिर नगरी नगरी में
प्रवचन को सुनाते हुए।
पूज्य गुरुदेव। ॥१॥

उन्नीस सौ पंचावन में
गनीपद गुरुवर ने पाया
वैसाख सुदी पंचमी को
उत्सव खोपोली में हुआ॥
कोंकन देश की नगरी में
वो ठाठ अजब का छाया था।
प्रेम सूरिजी की निश्रा में,
गजब वो उत्सव बना।
पूज्य गुरुदेव। ॥२॥

उसी साल और उसी महीने में
पूना नगर में गुरू आया
पंडित की पदवी देने को
फिर से समूह बुलाया था॥
ध्वजा पताका पग पग बांधी
मंडप खूब सजाया था॥
कपड़े चादर और कम्बल की
वर्षा वो गजब की हुई।
पूज्य गुरुदेव। ॥३॥

भारत के कौने कौने में
प्रवचन वानी बहाते हैं
महाराष्ट्र गुजरात विचर के
मरूधर में गुरूवर आये॥

प्रवचन शैली इतनी मधुर थी
सभी जनों को भाई है ॥
महावीर प्रभु के षड दर्शन
जन मन में सुनाते गये ॥
पूज्य गुरूदेव । ॥४॥

अहमदावाद की पुन्य भूमि में
गुरूवर फिर से आये हैं
संवत उन्नीस सौ निन्नानव
फागन का वो महीना था ॥
शुक्ल पक्षकी इस तृतीया को
उपाध्याय पद पाया था ।
गुरूदेव के चरनामृत से
पावनवो पृथ्वी हुई ॥
पूज्य गुरूदेव ॥५॥

यात्रा संघ निकलवाये
और सिद्ध चक्र पूजन करवाई
शान्ति स्नात्र और अष्टोतरिके
अट्ठाई उत्सव मनवाये ॥
जगह जगह उपधान कराये
ठाठ खूब मनवाये ।
अंजन शलाका और प्रतिष्ठा
उत्सव खूब वनाये थे ॥
पूज्य गुरूदेव ॥६॥

नए नए मन्दिर वनवाये वनवाई पोषध शालायें
ज्ञान मन्दिर वनवाये थे ।
नमिउन पूजन और पार्श्वपूजनसे
संघ में ठाठ जमाये थे ॥
पाठशालायें वनवाई हैं
देश के कौने कौने ॥
पूज्य गुरूदेव ॥७॥

फिर आये गुरू कच्छ देश में
एक प्रतिष्ठा मनवाने ।
राम भुवन हैं आप पधारे
फिर उस सेरडी नगरी में ॥
राम गुरू ने तब है सोचा
पदवी एक भुवन को देना
पर मेष्ठी के तीसरे पद में
स्थापित भुवन को करे ॥
पूज्य गुरुदेव ॥८॥

स्वागत स्तम्भ सजाये हैं
रस्ते रस्ते नगरी के
बोर्ड लगाये जगह जगह पर
मंडप बहु बनवाये हैं ॥
लाखों नर नारी तब आये
देश के कौने कौने से ॥
घर घर के मंगल गीतों से
गलियां भी वो गूंज उठी ॥
पूज्य गुरुदेव ॥९॥

संगीतकार पधारे यें तब
नाटय मंडली आई थी
आठ दिनोंका उत्सव था तब,
झूम झूम जनता गाई ॥
अगनित थे तब साधु साध्वियाँ
बड़ा अनेरा मेला था ।
भविजन आये तब प्लेनोंसे
कारोंकी कतार खडी ॥
पूज्य गुरुदेव ॥१०॥

संवत दो हजार पांचकी
महा सुदीकी पंचमीथी
लम्बाचौड़ा मंडपथा और
प्रभूमूर्ति पधराई थी ॥
ठाठ पाठसे गुरु विराजे
पदवी शिष्यको देनेको
प्रीय शिष्यको वो पदवी दी
जिसके आगे कोई पदवी नहीं॥
पूज्य गुरुदेव ॥११॥

तबसे ही ये नाम पड़ा है
पूज्य गुरुवर भुवनसूरि
प्रभावनायें खूब बंटी थी
गाई कीर्ति नगर नगर ॥
गुरु शिष्यने प्रवचन देकर
जनताको है मुग्ध किया ।
आकाश गूँजता जय जय से
शासनका वो डंका बजा ॥
पूज्य गुरुदेव ॥१२॥

त्यागी तपस्वी उग्र विहारी
एसे गुरुवर भुवनसूरि
आगमके हैं मधु व्याख्यानी
शान्त गुरुकी है मूर्ति
जन जनके हैं वो उद्धारक
स्फूर्तिकी एक चिनगारी ।
तारे हैं लाखो नर नारी
दावानलकी अग्नि से ॥
पूज्य गुरुदेव ॥१३॥

जीवन उनका भव्य हुआ है।
वडी वडी तपस्याओं से
ज्योर्धर कहलाते हैं
वीस स्थानक और वर्षीतपसे॥
बीज आठम अग्यारस चौदस
पंचमिको अपनाये हैं॥
एसे इस पुन्यात्माओंमें
कोटि कोटि वंदन करू॥
पूज्य गुरुदेव ॥१४॥

संवत दो हजार चौवीसकी
जेठ सुदीकी पंचमी थी
छः शिष्योंके साथ गुरुजी
तपावासमें ठहरे थे।
गुरुदर्शनको तब है आया।
एक भक्त बेंगलोरसे
जिनचन्द्र विजय के दर्शनसे
एक स्फूर्ति नवीन है पाई
पूज्य गुरुदेव ॥१५॥

यांत्रीकीका छाता था
फिर भी श्रद्धा धर्ममें दिखलाई
ज्ञान विज्ञानकी बातें सुनके
बुद्धि सुकनकी टिकराई
जिनचन्द्र विजयकी वानीसे
भुवन गुरुकी कहानी सुनी
जालोर नगरमें सुकनराजने
संगीत कहानी गाई थी॥
पूज्य गुरुदेव ॥१६॥

—सुकनराज रंगराज कोठारी बी. ई. मेकानिकल
बेंगलोर सिटि.]

प्रवचनसार कर्णिका के
बोधक सुवाक्य

: व्याख्याता :

परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय भुवनसूरीश्वरजी महाराज साहब के
व्याख्यानों में से

: संचयकार :

पू० मुनिराज श्री जिनचन्द्र विजयजी महाराज।

(१) दान देने से मनुष्य इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करके अन्त में शिवश्री को वरता है।

(२) दान यह आत्माको मोक्ष गतिमें पहुंचा के अनंत सुख का स्वामी बनाता है।

(३) दान देने से लक्ष्मी सफल बनती है और भावी उज्वल बनता है।

(४) जिस मनुष्य में दाता पाना है वह मनुष्य इसलोक और परलोक में सुख संपत्ति प्राप्त करके अन्त में मोक्ष संपत्ति प्राप्त करता है।

(५) जल से जैसे देह निर्मल बनता है शील से भावी निर्मल बनता है।

(६) शियल (शील) मानवी का परम आभूषण है। जैसे सुवर्ण अलंकार देह को शोभाते हैं इसी प्रकार शील जीवन को शोभाता है।

(७) नारद एक शील के प्रताप से ही सुखको प्राप्त हुये हैं।
(८) शियल व्रत का धारक हमेशा पवित्र है।
(९) शीलवान आत्मा इस लोक में पुजाता है और परलोक में भी पुजाता है।
(१०) काष्ठ को जलानेके लिये अग्नि-समर्थ है त्यों कर्म काष्ठ को जलाने के लिये तप समर्थ है।
(११) अनंत ज्ञानीयों की आज्ञा मुजब का तप कर्मकाष्ठ को भस्मीभूत करता है।
(१२) रोग दूर करने के लिये जैसे रोगी को कडवी औषधि लेनी पडती है। फिर भी वह इच्छा विना लेता है। उसी प्रकार खाता हुआ भी इच्छा विना जो खाता है वह तपस्वी है।
(१३) औषधि लेनेसे जैसे बाहरके रोग मिटते हैं उसी तरह तप करने से अंतरके रोग मिटते हैं।
(१४) भावपूर्वक किया गया धर्म सार्थक है। भाव विना वेठ (वेगार) की तरह किया गया धर्म निरर्थक है।
(१५) शुद्ध भाव अंतरमें नहीं आवें तब तक कर्मोंका जाना शक्य नहीं है।
(१६) भावना का वल जवरजस्त है। भरत महाराजा अरीसा (दर्पण) भवन में भावना भाते भाते केवल ज्ञानको प्राप्त हुये
(१७) संसारमें रह करके, राज्यको संभालते हुये भी पृथ्वी चन्द्र महाराजा राज्य सिंहासन पर वैठे वैठे भावनाधिरूढ वनकरके केवल लक्ष्मी को प्राप्त हुये।
(१८) गुण सागर चोरी मंडप में (लग्नमंडप) लग्न करने बैठे थे फिर भी भावना के वल से केवल श्री को प्राप्त हुये।

(१९) एक खराव भावना से प्रसन्न चन्द्र राजर्षिने सातवीं नरकका वन्ध करने के कारण इकट्ठे किये थे फिर भी क्षण भर में उत्तम भावना के वल से केवल ज्ञान को प्राप्त हुये ।

(२०) अपन वर्षों से धर्म कर रहे फिर भी मोक्षको नहीं प्राप्त हुए उसका कारण भावना की कचास है। जब तक भावअन्तर में नहीं आवें तब तक मोक्ष मिलना अशक्य है ।

(२१) करगड्डुमुनि रोज वापरते थे फिरभी भावनाधिरूढ वनके केवल ज्ञान को प्राप्त हुए। सचमुच "भावना भवनाशिनी"

(२२) जैनकुल में जन्मे हुए प्रत्येक जैनको कम से कम सुवह नवकारशी का पच्चक्खाण और सामको चौविहार का और न वने तो तिविहार का पच्चक्खाण करना चाहिए ।

(२३) जिनेश्वर के दर्शन से पाप नाश होते हैं। और कर्म की वेल छिद् जाती है ।

(२४) शासन का सच्चा शृङ्गार वही जो शासन को समर्पित बने ।

(२५) जिस मनुष्य का अन्तर मलिन है वह मनुष्य स्वप्न में भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता है ।

(२६) संत पुरुषों की सम्पत्ति ये परोपकार के लिए ही होती है ।

(२७) पाप करते समय मानवी पाप को डरता डरता करे तो कर्मवन्धन कम होता है।

(२८) जिनेश्वरके वचन पर जिस मनुष्य को पूर्ण श्रद्धा है वह मनुष्य कल्याण को सिद्ध कर सकता है ।

(२९) दिन प्रतिदिन वाहर की वस्तुओं के ऊपर से नजर हटाते जाना और अन्तरात्मा तरफ नजरको स्थिर करते जाना मनुष्य का सच्चा कर्त्तव्य है।

(३०) निन्दा करो तो अपनी करो स्तुति करो तो गुणी की करो ये धर्मी का लक्षण है।

(३१) संसार में मनुष्य जिन जिन दुखों को भोगता है वे अपने किये हुए खराब कर्मों का फल है।

(३२) जगत में सच्चा ज्ञानी वही है जो वाहर की उपाधि से मुक्त वनकर सिर्फ ज्ञानकी चिन्ता करे।

(३३) जैसे रेलगाड़ी को एक पाटा ऊपर से दूसरे पाटा ऊपर ले जानेके लिए वीचमें एक टुकड़ा का संधान चाहिए। उसी प्रकार मनुष्य को अयोग्य दिशा की तरफ से सच्ची दिशा में ले जाने के लिए एक सत्संगरूपी संधान की जरूरत रहती है।

(३४) सच्चा सत्पुरुष वही कहलाता है जो दिन प्रतिदिन आत्मसंशोधन कर दुर्गुणों को दूर करता है।

(३५) संसार के सुखमात्र को दुखतरी के लेखे उसका नाम सम्यग्दृष्टि।

(३६) संसार के भोगों को रोग मानके सेवे उसका नाम सम्यग्दृष्टि।

(३७) संसार के विषय जहर से भी अधिक खराव हैं और अधोगतिमें ले जाने वाले हैं एसा माने उसका नाम सम्यग्दृष्टि।

(३८) घर को जेलखाना माने उसका नाम समकित्ती।

(३९) दुकान को, पेढी को पाप रूप पेढो माने उसका नाम है समकित्ती।

(४०) लड़का–लड़की स्त्री आदि कुटुम्ब परिवार को बन्धन रूप माने उसका नाम है सम्यग्दृष्टि।
(४१) जिनेश्वर के वचन ऊपर जिसे अडिग श्रद्धा हो उसका नाम सम्यग्दृष्टि।
(४२) संसार की किसी भी क्रियामें आनन्द न हो उसका नाम है समकित्ती।
(४३) भव से डरे उसका नाम है सम्यग्दृष्टि।
(४४) संसार में रहके भी उदासीन भावसे जो संसार में रहे उसका नाम है सम्यदृष्टि।
(४५) संसार के पदार्थों की लालसा नहो उसका नाम है समकित्ती।
(४६) आत्मा की चिन्ता में जो मशगूल रहे उसका नाम है आत्मानन्दी।
(४७) संसार की प्रवृत्तियां प्रेम से करे और पाप का भय न हो उसका नाम भवाभिनंदी।
(४८) धर्म विना का सुख इच्छा करने लायक नहीं है। क्योंकि धर्म बुद्धि खिले विना ये सुख आत्मा को अधो गति में ले जायगा।
(४९) भौतिक सात्रग्री के ऊपर प्रेम न हो तो मानना कि धर्म हृदय में बसा है।
(५०) किसी की योग्य मांग को शक्ति होने पर भी ना कहते हुये संकोच होना ये भी दाक्षिण्यता है।
(५१) आत्म कल्याण के लिए जीवन की प्रत्येक क्षण पवित्र रखनी पड़ेगी। और ये पवित्र रखने के लिए विषय विकारों से बचना पड़ेगा।
(५२) विकारों के शमन से आत्म शुद्धि होगी। और आत्म शुद्धि होगी तो परमात्म दर्शन होंगे।

(६६) संसारकी प्रवृत्तियाँ जहर डाले हुये लाडू (लड्डु) जैसी हैं।

(६७) पाँच महापापोंको भोगनेवालेकी अपेक्षा भोगने लायक माननेवाला अधिक पापी है।

(६८) जबसे स्वाद बढा तबसे रोग बढे और जबसे रोग बढे तबसे डॉक्टर बढे। और जबसे डॉक्टर बढे तबसे हस्पीताल बढी।

(६९) धर्म गुरुओंको जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा को दूर करके जमाना के पीछे जाना ये भयंकर शासन द्रोह है।

(७०) सत्यका सदा जय है। तो सत्यको से करके कल्याण साधनेमें क्या हरकत है ?

(७१) असत्य मार्गका सेवन करना नहीं और सत्यके सेवन से डरना नहीं।

(७२) देहके सुखका लोभ ये सच्चे सुख को गवाने का रास्ता है।

(७३) प्राणान्त में भी सत्यको तिलांजलि नहीं देना। और असत्यका आचरण नहीं करना।

(७४) निरन्तर चलते गाडेके पहिया घिसा करके नकामा (बेकार) हो जाते हैं। इसलिये तेल डाला जाता है। इसी तरह संयम की आराधना में काम देने वाला ये शरीर काम करता हुआ अटक नहीं जाय इसलिये आहार देना किन्तु स्वादके लिये नहीं।

(७५) स्वादसे इसके अंदर लयलीन बनके भोजन करने वैठा हुआ मनुष्य मोहराजाके हाथ से मरने वैठा है।

(७६) टांटिया तोड़के यानी पैर तोड़के जैसे पैसा कमाते हो उसी तरह जो धर्म करने लगे तो मोक्ष निकट है।

(७७) राग द्वेषको घटाने के लिये धर्म करना है लेकिन बढाने के लिये नहीं ।

(७८) द्वेष ईर्ष्या और अहंभावना मानवता को नाश करने वाले हैं ।

(७९) जिस प्रकार शरीरका मैल साबुन और पानीसे साफ किया जाता है । उसी प्रकार ज्ञान और कर्म का मैल ज्ञान और क्रिया से नाश होता है ।

(८०) संसार कला अजमाने से संसार लम्बा होता है । और मोक्ष दूर चला जाता है ।

(८१) संसार कला और धर्म कलामें पशुता और मानवता जितना भेद है ।

(८२) संसारकला छोडके धर्मकलामें आगे बढो जिससे भावि उज्जवल होगा ।

(८३) जिसके पीछे संसारकला अजमाके मानव जीवनकी बरबादी करते हो उसका अन्तमें करुण विपाक क्या आयेगा ? उसका विचार करो ।

(८४) धर्म के नाम से चलाई पोल कर्म के खातेमें खतवाती है और अन्तमें दुख भोगना पडेगा ।

(८५) राजसत्ता से भी कर्मसत्ता अधिक भयंकर है ।

(८६) धर्मकलाका विकास यानी मानवताका विकास ।

(८७) अज्ञान, अविवेक और असंयम ये तीन पाप के मूल हैं ।

(८८) क्या तुम, तुम्हारी पीछे खड़ी मौत को भूल गये हो ?

(८९) विश्व के समस्त जीव सुखके इच्छुक हैं । मगर सच्चा सुख तो मोक्षमें है ।

(९०) अर्थ और कामकी साधना ये सच्चे सुखकी साधना नहीं है । परन्तु दुखकी साधना है ।

(५३) वड़ी वड़ी डिग्रियां प्राप्त कर लेने से शास्त्री, आचार्य आदि पदवी प्राप्त कर लेने से ज्ञानी नहीं वना जाता किन्तु ज्ञान और क्रिया को जीवन में उतारने से ज्ञानी बना जाता जाता है ।

(५४) संसार समुद्र से भी अन्य कौन तार सकता है ? उसके समर्थ विद्वान पू० उपाध्याय म० श्रीयशोविजयजी महाराज ने ज्ञानसार में कहा है कि—

" ज्ञानी क्रिया परः शान्तो
भावितात्मा जितेन्द्रियः "

ज्ञानी होय, क्रिया में तत्पर हो, शान्त होय, भावात्मा हो, और जितेन्द्रिय हो वही अन्य को तार सकता है ।

(५५) धर्मको माता जैसा माने उसे भी धर्मी कहते हैं। जैसे पुत्र माताके विना नहीं जी सकता । उसी प्रकार धर्मी भी धर्म विना सच्चा जीवन नहीं जी सकता ।

(५६) तपके आगे पीछे तो आसक्तियोंका खूब जोर हो तो वह तप भले जैसा भी फिर भी चित्तशुद्धि नहीं कर सकता ।

(५७) दुख अच्छी वस्तु है क्योंकि दुखके समय अहंकार पतला पड़ता है । और अहंकार पतला हो तो कर्मका निकाल हो जाता है ।

" देह सुखं महा दुखं "

(५८) सुख वहुत खराव है क्यों कि सुखके समय मनुष्य अभिमानी वनता है । और सुखका राग आत्माको अधोगतिमें खेंच जाता है ।

" देह सुखं महा दुखं " ।

(५९) जगत का सुख अच्छा नहीं लगे तो समझ लेना कि सम्यग्दर्शन आया है।

(६०) जिस दिन दूसरों को सुखी बनानेकी चिन्ता अपने हृदय में जगेगी तब अपने सुख का प्रश्न भी उकल जायगा।

(६१) जब तक अपने में दोषों की हाजिरी है तब तक दूसरों के दोष देखना, बोलना और सुनना बंध कर देना जरूरी है।

(६२) अपनें कार्य में दूसरे किसी की भी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये।

(६३) वृक्ष अपने फल दूसरो को देता है। खुद तडका में तप करके मुसाफिरोंको छाया देता है। नदियां अपना जल दूसरों को पीने और वापरने को देती हैं। तो फिर अपन को भी अपनी शक्ति होने पर भी दूसरों को सुख क्यों नहीं देना चाहि ? अर्थात्– देना चाहिये।

(६४) गाय को दोर के ले जाना हो तो घासचारा डालके भी ले जाया जा सकता है। और लकड़ी मार के भी ले जाया जा सकता है। उसी तरह दूसरों को शिखामण मीठे शब्दों से भी दी जा सकती है। और कठोर शब्दों से भी दी जा सकती है। लेकिन इन दोनों में से प्रथम मार्ग पसन्द करने योग्य है।

(६५) सतियोंके मन पतिको इष्ट हो वह इष्ट और अनिष्ट हो वह अनिष्ट। अनिष्ट उसी प्रकार वीतरागके भक्तको वीतरागको जो इष्ट हो वह इष्ट और अनिष्ट हो वह अनिष्ट। वह वीतरागका सच्चा भक्त कहलाता है।

(९१) अर्थ और काम से जो सुख मिलता है वह असली सुख नहीं है किन्तु नकली सुख हैं।

(९२) जगतने अज्ञान जीव अर्थ और कामकी उपासना में लय लीन हैं। और एसा मानते हैं कि इसमें सुख है किन्तु अनन्त ज्ञानी कहते है कि इसमें वास्तविक सुख नहीं है।

(९३) क्रोध करने से कर्मोका वन्धन होता है इसलिये ज्ञानीयोंने क्रोधको चंडाल की उपमा दी है।

(९४) क्रोधका स्वरूप भयंकर है जब मनुष्य क्रोधमें आ जाता है तब भान भूला बन जाता है।

(९५) क्रोध करने से धर्म की हानि होती है।

"क्रोधात् प्रीति विनाशः"।

(९६) मान ये मनुष्य को अधोगति में ले जाता है।

(९७) खोटा मान कभी नहीं करना जो धर्म में आना हो तो।

(९८) मायावी मनुष्य की तो दुनियामें कीमत नहीं है।

(९९) जो माया से खुश होता है उसे कर्मसत्ता छोड़ती नहीं है।

(१००) ज्यों ज्यों मनुष्यको लाभ होता जाता है त्यों त्यों लोभ वढता जाता है। "जहा लाहो तहा लोहो" उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है।

(१०१) "चलाचले च संसारे धर्मएकोहिनिश्चलः" इस चलाचल संसारमें एकधर्म ही निश्चल है।

(१०२) सम्यग्ज्ञान की चिन्ता करना और अपने वालकोंको सम्यग्ज्ञानमें जोड़ने के लिये जोरदार प्रयत्न करना चाहिये।

(१०३) "माता शत्रुः पितावैरी—
येन वालो न पाठितः"

वे माता शत्रु और पिता वैरी हैं जो अपनी सन्तान वालकों को नहीं पढाते।

(१०४) अनन्त ज्ञानीयोंने धर्मज्ञान प्राप्त करने के लिये चार भावनायें कही हैं। उन भावनाओं का जो प्रतिदिन चिंतन हो तो मनुष्य धर्मज्ञान अच्छी तरह से कर सकता है।

(१०५) "परहित चिन्ता मैत्री"।
जगतमें कोई जीव पाप न करो। जगत में कोई जीव दुखी न हों। समस्त विश्वके प्राणी दुःख से मुक्त हों एसी भावना अन्तरमें आवे उसका नाम मैत्री।

(१०६) समस्त विश्व के जीवोंके हित की चिन्ता करना उसका नाम मैत्री भावना है।

(१०७) "परसुखतुष्टिर्मुदिता"
दूसरों के सुखको देखकर राजी होना वह प्रमोद भावना है।

(१०८) गुणी आत्माओंके गुणको देखके राजी (प्रसन्न) होना वह भी प्रमोद भावना है।

(१०९) "परदुख विनाशीनी तथा करुणा"
जगतके सभी जीवों के दुखोंका नाश हो। दीन अदीन बनो। पीडित अपीडित हों। जगत के सभी जीव अभयको प्राप्त करें। एसी भावना भना उसका नाम करुणा भावना है।

(११०) "परदोषोपेक्षनमुपेक्षा" दूसरों के दोषों की उपेक्षा करना माध्यस्थ भावना है। जगतमें किसी का भी तिरस्कार करना ये धर्मी का लक्षण नहीं है।

(१११) संसार ये दुःख की खान है और मोक्ष सुख का स्थान है।

(११२) जैसा सुख मोक्षमें है एसा सुख किसी भी स्थानमें नहीं है।

(११३) दूसरोंके द्वारा किये गये उपकार को भूल जाना ये कृतघ्नपना है। लेकिन दूसरों के द्वारा किए गए उपकारको जीवनपर्यन्त नहीं भूलना ये कृतज्ञपना है।

(११४) भले कितना ही सुखी हो किन्तु असंतोषी सुखका अनुभव नहीं कर सकता।

"सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।

सन्तोष यही पुरुषका परम निधान है।

(११५) बहुत बोलने से ज्ञानतन्तुओंकी भी हानि होती है। और झगड़ा, लड़ाई भी बहुत बोलनेसे होती है।

"मौनेन कलहो नास्ति" मौन रहनेवाले को कलह (कजीयो) भी नहीं होता है।

(११६) दूसरा आदमी खमे अथवा न खमे किन्तु मुझे खमाना चाहिये।

"जो खामेई तस्स आराहणा"

जो खमे वह आराधक है।

(११७) विनीत मनुष्य जगतमें पूज्य होता है। विनय सभी गुणोंमें मुख्य है।

"विनयः परमो गुणः" विनय ये परम गुण है।

(११८) एक मनुष्य सामायिक लेकरके विना चिन्ता से उघे। और दूसरा मनुष्य दुकान पर बैठा बैठा कब सामायिक करूँ? एसा भाव करे इन दोनोंमें से अधिक निर्जरा दुकान पर बैठा हुआ करे॥

(११९) भावसंयम को लिये विना कोई भी आत्मा मुक्तिमें नहीं गया। वर्तमानमें जाता नहीं है। और भविष्यमें भी नहीं जायगा।

(१२०) सभी मन्त्र तन्त्रोंमें नवकार ये परमोच्च मन्त्र है।

(१२१) अरिहंत का शरण स्वीकारो। सिद्धका शरण स्वीकारो। साधु भगवंतो का शरण स्वीकारो॥ केवली प्रणीतधर्म का शरण स्वीकारो। और शुभ भावना में लयलीन बनके कल्याण साधो यही शुभाभिलाषा

※ समाप्त ※